आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था

(Modern Indian Economy)

सम्पादक

डॉ. एम. सी. गुप्ता

एसोसिएट प्रोफेसर,

आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

भूमिका

प्रो. एम. डी. अग्रवाल

वरिष्ठतम प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, वाणिज्य संकाय

कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इना श्री पब्लिशर्स

जयपुर

भूमिका

डॉ एम सी गुप्ता द्वारा सकलित पुस्तक 'आधुनिक भारतीय अर्थव्यवस्था' की भूमिका लिखते हुए मुझे बडी प्रसन्नता है। पिछले पच्चीस वर्षों से अधिक समय से मैं भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति के विभिन्न आयामों को एक लेखक के रूप में गहनता से देखता रहा हू तथा मुझे यह अनुभव हुआ है कि हिन्दी भाषी विद्यार्थियों, प्रशासकों एव नीति निधारकों को इस विषय पर एक साथ बहुत से विचारकों एव विश्लेषकों के लेख पढने को उपलब्ध नहीं होते हैं। डॉ गुप्ता का यह एक सराहनीय प्रयास है कि उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओ पर अनेक विद्वानों द्वारा हिन्दी भाषा में लिखे गये लेखों को समाहित करके इस पुस्तक में प्रकाशित किया है। एक तरफ इस पुस्तक में हमें भारत में आर्थिक नियोजन एव योजनाबद्ध विकास की सम्पूर्ण जानकारी मिलती है वहाँ दूसरी ओर भारत के सार्वजनिक उपक्रम तथा अन्य बडे उपक्रमों के विकास तथा उनकी समस्याओं की जानकारी भी प्राप्त होती है। हमें आर्थिक विकास एव सामाजिक न्याय, पचायती राज, भारत में आर्थिक सुधार, जमीन के रिश्ते एव भविष्य का नक्शा, भूमि सुधार, महिला साक्षरता, स्वैच्छिक सगठन एव उनकी भूमिका आदि के बारे में उपयोगी तथा प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है।

डॉ गुप्ता का कठिन परिश्रम तथा प्रकाशक का प्रयत्न दोनों सार्थक होंगे तथा यह पुस्तक भारतीय अर्थव्यवस्था में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों, उद्योगपतियों, प्रशासकों, नीति निधारकों तथा सामान्य जन के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। इस तरह के प्रयास भविष्य में भी निरतर जारी रहने चाहिए।

प्रोफेसर एम.डी. अग्रवाल

वरिष्ठतम प्रोफेसर एव विभागाध्यक्ष
वाणिज्य सकाय
कोटा खुला विश्वविद्यालय
कोटा (राज.)

प्राक्कथन

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति काफी अस्त-व्यस्त थी, क्योंकि ब्रिटिश शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया गया था। अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था का खुलकर शोषण किया तथा अपने हित में भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास किया, लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया और भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भरसक प्रयत्न किये गये हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना कृषि प्रधान योजना थी, द्वितीय पंचवर्षीय योजना उद्योग प्रधान योजना थी तथा तीसरी और इसके बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में अर्थव्यवस्था के समस्त पहलुओं—कृषि, उद्योग, व्यापार, यातायात तथा समाज कल्याण कार्यक्रमों पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है तथा अच्छी सफलता भी प्राप्त हुई है। भारत में अभी तक सात पंचवर्षीय योजनायें तथा अनेक वार्षिक योजनायें पूरी हो चुकी हैं तथा वर्तमान में आठवीं पंचवर्षीय योजना पर कार्य चालू है।

प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित विषय सामग्री एकत्रित की गयी है जिससे इस बात की जानकारी पुस्तक के पढ़ने वालों को प्राप्त हो सके कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था के किस क्षेत्र में कितना विकास संभव हुआ है? और अभी इस ओर कितना ध्यान देने की आवश्यकता है? ऐसा अनुमान है कि यह पुस्तक नीति-निर्धारकों, प्रशासकों, प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों तथा जनसाधारण के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रस्तुत पुस्तक में सम्मिलित किये जाने वाले लेख, लेखक के द्वारा विभिन्न स्रोतों से जुटाये गये हैं। लेखक उन सबका हृदय से आभारी है जिनका योगदान प्रस्तुत पुस्तक की विषय सामग्री में निहित है।

लेखक प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक श्री एस.के. जैन, यूनिवर्सल बुक सप्लायर्स, एम.एम.एस. हाइवे, जयपुर का भी हृदय से आभारी है जिन्होंने पुस्तक के शीघ्र प्रकाशन में पूरी रुचि ली है।

लेखक

लेखकों का परिचय

डॉ. एस.सी. गुप्ता, एसोसिएट प्रोफेसर, आर्थिक प्रशासन एवम् वित्तीय प्रबंध विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-302004.

प्रोफेसर के.डी. गंगराडे, भूतपूर्व उप कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

डॉ. वी.के. अग्रवाल, अध्यक्ष, व्यावसायिक प्रशासन विभाग, पी.सी. बागला महाविद्यालय, हाथरस।

अजय कुमार सिन्हा, डी-705, एम.एस. एपार्टमेन्ट, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली-110001.

डॉ. सूरज सिंह 8-वी-9, प्रताप नगर, टोंक फाटक, जयपुर-302015.

श्याम सुन्दर सिंह चौहान, अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, चरखारी (महोबा) उ.प्र.।

मनोज कुमार द्विवेदी, बी/4 टीचर्स कॉलोनी, अतर्रा (बांदा) उ.प्र.।

डॉ. अरुणा शर्मा, 1/15 शान्ति कुंज, अलवर-301001.

राजीव पंछी, जे-3/203, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-110027.

प्रणव प्रसून वाजपेयी, 788 सेक्टर-3, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110022.

प्रो. डॉ. बी.एल. झारिया, रानी दुर्गावती शासकीय महाविद्यालय, मण्डला (म.प्र.)।

प्रो. आर.के. तिवारी, रानी दुर्गावती शासकीय महाविद्यालय, मण्डला (म.प्र.)।

डॉ. एम.आर. मदान, प्राचार्य, श्री एल.एन. हिन्दू कॉलेज, रोहतक (हरियाणा)।

डॉ. रमेश चन्द्र अग्रवाल, संयुक्त निदेशक (प्रशिक्षण), राज्य नियोजन संस्थान, उ.प्र. कालाकांकर भवन, लखनऊ-7.

जितेन्द्र गुप्त, स्वतन्त्र पत्रकारिता, नई दिल्ली।

डॉ. राकेश अग्रवाल, प्रवक्ता, एस.एस.वी. (पी.जी.) कॉलेज हापुड़ (गाजियाबाद)।

डॉ. उषा गोपाल, आई-10 प्रसाद नगर, नई दिल्ली-110005.

प्रदीप भटनागर, उप सचिव, रोजगार मंत्रालय, नई दिल्ली।

अरविंद कुमार सिंह, वरिष्ठ संवाददाता, अमर उजाला, नई दिल्ली।

प्रोफेसर टी. हक, नेशनल फेलो, राष्ट्रीय आर्थिक और नीति अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली।

संगीता शर्मा, डी-55, आनंद विहार, दिल्ली-92.

डॉ. श्रीपाद जोशी, ए-1500, एन.एच.बी. कॉलोनी, खण्डवा (म.प्र.)-450001

अनुक्रमणिका

□

भारत में आर्थिक नियोजन एवं योजनाबद्ध विकास की उपलब्धियां

एस.सी. गुप्ता

आर्थिक नियोजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विश्व में आर्थिक नियोजन बीसवीं शताब्दी की उपलब्धि है। सन् 1910 में सबसे पहले नार्वे के प्रोफेसर क्रिस्टियन सोन्डेडर के द्वारा आर्थिक नियोजन की महत्ता को स्वीकार किया गया। जर्मनी और ब्रिटेन के द्वारा प्रथम विश्वयुद्ध काल में युद्धकालीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए आर्थिक नियोजन को अपनाया गया लेकिन आर्थिक नियोजन को उच्च स्थान प्रदान करने का श्रेय सोवियत रूस को जाता है। वर्तमान में आर्थिक नियोजन विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के द्वारा अपनाया जाता है चाहे वह विकसित राष्ट्र हो अथवा विकासशील, चाहे वह पूंजीवादी हो अथवा समाजवादी हो अथवा साम्यवादी हो। आर्थिक नियोजन, विकास की वह प्रक्रिया है जिसे वर्तमान में सभी प्रकार के राष्ट्र खुशी से अपनाते हैं जिसके बिना आर्थिक विकास बिल्कुल भी संभव नहीं है। आर्थिक नियोजन के विचार को सर्वप्रथम सोवियत रूस के द्वारा सन् 1928 में अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान अपनाया गया था। इसके बाद पूंजीवादी देशों के द्वारा तीसा की महान मन्दी काल में इसे अपनाया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध काल में विश्व के अधिकांश राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो चुकी थी, जिसे सुधारने के लिए लगभग सभी राष्ट्रों के द्वारा आर्थिक नियोजन को अपनाया गया। इसके बाद से लेकर अब तक विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के द्वारा आर्थिक नियोजन को पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से अपनाया जा रहा है। वर्तमान में आर्थिक नियोजन की लोकप्रियता अथवा प्रसिद्धि के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात स्वतन्त्र अथवा अनियोजित अर्थव्यवस्था की कमियां हैं जैसे—बेरोजगारी, अमीरी और गरीबी के बीच खाई, राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय का कम होना, उपलब्ध संसाधनों का उचित विदोहन न होना इत्यादि। इन कमियों एवं बुराइयों को दूर करने के लिए आर्थिक नियोजन का सहारा लिया गया है जिसके माध्यम से ही आर्थिक विकास द्वारा इनका समाधान संभव है। इसके साथ ही नियोजित अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास की

सफलता आर्थिक नियोजन में ही निहित है। इस प्रकार आज विश्व के प्रत्येक राष्ट्र में आर्थिक नियोजन की महत्ता को सार्वभौमिक सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

आर्थिक नियोजन की विचारधारा

आर्थिक नियोजन की विचारधारा प्रोफेसर रोबिन्स की अर्थशास्त्र की परिभाषा पर आधारित है जिसके अनुसार प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था में साधन सीमित तथा वैकल्पिक प्रयोग वाले होते हैं और आवश्यकतायें अनन्त होती हैं। प्रत्येक देश की सरकार अपने उपलब्ध वैकल्पिक प्रयोग वाले सीमित साधनों का प्रयोग असीमित आवश्यकताओं में इस प्रकार करती है जिससे वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति जैसे : गरीबी एवं बेरोजगारी का निवारण, राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, आर्थिक विकास की दर को बढ़ाना, कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि करना, निर्यातोन्मुख कार्यक्रम अपनाना, यातायात एवं सन्देशवाहन के साधनों का विकास करना इत्यादि सुगमता से की जा सके।

आर्थिक नियोजन की परिभाषायें

विभिन्न अर्थशास्त्रियों के द्वारा आर्थिक नियोजन को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है—

(1) भारतीय योजना आयोग के अनुसार—"आर्थिक नियोजन उपलब्ध संसाधनों की वह प्रणाली है जिसमें साधनों का अधिकतम लाभप्रद उपयोग निश्चित सामाजिक लाभों को पूरा करने के लिए किया जाता है।"

(2) सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री एच.डी. डिकिन्सन के अनुसार—"आर्थिक नियोजन प्रमुख आर्थिक निर्णयन की वह प्रक्रिया है जिसमें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक व्यापक सत्ता के द्वारा विचारपूर्वक निर्णय लिये जाते हैं कि क्या और कितना उत्पादन किया जावे, तथा इसका वितरण किनमें हो ?"

(3) श्रीमती बारबरा वूटन के अनुसार—"किसी सार्वजनिक सत्ता के द्वारा विचारपूर्वक तथा जानबूझकर आर्थिक प्राथमिकताओं के चयन करने की प्रक्रिया को आर्थिक नियोजन कहा जाता है।"

(4) डॉ. डाल्टन के अनुसार—"व्यापक रूप में आर्थिक नियोजन विशाल संसाधनों के प्रभारी द्वारा निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक क्रियाओं को इच्छित रूप से सचालित करना है।"

(5) विट्ठल बाबू के अनुसार—"नियोजन जनसाधारण के अधिकतम लाभ के लिए देश के वर्तमान भौतिक, मानसिक तथा आर्थिक शक्तियों या उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करने की एक प्रविधि है।"

निष्कर्ष

आर्थिक नियोजन के उपरोक्त अर्थ एवं परिभाषाओं का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आर्थिक नियोजन की कोई भी परिभाषा अपने आप में पूर्ण नहीं है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक नियोजन की अपनी परिभाषाओं में सार्वजनिक नियन्त्रण एवं निर्देशन पर बल दिया है तो कुछ अर्थशास्त्रियों ने इसे व्यापक अर्थ में परिभाषित किया है जिनके अनुसार नियोजन में एक सार्वजनिक सत्ता के द्वारा सर्वेक्षण के आधार पर आर्थिक निर्णयों, नियन्त्रणों और निर्देशनों को महत्व दिया गया है जिसके फलस्वरूप एक निश्चित अवधि में पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करके अधिकतम सामाजिक कल्याण उपलब्ध करवाया जा सके।

आर्थिक नियोजन की विशेषताएं अथवा लक्षण

आर्थिक नियोजन की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं:—

(1) प्राथमिकताओं का निर्धारण करना

(2) नियोजन एक सतत् प्रक्रिया है

(3) नियोजन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है

(4) राजकीय हस्तक्षेप तथा साझेदारी

(5) जनसहयोग की भावना

(6) आर्थिक संगठन की एक प्रणाली

(7) संरचनात्मक परिवर्तन

(8) उपलब्ध साधनों का आवण्टन एवं प्रयोग

(9) पूर्व निर्धारित उद्देश्य

(10) निश्चित समयावधि

(11) व्यापक दृष्टिकोण

(12) सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर क्रियान्वयन

(13) अन्तिम उद्देश्य-सामाजिक कल्याण

(14) मूल्यांकन करना

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

आर्थिक नियोजन की विचारधारा एक प्रावैगिक दृष्टिकोण रखती है। इसका अध्ययन उपलब्ध साधनों के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों को मद्देनजर रखते हुए विशिष्ट उद्देश्यों के अधीन कार्य

करना आवश्यक हो जाता है। यदि हम नियोजन की परिभाषाओं का गहराई से अध्ययन करें तो पता लगता है कि इसमें सरकार अपने उपलब्ध साधनों के द्वारा विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करती है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:—

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

(A) आर्थिक उद्देश्य	(B) सामाजिक उद्देश्य	(C) राजनैतिक उद्देश्य
1 प्राकृतिक संसाधनों का उचित विदोहन	1. वर्ग संघर्ष पर रोक	1. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग
2. मूल्य स्थायित्व	2. सामाजिक समानता	2. शान्ति एवं व्यवस्था
3. अवसर की समानता	3. सामाजिक सुरक्षा	3. शक्ति प्रसार तथा निवेश पर आक्रमण
4 आत्मनिर्भरता	4. नैतिक और बौद्धिक उत्थान	4 विरोध आक्रमणों से सुरक्षा
5 युद्धोपरान्त पुनर्निर्माण		
6. साज-सज्जा		
7 अधिकतम उत्पादन		
8. पिछड़े एवं कमजोर क्षेत्रों का विकास		
9 साधनों का श्रेष्ठतम प्रयोग		
10. आर्थिक सुरक्षा		

भारत में किन उद्देश्यों को प्राथमिकता दी जावे ?

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों को आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक भागों में विभाजित किया गया है। इसका आशय यह नहीं है कि ये समस्त वर्ग एक दूसरे से अलग-अलग नहीं हैं बल्कि ये एक दूसरे के पूरक हैं। यद्यपि अल्पकाल में इन उद्देश्यों में आपस में प्रतिस्पर्धा व विरोध हो सकता है लेकिन दीर्घकाल में इनके उद्देश्यों में आपस में कोई प्रतिस्पर्धा व विरोध नहीं होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि भारत एक विकासशील राष्ट्र है और समय तथा विकास की परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए इनमें लगभग समस्त उद्देश्यों को सम्मिलित कर लिया गया है और सभी को प्राथमिकता दी गयी है।

आर्थिक नियोजन के पक्ष में तर्क

जैसाकि ऊपर बताया गया है कि आर्थिक नियोजन वर्तमान में विश्व के लगभग सभी देशों के द्वारा अपनाया जाता है तथा इसके बिना आर्थिक विकास सम्भव नहीं होता है। इसलिए इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—

(1) आर्थिक विषमता में कमी

(2) उपलब्ध ससाधनों का सर्वोत्तम प्रयोग

(3) पूंजी निर्माण की ऊंची दर

(4) अधिकतम सामाजिक कल्याण

(5) सामाजिक लागतों में कमी

(6) खुली आंखों वाली अर्थव्यवस्था

(7) नीति तथा क्रियान्वयन में समन्वय

(8) व्यापार चक्रों से मुक्ति

(9) आर्थिक स्थायित्व

(10) अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा

(11) अनियोजित अथवा स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के दोषों से मुक्ति

(12) उपलब्ध ससाधनों का उचित आवण्टन

(13) उपलब्ध ससाधनों के अपव्यय पर रोक

(14) विकासशील राष्ट्रों का तीव्र आर्थिक विकास सभव

(15) क्षेत्रीय सन्तुलित विकास

(16) उच्च जीवन स्तर

(17) आधुनिक तकनीकों का प्रयोग सभव

(18) प्राकृतिक सकटों से छुटकारा

(19) आत्मनिर्भरता की ओर

(20) बेरोजगारी एव अर्द्ध बेरोजगारी का अन्त

(21) राष्ट्रीय आय एवम् प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि

आर्थिक नियोजन के विपक्ष में तर्क

यद्यपि प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन का एक विशेष महत्व होता है जो कि इसके पक्ष में दिये गये उपरोक्त तर्कों से पूर्ण रूप से स्पष्ट है, लेकिन फिर भी इसके विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं—

(1) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन

(2) अधिकारी तन्त्र तथा लालफीताशाही का बोलबाला

(3) तानाशाही प्रवृत्ति को प्रोत्साहन

(4) अकुशलता तथा भ्रष्टाचार का बोलबाला

(5) आवश्यक प्रेरणा की कमी

(6) एक अस्त-व्यस्त अर्थव्यवस्था का सूचक

(7) अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष को बढ़ावा

(8) निजी उद्यमों की समाप्ति

(9) दीर्घकालीन नियोजन उपयुक्त नही

(10) लक्ष्यों की प्राप्ति न होने पर जनता में असतोष

(11) मितव्ययता का अभाव

(12) आवश्यक प्रेरणा की कमी

(13) जनसहयोग का अभाव

(14) लचीलेपन का अभाव

(15) राजनैतिक परिवर्तनों के साथ-साथ नियोजन में परिवर्तन का अभाव।

भारत मे योजनाबद्ध विकास की उपलब्धियां

सन् 1947 में भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। इस समय तक भारत पर अंग्रेजों का शासन था तथा भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था बल्कि अंग्रेजों के द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था का अपने हित में खुलकर शोषण किया गया था। उस समय भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति काफी अस्त व्यस्त थी, राष्ट्रीय आय व प्रति व्यक्ति काफी कम थी आर्थिक विकास की दर भी काफी कम थी, गरीबी व बेरोजगारी के समस्यायें उच्च स्तर पर विद्यमान थी। कृषि, उद्योग, व्यापार व यातायात आदि के विकास पर भी ध्यान नही दिया गया था। भारत किसी भी दृष्टि से उस समय आत्म निर्भर नही था। ये समस्त समस्यायें भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय विद्यमान थीं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया और भारत सरकार ने नियोजित विकास के माध्यम से ही इन समस्याओं का समाधान निकालने की सोची जिसके फलस्वरूप 1950 51 मे भारत में प्रथम पचवर्षीय योजना प्रारम्भ की गयी। भारत मे अभी तक सात पचवर्षीय योजनाये तथा अनेक वार्षिक योजनायें पूरी हो चुकी हैं तथा वर्तमान में आठवीं पचवर्षीय योजना पर कार्य चल रहा है जो 31 मार्च, 1997 को पूरी हो जावेगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अभी तक पचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था का जो विकास सभव हुआ है, उसका विवेचन निम्न प्रकार है—

(1) आर्थिक विकास की दर म वृद्धि—प्रत्येक देश की पचवर्षीय योजनाओं का मुख्य

उद्देश्य अर्थव्यवस्था की आर्थिक विकास की दर में वृद्धि करना होता है। भारत में भी विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सर्वप्रथम उद्देश्य आर्थिक विकास की दर को ऊंचा करना रखा गया है जिसके फलस्वरूप हमें अच्छे परिणाम भी प्राप्त हुए हैं, जैसा कि अग्रलिखित तालिका से स्पष्ट है—

आर्थिक विकास की दरें (प्रतिशत में)

योजना	लक्ष्य	वास्तविक मूल्यों (1980-81) के आधार पर
प्रथम योजना	2.1	3.6
द्वितीय योजना	4.5	3.9
तृतीय योजना	5.6	2.3
चतुर्थ योजना	5.7	3.3
पंचम योजना	4.4	4.9
षष्ठ योजना	5.2	5.4
सप्तम योजना	5.0	5.3
अष्टम योजना	5.6	

स्रोत (1) विभिन्न आर्थिक सर्वेक्षण, तथा

(2) विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूप

यदि हम उपरोक्त तालिका का अवलोकन करें तो पता लगता है कि भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में आर्थिक विकास की दर में लक्ष्य से अधिक वृद्धि संभव हुई है। इसके बाद चौथी योजना के अंत तक वांछित आर्थिक विकास की दर को प्राप्त नहीं किया जा सका है फिर इसके बाद पांचवीं, छठी और सातवीं पंचवर्षीय योजनाओं में आर्थिक विकास की दर में आशा से अधिक वृद्धि संभव हुई है और आठवीं पंचवर्षीय योजना के लिए भी ऐसी आशा की जाती है कि आर्थिक विकास की वांछित दर 5.6 प्रतिशत को अंत तक अवश्य प्राप्त कर लिया जायेगा।

(2) राष्ट्रीय आय एवम् प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि—भारत में पंचवर्षीय योजना काल में राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में अच्छी वृद्धि संभव हुई है। भारत की राष्ट्रीय आय चालू मूल्यों के आधार पर जो वर्ष 1950-51 में 8938 करोड़ रुपये थी वह वर्ष 1960-61 में बढ़कर 15,152 करोड़ रुपये वर्ष 1980-81 में बढ़कर 1,22,772 करोड़ रुपये तथा वर्ष 1990-91 में बढ़कर 4,70,269 करोड़ रुपये हो गयी तथा वर्ष 1994-95 में बढ़कर 8,39,504 करोड़ रुपये होने की संभावना है। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति आय चालू मूल्यों के आधार पर जो वर्ष 1950-51 में 239 रुपये थी, वह वर्ष 1960-61 में बढ़कर 320 रुपये, वर्ष 1980-81 में बढ़कर 1630 रुपये, वर्ष 1990-91 में बढ़कर 4983 रुपये हो गयी तथा वर्ष 1994-95 में बढ़कर 9237 रुपये होने की संभावना है।

(3) कृषि क्षेत्र में विकास—स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारतीय कृषि की दशा काफी पिछड़ी हुई थी। भारत दूसरे देशों से खाद्यान्नों का आयात करता था, लेकिन पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारत सरकार ने कृषि विकास की ओर विशेष ध्यान दिया है। प्रथम

पचवर्षीय योजना कृषि प्रधान योजना थी। अब भारत खाद्यान्नों के मामलों में आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि निर्यात भी करता है। गत वर्षों में भारत में खाद्यान्नों के उत्पादन में जो वृद्धि हुई है, उसे निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है—

भारत में प्रमुख फसलों का उत्पादन (मिलियन टन में)

फसल	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96 (लक्ष्य)
चावल	74.3	74 7	72.9	80.3	81 1	80.0
गेहू	55 1	55 7	57.2	59.8	65.5	60.0
मोटा अनाज	32.7	26 0	36 6	30.8	30 4	36.5
दालें	14.3	12.0	12.8	13.3	14 1	15.5
कुल योग	176 4	168 4	179.5	184.3	191 1	192.0

स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995 96 पेज 131

यदि हम वर्ष (1981-82 = 100) के मूल्यों के आधार पर खाद्यान्नों के उत्पादन सूचकांक का अध्ययन करें तो पता लगता है कि चावल, गेहू, दालों और खाद्यान्नों की उत्पादन की वार्षिक वृद्धि में अच्छी वृद्धि हुई है जिसे निम्न तालिका में दर्शाया गया है—

चावल, गेहू, दालो और खाद्यान्नो के उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दरें (प्रतिशत मे)

वर्ष	चावल	गेहू	दालें	खाद्यान्न
मिश्रित वृद्धि दर				
1967-68 से 1994 95	2.91	4.80	1 04	2.67
1980-81 से 1994 95	3 48	3 70	1.67	2.89

स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995 96 पेज 132

भारत में गत वर्षों में उच्च किस्म की उच्च उत्पादकता वाले बीजों के प्रति हैक्टेअर प्रयोग में भी अच्छी वृद्धि सभव हुई है जिसे निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है—

उच्च किस्म उत्पादकता वाले बीजो का क्षेत्र (मिलियन हैक्टेअर में)

फसल	वर्ष					
	1966-67	1989 90	1990-91	1991 92	1994-95	1995-96 (लक्ष्य)
चावल	0 9	26.2	27 4	28 0	31 0	31.2
गेहू	0.5	20.3	21 0	20.5	23.3	23.3
ज्वार	0.2	6 9	7 1	6.8	7 1	9.0
बाजरा	0 1	5.6	5 7	5 4	5 4	6.9
मक्का	0.2	2.3	3.8	4 0	4.5	4.6
योग	1 9	61.2	65 0	64 7	71.3	75.0

स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995 96 पेज 137

(4) रासायनिक खाद व उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि—भारत में कृषि क्षेत्र में हरित क्रान्ति के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में अच्छी प्रगति संभव हुई है जिसका प्रमुख कारण भारतीय कृषि के क्षेत्र में बढ़ता हुआ रासायनिक खाद व उर्वरकों का उपभोग है। गत वर्षों में भारतीय कृषि फसलों में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश के प्रयोग में अच्छी वृद्धि देखने को मिली है जिसे निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है—

रासायनिक खाद का उपभोग (मिलियन टन में)

वर्ष	नाइट्रोजन (N)	फास्फेट (P)	पोटाश (K)	योग (NPK)
1987-88	5.7	2.2	0.9	0.8
1988-89	7.3	2.7	1.1	11.1
1989-90	7.4	3.0	1.2	11.6
1990-91	8.0	3.2	1.3	12.5
1991-92	8.0	3.3	1.4	12.7
1992-93	8.4	2.9	0.9	12.2
1993-94	8.8	2.7	0.9	12.4
1994-95	9.5	2.9	1.1	13.5
1995-96 (संभावना)	10.8	3.6	1.3	15.7

स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995-96 पेज 138

(5) औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि—भारत में द्वितीय पंचवर्षीय योजना एक उद्योग प्रधान योजना थी, जिसमें देश में उद्योगों के विकास पर विशेष रूप से जोर देने की बात कही गयी थी। इसके बाद भारत में उद्योगों के विकास पर प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में अच्छा ध्यान दिया गया जिसके फलस्वरूप उद्योगों के प्रमुख क्षेत्रों में वार्षिक वृद्धि दर में मिश्रित प्रवृत्ति देखने को मिली है जिसे निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया गया है—

उद्योग के प्रमुख क्षेत्रों में वार्षिक वृद्धि दर (प्रतिशत में)

समय (भार)	खनन (11.46)	निर्माण (77.11)	बिजली (11.43)	सामान्य (100)
1981-82	17.7	7.9	10.2	9.3
1986-87	6.2	9.3	10.3	9.1
1990-91	4.5	9.0	7.8	8.2
1991-92	0.6	-0.8	8.5	0.6
1992-93	0.6	2.2	5.0	2.3
1993-94	3.5	6.1	7.5	6.0
1994-95	6.2	9.0	8.5	8.6

स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995-96 पेज 115

यदि हम उपरोक्त तालिका का विश्लेषण करें तो पता लगता है कि कुल मिलाकर औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में वृद्धि दर में एक मिश्रित प्रवृत्ति पायी जाती है जैसा कि खान, निर्माण उद्योग और बिजली उत्पादन संबंधी समंकों से स्पष्ट है। अंतिम वर्षों में बिजली उत्पादन और खदानों के उत्पादन में वृद्धि की दर धीमी है जबकि निर्माण उद्योगों

में यह वृद्धि दर ऊची है।

भारत सरकार के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में औद्योगिक विकास के लिए अनेक औद्योगिक एव लाइसेंसिग नीतिया घोषित की गयी हैं तथा उनमें समय समय पर आवश्यक सशोधन भी किये गये हैं जिससे औद्योगिक विकास को बढावा मिला है तथा उद्योगों को अनेक छूट एव सुविधायें भी प्राप्त हुई है।

(6) सिंचाई सुविधाओं का विस्तार—जैसा कि हम जानते हैं कि भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है और मानसूनी वर्षा में अनिश्चितता तथा अनियमितता के लक्षण पाये जाते हैं, जो कृषि फसलों को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। इसलिए भारत सरकार के द्वारा देश में पचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई के साधनों के विकास एव विस्तार पर पूरा ध्यान दिया गया है। वर्ष 1950-51 में भारत में सिंचाई सबधी सुविधायें केवल 22.6 मिलियन हैक्टेअर क्षेत्र को ही प्राप्त थीं जो वर्ष 1994-95 में बढकर 87 06 मिलियन हैक्टेअर क्षेत्र को प्राप्त हो गयी हैं। इसमें 32.27 मिलियन हैक्टेअर क्षेत्र को बडी और मध्यम तथा 54 79 मिलियन हैक्टेअर क्षेत्र को छोटी सिंचाई परियोजनाओं से सिंचाई सुविधायें प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार वर्ष 1995-96 के अत तक 89 42 मिलियन हैक्टेअर क्षेत्र को सिंचाई सुविधायें प्राप्त होने की सभावना है जिसमें 33 04 मिलियन हैक्टेअर क्षेत्र को बडी तथा मध्यम श्रेणी की सिंचाई परियोजनाओं से तथा 56.38 मिलियन हैक्टेअर क्षेत्र को छोटी सिंचाई परियोजनाओं से सिंचाई सुविधा में प्राप्त होगी।

(7) विद्युत क्षमता में वृद्धि—भारत में सर्वप्रथम बिजली का उत्पादन वर्ष 1900 में प्रारम्भ हुआ था। इस क्षेत्र में स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् कोई अच्छी प्रगति सभव नहीं हो सकी है। वर्ष 1947 में भारत में विद्युत उत्पादन क्षमता मात्र 19 लाख किलोवाट थी जो वर्ष 1951 में बढकर 23 लाख किलोवाट हो गयी है। देश में पचवर्षीय योजनाओं के प्रारम्भ होने के फलस्वरूप विद्युत की माग और पूर्ति दोनों में अच्छी वृद्धि सभव हुई है लेकिन विद्युत की पूर्ति माग के अनुरूप नहीं बढ सकी है। विद्युत उत्पादन क्षमता को बढाने के लिए देश में अनेक विद्युत परियोजनायें भी प्रारम्भ की गयी हैं। इसके अलावा ताप तथा अणु विद्युत विकास पर भी जोर दिया गया है। वर्ष 1960-61 में विद्युत उत्पादन क्षमता 57 लाख किलोवाट थी जो वर्ष 1980-81 में बढकर 360 लाख किलोवाट हो गयी तथा वर्ष 1992 93 के अत तक 820 लाख किलोवाट होने की सभावना थी।

(8) सकल घरेलू बचत और सकल पूजी निर्माण की दर में वृद्धि—भारत में स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् पचवर्षीय योजनाओं के दौरान अभी तक सकल घरेलू बचत और सकल पूजी निर्माण में उल्लेखनीय वृद्धि सभव हुई है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अभी तक सकल घरेलू बचत और सकल पूजी निर्माण में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में जो वृद्धि सभव हुई है उसे निम्न तालिका में दर्शाया गया है—

सकल घरेलू बचत और सकल घरेलू पूंजी निर्माण में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में वृद्धि

वर्ष	सकल घरेलू बचत	सकल घरेलू पूंजी निर्माण
1950-51	10 4	10.2
1960-61	12 7	15 7
1970-71	15 7	16 6
1980-81	21.2	22 7
1990-91	23 6	27 0
1991 92	22.8	23 4
1992 93	21 2	23 1
1993-94	21.4	21.6
1994 95	24 4	25 2

स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995 96 पेज S-1

(9) विदेशी मुद्रा कोषों मे वृद्धि—भारत सरकार के विदेशी मुद्रा कोषों में गत वर्षों में उल्लेखनीय वृद्धि सभव हुई है। भारत ने विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं में कृषि, उद्योग, व्यापार, यातायात इत्यादि क्षेत्रों के विकास में अच्छी प्रगति की है जिसके फलस्वरूप हमारे आयात घटे हैं और निर्यातों में वृद्धि हुई है जिससे विदेशी मुद्रा कोषों में अच्छी वृद्धि हुई है जिसे निम्न तालिका में बताया गया है—

भारत मे विदेशी मुद्रा कोषो मे वृद्धि (स्वर्ण और विशेष आहरण अधिकार के अलावा)
(राशि करोड रुपयो मे)

वर्ष	राशि
1950-51	911
1960-61	186
1970 71	438
1980-81	4822
1990 91	4388
1991 92	14578
1992 93	20140
1993-94	47287
1994 95	66006

स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995-96 पेज S 1

(10) यातायात एव सन्देशवाहन के साधनो का विकास—यातायात एव सदेशवाहन के साधनों का किसी देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। भारत में यातायात एव सन्देशवाहन के साधनों की अपर्याप्त व्यवस्था होने के कारण इनके विकास को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है। वर्ष 1950 51 में रेल मार्गों की लम्बाई 53 6 हजार किमी थी वह वर्ष 1960 61 में बढकर 56.3 हजार किमी और वर्ष 1990 91 में बढकर 62 4 हजार किमी हो गयी। वर्ष 1993 94 में रेल मार्गों की लम्बाई बढकर 62 5 हजार किमी से भी अधिक हो गयी है। देश में रेलों के द्वारा वर्ष 1950-51 में

128 4 करोड यात्री लाये व ले लाये गये थे, जो वर्ष 1960-61 में बढकर 198 4 करोड यात्री और वर्ष 1990-91 में बढकर 385 8 करोड यात्री हो गये। वर्ष 1994-95 में यह सख्या बढकर 391.5 करोड यात्री हो जाने की सभावना है। इसी प्रकार रेलों के द्वारा वर्ष 1950-51 में 9.3 करोड टन माल ढोया गया था जो वर्ष 1960 61 में बढकर 15 6 करोड टन तथा वर्ष 1990-91 में बढकर 34 1 करोड टन हो गया। वर्ष 1994-95 में रेलों के द्वारा 38 16 करोड टन माल ढोये जाने की सभावना है।

भारत में वर्ष 1950 51 में पक्की सडकों की लम्बाई 1.57 लाख किमी थी जो वर्ष 1960 61 में बढकर 2 63 लाख किमी और वर्ष 1992 93 में बढकर 9 6 लाख किमी हो गयी। वर्ष 1950-51 में देश में राष्ट्रीय राजमार्गों की लम्बाई 22 हजार किमी थी जो वर्ष 1992 93 में बढकर 34 हजार किमी हो जाने की सभावना है। वर्ष 1970-71 में राज्य राज मार्गों की लम्बाई 52 हजार किमी थी जो वर्ष 1990-91 में बढकर 1 22 लाख किमी हो गयी। वर्ष 1950-51 में देश में पजीकृत वाहनों की सख्या 3 06 लाख थी वह वर्ष 1992 93 में बढकर 253 लाख हो गयी है।

भारत की कुल जहाजी क्षमता वर्ष 1950-51 में 3 72 लाख टन थी जो वर्ष 1994-95 के अत में बढकर 7 मिलियन जी आर टी हो गयी है तथा जहाजों की सख्या 80 से बढकर 438 हो गयी है। सातवी पचवर्षीय योजना के अत तक भारतीय जहाजरानी की क्षमता 75 लाख जी आरटी करने का लक्ष्य रखा गया था। इसी प्रकार भारत में डाकघरों, तारघरों तथा टेलीफोन की सख्याओं में भी उल्लेखनीय वृद्धि सभव हुई है।

(11) रोजगार के अवसर—देश में उपलब्ध मानवीय ससाधनों का सदुपयोग करने के लिए गत 45 वर्षों में विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 12.5 करोड अतिरिक्त लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान किये गये हैं। प्रथम पचवर्षीय योजना काल में 75 लाख, द्वितीय पचवर्षीय योजना काल में 95 लाख तृतीय पचवर्षीय योजनाकाल में 145 करोड लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान किये गये। चतुर्थ पचवर्षीय योजनाकाल में लगभग 1 70 करोड अतिरिक्त लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान किये गये। इतना होने पर जनसख्या में विस्फोटक वृद्धि, आर्थिक विकास की मन्द गति तथा योजनाकाल में मानव शक्ति नियोजन की दोषपूर्ण व्यवस्था के कारण अब देश में बेरोजगारों की सख्या बढकर लगभग 5 करोड हो गयी है जिनमें से पजीकृत बेरोजगारों की सख्या लगभग 4.5 करोड है। सातवीं पचवर्षीय योजना के अत तक 4 करोड़ अतिरिक्त मानक वर्ष रोजगार देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। आठवी पचवर्षीय योजना में रोजगार के अवसरों में 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है।

(12) उपभोग तथा जीवन स्तर मे सुधार—भारत सरकार के द्वारा पचवर्षीय योजनाकाल में जो उपरोक्त आर्थिक विकास सम्बन्धी कार्यक्रम अपनाये गये हैं उनसे नागरिकों के उपभोग तथा जीवन स्तर में भी काफी वृद्धि सभव हुई है। गत वर्षों में कुछ प्रमुख वस्तुओं के उपभोग में प्रति व्यक्ति उपलब्धता में जो वृद्धि सभव हुई है उसे निम्न

तालिका में दर्शाया गया है—

कुछ प्रमुख वस्तुओं के उपभोग की प्रति व्यक्ति उपलब्धता

वर्ष	खाद्य तेल (Kg.)	वनस्पति घी (Kg.)	चीनी (Kg.)	कपड़ा (मीटर)	चाय (ग्राम)	कॉफी (ग्राम)	घरेलू बिजली (Kwh)
1955-56	2.5	0 7	5.0	14 4	362	67	2.4
1965-66	2.7	0.8	5 7	16 4	346	72	4.8
1975-76	3.5	0.8	6.1	14.6	446	62	9 7
1985-86	5.0	1.3	11 1	19 0	589	71	22.9
1990-91	5.5	1 0	12.7	24 1	612	59	38.2
1991 92	5.6	1 0	13 0	22.9	655	64	41 9
1994 95 (प्रावधान)	6.5	1.0	13 0	25 7	667	NA	NA

स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995-96 पेज S-26

(13) सामाजिक सेवाओं का विस्तार—भारत में पचवर्षीय योजना काल में सामाजिक सेवाओं के विस्तार पर भी विशेष रूप से ध्यान दिया गया है जिनके अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, महिला और शिशु विकास कल्याण, ग्रामीण विकास और अन्य कार्यक्रमों के विकास पर अनेक कार्यक्रम अपनाये गये हैं। भारत में वर्ष 1950-51 में 1000 जनसख्या के पीछे जो जन्म दर 39 9 थी वह वर्ष 1993-94 में गिरकर 28 6 रह गयी है। इसी प्रकार वर्ष 1950 91 में 1000 जनसख्या के पीछे जो मृत्युदर 27 4 थी वह वर्ष 1993-94 में घटकर मात्र 9.2 रह गयी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में परिवार कल्याण कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जा रही है। भारत में वर्ष 1950-51 में पुरुषों की जीवन प्रत्याशा आयु 32.4 वर्ष थी वह वर्ष 1992 93 में बढकर 60 4 वर्ष हो गयी है। ऐसे ही महिलाओं की जीवन प्रत्याशा आयु जो वर्ष 1950-51 में 31 7 थी वह वर्ष 1992 93 में बढकर 61.2 वर्ष हो गयी है।

भारत में पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत वर्ष 1950-51 में जो 27 16 था वह वर्ष 1990-91 में बढकर 64 1 हो गया है। इसी प्रकार महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत वर्ष 1950-51 में जो 8.86 था वह वर्ष 1990-91 में बढकर 39.3 हो गया है। भारत में वर्ष 1951 में मेडीकल कालेजों, हास्पिटल तथा चिकित्सालयों की सख्या जो क्रमश 28, 2694 तथा 6515 थी, वह वर्ष 1992 में बढकर क्रमश 146, 13692 तथा 27403 हो गयी। सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों की सख्या जो वर्ष 1951 में शून्य थी वह वर्ष 1995 में 2385 हो गयी। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की सख्या वर्ष 1951 में जो 725 थी वह वर्ष 1995 में बढकर 21693 हो गयी। इसी प्रकार देश में उप स्वास्थ्य केन्द्रों की सख्या जो वर्ष 1951 में शून्य थी वह वर्ष 1994-95 में 1,31,900 हो गयी। डाक्टरों की सख्या वर्ष 1951 में जो 61840 थी, वह वर्ष 1992 में बढकर 4,10,875 हो गयी। दन्त चिकित्सकों

की सख्या जो वर्ष 1951 में 3290 थी वह वर्ष 1993 में बढकर 19523 हो गयी। इसी प्रकार नर्सों की सख्या वर्ष 1951 में जो 16550 थी, वह वर्ष 1993 में बढकर 4,49,351 हो गयी। अस्पतालों में सभी प्रकार के विस्तरों की सख्या वर्ष 1951 में जो 1,17,178 थी, वह वर्ष 1991 में बढकर 8,10,548 हो गयी। इन कार्यक्रमों के साथ-साथ भारत सरकार ने अनुसूचित जाति व जनजाति के विकास, श्रम और रोजगार, पीने के पानी की समुचित व्यवस्था इत्यादि कार्यक्रमों पर भी बल दिया है।

पचवर्षीय योजनाओ की आलोचनाये अथवा असफलतायें

जैसा कि उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारतीय अर्थव्यवस्था काफी अस्त-व्यस्त थी व पिछडी हुई दशा में थी, क्योंकि अंग्रेजों ने अपने शासन काल में भारत के आर्थिक विकास की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया था और उन्होंने जो भी आर्थिक कार्य किये वे सब उनके अपने हित में थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार का ध्यान इन सब बातों की ओर विशेष रूप से गया और भारत सरकार ने पचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारत का आर्थिक विकास करना उचित समझा, जिसके फलस्वरूप भारत में तब से लेकर अभी तक समस्त आर्थिक विकास सम्बन्धी कार्य आर्थिक नियोजन के माध्यम से ही किया जाता है। भारत में अभी तक सात पचवर्षीय योजनायें तथा अनेक वार्षिक योजनायें पूरी हो चुकी हैं तथा आठवीं पचवर्षीय योजना पर कार्य चल रहा है। अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में अच्छे सुधार हुए हैं जैसे आर्थिक विकास की दर में वृद्धि राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बेरोजगारी तथा गरीबी की समस्या का काफी हद तक निदान, कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि, व्यापार तथा यातायात के क्षेत्र में सुधार इत्यादि। फिर भी अनेक आधार पर भारत में अपनाये गये आर्थिक नियोजन की कटु आलोचना की जाती है—

(1) लक्ष्यों तथा उपलब्धियों के अन्तर—देश में तृतीय तथा चतुर्थ पचवर्षीय योजनाकाल में आर्थिक विकास की दर क्रमश 5 तथा 5.5 प्रतिशत निर्धारित की गयी थी, जबकि आर्थिक विकास की वास्तविक दर वर्ष 1965 में मात्र 2.5 प्रतिशत और वर्ष 1984-85 में मात्र 5 प्रतिशत रही। इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादन में 8 से 10 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, जबकि वास्तविक वृद्धि मात्र 7 प्रतिशत ही हुई। खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता का सपना सजोया गया था, लेकिन विदेशी आयातों पर सदैव निर्भरता बनी रही। वर्तमान में गरीबी की समस्या भी भयकर रूप से बनी हुई है। इस समय भारत की लगभग एक तिहाई जनसख्या गरीबी की रेखा के नीचे अपना जीवन बिता रही है। आठवीं पचवर्षीय योजना काल में आर्थिक विकास की दर का लक्ष्य 5 6 प्रतिशत निर्धारित किया गया है।

(2) बेरोजगारी की समस्या में निरतर वृद्धि—देश में योजनाबद्ध विकास के गत वर्षों में बेरोजगारी की समस्या का निदान तो दूर की बात है, बल्कि इसमें और अधिक वृद्धि

देखने को मिली है। वर्ष 1950-51 में जहां बेरोजगारी की संख्या मात्र 40 लाख थी, वह वर्ष 1992 93 में बढ़कर लगभग 4.5 करोड़ हो गयी है। वर्तमान में देश में लगभग 110 लाख शिक्षित बेरोजगार हैं जिनमें लगभग एक लाख इन्जीनियरों, डाक्टरों और तकनीकी प्रशिक्षितों के बेरोजगार होने का अनुमान है। देश में एक समिति ने दीर्घकालीन योजना में लगभग 5 करोड़ लोगों के बेरोजगार होने की सम्भावना व्यक्त की थी। सोवियत रूस ने अपनी पहली पचवर्षीय योजना में 5 वर्षों में ही बेरोजगारी की समस्या का निदान कर दिया था जबकि भारत अपने योजनाबद्ध विकास के 45 वर्षों में भी इस समस्या का समाधान नहीं कर पाया है। इतना ही नहीं, भारत में इस समस्या ने धीरे धीरे अपना रूप काफी जटिल बनाया है।

(3) विदेशी सहायता तथा हीनार्थ प्रबन्धन पर अधिक निर्भरता—भारत की पचवर्षीय योजनाओं की वित्तीय व्यवस्था में प्रारम्भ से ही विदेशी विनिमय की समस्या बनी हुई है जिसके कारण वर्ष 1966 में भारतीय रुपये का 36.5 प्रतिशत अवमूल्यन करना पड़ा था। इसी प्रकार वर्ष 1991 में दो बार भारतीय रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा। हीनार्थ प्रबन्धन से पहले 18 वर्षों में 3262 करोड़ रुपये एकत्रित किये गये थे। चतुर्थ पचवर्षीय योजना काल में भी हीनार्थ प्रबन्धन के माध्यम से 858 करोड़ रुपये जुटाने का प्रावधान रखा गया था जबकि वास्तव में इस योजना काल में 2858 करोड़ रुपये से भी अधिक होने का अनुमान था। इसी प्रकार छठी पचवर्षीय योजना काल में हीनार्थ प्रबन्धन से 15,684 करोड़ रुपए वास्तव में एकत्रित किये गये जबकि लक्ष्य मात्र 5000 करोड़ रुपये जुटाने का प्रावधान रखा गया था। सातवीं पचवर्षीय योजना काल में हीनार्थ प्रबन्धन से 14 000 करोड़ रुपये एकत्रित करने का प्रावधान रखा गया था। जबकि इस योजना के अंत तक हीनार्थ प्रबन्धन से 68,000 करोड़ रुपये से भी अधिक जुटाये गये थे। आठवीं पचवर्षीय योजना काल में हीनार्थ प्रबन्धन से 20,000 करोड़ रुपये एकत्रित करने का प्रावधान रखा गया है।

(4) बढ़ते हुए मूल्यों की समस्या तथा उपयुक्त मूल्य नीति का अभाव—भारत सरकार के द्वारा पहली तथा दूसरी पचवर्षीय योजना काल में तो कोई सुनिश्चित मूल्यनीति नहीं अपनायी गयी थी, लेकिन तीसरी पचवर्षीय योजना काल में पहली बार मूल्य नियन्त्रण के सम्बन्ध में एक ऐसी नीति अपनायी गयी थी जो उपभोक्ता और उत्पादकों के हितों को मद्देनजर रखते हुए विकासोन्मुख हो। लेकिन इस नीति के कुशल क्रियान्वयन के अभाव, अनिवार्य वस्तुओं के उत्पादन में धीमी गति से वृद्धि, बढ़े पैमाने पर हीनार्थ प्रबन्धन तथा अप्रत्यक्ष करों से मूल्यों में बड़ी मात्रा में वृद्धि सम्भव हुई है। वर्ष 1961 = 100 के आधार मूल्यों के आधार पर 1974 के थोक मूल्य सूचकांक 335 तक पहुंच गया था। वर्ष 1973-74 और 1974 75 में मूल्य वृद्धि की दर क्रमश 15 प्रतिशत और 21 प्रतिशत रही है जिसके फलस्वरूप चोरबाजारी, जमाखोरी मुनाफाखोरी, भ्रष्टाचार इत्यादि जैसी गलत प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला है तथा साधारण जनता को दैनिक उपभोग की

विभिन्न वस्तुयें उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं। इस सबका सम्पूर्ण प्रगति पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। वर्ष 1979-80 में मूल्यों में वृद्धि 21 प्रतिशत थी तथा वर्ष 1980-81 में यह वृद्धि 17 प्रतिशत थी। वैसे वर्ष 1993-94 के प्रथम 4 माह में यह मूल्य वृद्धि कम होकर 7 प्रतिशत रह गयी है।

(5) समाजवाद और आत्मनिर्भरता के लक्ष्य की कोरी कल्पना—भारत अभी तक 45 वर्षों के आर्थिक नियोजन के बावजूद भी खाद्यान्नों के उत्पादन में पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं हो पाया है। प्रथम पचवर्षीय योजना काल में भारत में 595 करोड रुपये के खाद्यान्नों का आयात किया गया था वह द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजनाकाल में बढकर क्रमश 850 करोड रुपये और 1150 करोड रुपये हो गया। इसी प्रकार वर्ष 1994-95 में भी भारत को विदेशों मे 18613 करोड रुपये का पेट्रोलियम तेल और लुब्रीकेंट, 19990 करोड रुपये का पूजीगत सामान, 9884 करोड रुपये की गैर विद्युतीय मशीनरी, उपस्कर तथा उपकरण और 3653 करोड रुपये के लोहा और इस्पात आयात करने पडे थे।[1] इन समस्त बातों को देखकर ऐसा लगता है कि समाजवाद की कल्पना मात्र सैद्धान्तिक कल्पना बनकर रह गयी है। गरीबी की सीमा में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। आर्थिक विषमता और आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण में लगातार बढोतरी हुई है। भारत की लगभग एक तिहाई जनसख्या वर्तमान में गरीबी की रेखा के नीचे अपना जीवन व्यतीत कर रही है तथा कार्यशील जनसख्या का लगभग 30 प्रतिशत भाग बेकारी की बीमारी से पीडित है।

(6) आर्थिक विषमता और आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण की बढ़ता—यद्यपि भारत की प्रत्येक पचवर्षीय योजना में आर्थिक विषमता और आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को कम करने के उद्देश्य निर्धारित किये गये थे, लेकिन वास्तव में हम इन उद्देश्यों को पूरी तरह प्राप्त नहीं कर सके हैं। आर्थिक विषमता में गत वर्षों में लगातार वृद्धि देखने को मिली है अथात धनी और अधिक धनी तथा गरीब और अधिक गरीब होते चले गये हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण पूजीपतियों और सत्ताधारियों के हाथों में सभव हुआ है। प्राचीन जागीरदारों तथा जमींदारों के स्थान पर अब नवीन पूजीवादी सामन्तों का उदय हुआ है जिसमें आर्थिक नियन्त्रण, घाटे की वित्त व्यवस्था तथा लाइसेंस पद्धति का अच्छा योगदान रहा है। डॉ आरके हजारी, दत्त समिति, एकाधिकार आयोग इत्यादि की रिपोर्ट इस मत के पक्ष में अपनी स्पष्ट सहमति प्रकट करते हैं।

(7) बडी योजनाओं के कारण लघु उद्योगों की उपेक्षा—भारत की पचवर्षीय योजनाओं में भारत सरकार के द्वारा बडी बडी योजनाओं के निर्माण एव क्रियान्वयन पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है तथा लघु योजनाओं की उपेक्षा की गयी है। बडी तथा दीर्घकालीन परियोजनाओं में अधिक विनियोजन तथा लम्बे समय में इनसे लाभ प्राप्त होने की वजह

1 स्रोत आर्थिक सर्वेक्षण 1995 96 S-84

से अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। इससे निश्चित क्षेत्र के लोगों को ही लाभ प्राप्त हुआ है तथा आर्थिक विषमता में वृद्धि सभव हुई है जिसके फलस्वरूप छोटी-छोटी सिंचाई परियोजनाओं तथा लघु एव कुटीर उद्योगों पर पर्याप्त ध्यान न दिये जाने के कारण अच्छे लाभ नहीं मिल पाये हैं। इसी तरह आधार भूत उद्योगों के विकास में उपभोग वस्तुओं के उद्योगों की उपेक्षा की गयी है जिसका दुष्प्रभाव यह हुआ है कि वस्तुओं की कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि से लोगों के जीवन स्तर में सुधार सभव नहीं हो सका है।

(8) आत्मनिर्भरता की कमी—योजनाबद्ध विकास के पिछले 45 वर्षों में भी भारत अभी तक पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर नहीं हो पाया है। हमें अभी तक विदेशों से खाद्यान्न का आयात करना पडता है। ऐसे ही औद्योगिक विकास के लिए कच्चे माल, मशीनरी तथा खनिज तेल इत्यादि के लिए हमें दूसरे राष्ट्रों पर निर्भर रहना पडता है। देश में तेल सकट के बढ जाने के कारण सातवीं पचवर्षीय योजना काल में वित्तीय ससाधनों पर बहुत बुरा प्रभाव पडा है। प्रथम पचवर्षीय योजना काल में भारत में 595 करोड रुपये के खाद्यान्नों का आयात किया गया था वह द्वितीय तथा तृतीय पचवर्षीय योजना काल में बढकर क्रमश 850 करोड रुपये और 1150 करोड रुपये का हो गया। इसी प्रकार वर्ष 1994-95 में भी भारत को विदेशों से 18613 करोड रुपये का पेट्रोलियम तेल और लुब्रीकेंट, 19990 करोड रुपये का पूजीगत सामान, 9884 करोड रुपये की गैर विद्युतीय मशीनरी, उपम्कर तथा उपकरण और 3653 करोड रुपये के लोहा और इस्पात आयात किये गये थे।

(9) क्षेत्रीय विषमता में वृद्धि और असतुलित विकास—देश की पचवर्षीय योजनाओं में बडी बडी परियोजनाओं पर विशेष बल, लाइसेन्सिंग नीति के क्रियान्वयन में पाया जाने वाला भ्रष्टाचार, राजनैतिक स्वार्थ तथा सरकारी अविवेकपूर्ण नीति से क्षेत्रीय विषमता में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। अर्थव्यवस्था में होने वाले आर्थिक विकास कार्यों का अधिकाश लाभ बडे भूस्वामियों, राजनीतिज्ञों और पूजीपतियों को प्राप्त हुआ है। हरित क्रान्ति का लाभ बडे और समृद्ध कृषकों को पहुचा है। इसी तरह धनी और अधिक धनी तथा गरीब और अधिक गरीब हुए हैं।

(10) केन्द्र और राज्यों मे आपसी सहयोग का अभाव—भारत में गत वर्षों में केन्द्र और राज्यों के मध्य आपसी सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे हैं जिसके प्रमुख कारण—भूमि सुधार कार्यक्रमों को लागू करना, पचवर्षीय योजनाओं के लिए अतिरिक्त वित्तीय ससाधन जुटाना, कुछ परियोजनाओं के पारस्परिक विवाद इत्यादि की वजह से लक्ष्यों और उपलब्धियों में अतर देखने को मिला है। वर्तमान में इस प्रकार की प्रवृत्ति ने काफी जोर पकडा है। विभिन्न राज्यों में पायी जाने वाली राजनैतिक अस्थिरता ने भी आर्थिक विकास में बाधा पहुचायी है।

(11) विविध—उपरोक्त के अलावा विभिन्न योजनाओं की विविधता विभिन्न क्षेत्रों

में देखने को मिली है। सरकारी आदोलन में गुणात्मक प्रगति का अभाव पाया जाता है। भारत में वदली हुई जनसख्या को रोकने के लिए किये गये प्रयासों से पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई है क्योंकि अभी तक मात्र 500 लाख अतिरिक्त बच्चों के जन्म पर ही रोक लग पायी है। एक वर्ष में जवकि इससे अधिक वृद्धि जनसख्या में आसानी से हो जाती है। वर्तमान में देश में जनसख्या में 2.5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है। वित्तीय व्ययों पर विशेष रूप मे ध्यान दिया गया है तथा भौतिक लक्ष्यों को गौण स्थान प्रदान किया गया है।

इस तरह देश के योजनावद्ध विकास के गत 45 वर्षों की स्थिति के अवलोकन के बाद यह प्रतीत होता है कि यहा पर सफलताओं और असफलताओं के मध्य एक अजीव सा सयोग रहा है जिसके कारण योजना निर्माताओं को भविष्य में और अधिक सतर्क तथा कार्यकुशल रहने की आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप योजनाओं के विवेकपूर्ण निर्माण, कुशल क्रियान्वयन और आवश्यक परिश्रम तथा त्याग से अधिक विकास की सम्भावनाओं मे वृद्धि की जा सकेगी। □

2

सर्वै भूमि गोपाल की

के.डी. गंगराडे

> *लेखक का मानना है कि संसद द्वारा 81वां संविधान संशोधन पारित कर देना और भूमि सुधारों को संविधान की नौवीं अनुसूची में रख देना ही काफी नहीं है। इस संविधान संशोधन पर कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। इसके साथ ही भूमि सुधार कानूनों को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए लोगों और विशेष रूप से भू स्वामियों को मानसिक रूप से तैयार करना होगा।*

"ग्रामीण जीवन को सुधारने का केवल एक ही मौलिक उपाय है तथाहि, भूमि पर किसान के स्वामित्व के एक ऐसे तरीके को प्रारंभ करना जिसके अन्तर्गत भूमि को जोतने वाला ही उसका स्वामी हो और वह किसी जमींदार या तालुकदार के माध्यम के बिना ही सीधा सरकारों को मालगुजारी चुकाए।"

(भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस प्रस्ताव, 1935)

लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन को तीन पद्धतियों से बदला जा सकता है। ये हैं कानून, करुणा (दया अथवा शिक्षा के द्वारा प्रेरित करना) तथा क्रान्ति (अहिंसक अथवा हिंसक परिवर्तन)। गांधीजी अक्सर कहते थे "भारत की आत्मा गांवों में रहती है।" भूमि सुधार ही ग्रामीण विकास की कुंजी है। प्रस्तुत लेख तीन खंडों में है। पहले खंड में कानून के द्वारा विशेष रूप से काश्तकार को भूमि का स्वामी बनाकर आय की विषमता को दूर करके समाज का सुधार करने की चर्चा है। दूसरे खंड में प्रेम और अहिंसक संघर्ष द्वारा समाज को बदलने की चर्चा है। तीसरे खंड में संविधान के 81वें संशोधन का विश्लेषण है, विशेष रूप से पश्चिम बंगाल के संदर्भ में पंचायत राज संस्थाओं की भूमिका का। परिवर्तन की इन तीन पद्धतियों में कोई ऊंच नीच का क्रम नहीं है। ये एक-दूसरे से स्वतंत्र भी अपना काम कर सकती हैं। लेकिन श्रेष्ठ परिणाम तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब इन तीनों पद्धतियों में समन्वय हो और ये एक साथ मिल कर काम करें। कानून तभी प्रभावी साधन बन सकता है जब लोगों को कानून बनाने से पहले ही तैयार अथवा शिक्षित किया जाए। जब कोई प्रावधान कानून का रूप ले तो यह आवश्यक है कि लोगों को उसकी पूरी जानकारी दी जाये, उन्हें शिक्षित किया

जाये ताकि वे अपने अधिकारों को, कर्तव्यों को, दायित्वों को समझें। ग्रामीण जनता के जीवन स्तर को ऊचा उठाने के लिए, भारतीय समाज में अभीष्ट परिवर्तन लाने के लिए कानून अनुकूल साधक का काम कर सकता है।

भारतीय समाज की प्रारंभिक विशेषताएं

लगभग उनीसवीं शताब्दी के प्रारभ तक भारतीय ग्रामीण सगठन का रूप समृष्ट जीवन वाले ग्राम समुदाय का था जिसमें अधिकार और कर्तव्य तथा समुदाय के विभिन्न वर्गों के आपसी आर्थिक तथा सामाजिक सबध परपरा से निर्धारित होते थे और ग्राम पचायत के माध्यम से लागू किये जाते थे। राज्य को मालगुजारी की अदायगी के मामले में सपूर्ण ग्राम समुदाय एक इकाई के रूप में व्यवहार करता था। विशिष्ट अपवाद रूप में ही (ग्राम से) बाहर के किसी आदमी को गाव की भूमि पर स्वामित्व प्राप्त करने की अनुमति दी जाती थी। ग्राम समुदाय की अनुमति के बिना कोई भी व्यक्ति गाव में बाहर के किसी व्यक्ति को भूमि नहीं बेच सकता था न ही किसी को हस्तान्तरित कर सकता था। सपूर्ण सगठन खेती और खेती करने वाली जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जमीन की जोत पर केन्द्रित ग्राम के सामुदायिक जीवन की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर ढाला गया था।

ब्रिटिश शासन ने एक सर्वथा भिन्न व्यवस्था बनाई जिसने बलात् परिवर्तन की गति को तेज कर दिया। इस व्यवस्था में आर्थिक परिवर्तन की सामाजिक कीमत ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गों जैसे खेतिहर मजदूरों, बटाई पर खेती करने वाले छोटे किसानों, गाव के शिल्पियों और निम्नकर्म करने वाले सेवकों को चुकानी पडी। ब्रिटिश मालगुजारी व्यवस्था ने भूमि में, जो स्वच्छदतापूर्वक खरीदी और बेची जा सकती थी, मालिकाना लगान वसूली के हितों को पैदा कर दिया। स्वतत्रता से पहले गाव की भूमि पर जो पट्टे की व्यवस्था लागू थी, उसे तीन मोटी श्रेणियों में बाटा जा सकता है जमींदारी, महलवाडी और रैयतवाडी।

भारत में ग्रामीण जनता के बहुत बडे प्रतिशत का गरीबी की रेखा से नीचे रहने का एक कारण यह है कि यहा प्रति परिवार खेती की जमीन का आकार छोटा है। उदाहरण के लिये प्रत्येक तीन में से दो जोतें दो हेक्टेयर से भी कम हैं। देश में 87 लाख छोटे किसान हैं जिनके पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है।

यद्यपि अंग्रेजों के द्वारा प्रचलित मालगुजारी व्यवस्था के कारण उत्पन्न हुए बिचौलियों को मिटाने के लिये पहले भी कदम उठाये गए थे वस्तुत व्यवहार में यह काम 1948 में मद्रास में बनाए गए कानून मे ही शुरू हुआ। यह कानून सभी राज्यों में पास किया गया। जबकि उद्देश्य यह था कि खेतिहर (किसान) और राज्य के बीच बिचौलियों को मिटाया जाए, व्यवहार में बनाए हुए कानूनों ने बिचौलियों को जमींदारों के बराबर कर दिया जिसके परिणामस्वरूप रैयतवाडी के अन्तर्गत भूमि पर एकाधिकार

रखने वाले भूस्वामियों और मालगुजारी वसूलने वालों का एक वर्ग इस कानून-व्यवस्था से अछूता छूट गया। साम्यवादी देशों के विपरीत भारत में बिचौलियों को मिटाने का काम हरजाना दिये बिना नहीं किया गया।

भूमि सुधार के द्वारा खेत जोतने वाले को भूमि का स्वामी बनाने के सभी प्रयत्न ज्यादातर असफल रहे हैं। यह इसी बात से स्पष्ट है कि 1984 के अंत में देश के विभिन्न न्यायालयों में भूमि-परिसीमन के 1.6 लाख मामले विचाराधीन थे। भारत में ग्रामीण जनता के बहुत बड़े प्रतिशत का गरीबी की रेखा से नीचे रहने का एक कारण यह है कि यहां प्रति परिवार खेती की जमीन का आकार छोटा है। उदाहरण के लिये प्रत्येक तीन में से दो जोतें दो हेक्टेयर से भी कम हैं। देश में 873 लाख ऐसे छोटे किसान हैं जिनके पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है।

भूमि सुधार की प्रक्रियाओं का क्रियान्वयन इतना धीमा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के 48 वर्षों बाद भी 23.8 प्रतिशत लोग भूमि के 71 प्रतिशत भाग पर अपना प्रभुत्व बनाए हुए हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार गावों में भूमिहीन मजदूरों की संख्या 70 लाख थी। इसमें प्रतिवर्ष 0.20 लाख भूमिहीन मजदूरों की संख्या जुड़ रही है। नीचे दिये गये विवरण से भारत में भूमि और लोगों के संबंधों की व्यापक जानकारी मिलती है

तालिका 1

खेती की जमीन का आकार	ऐसी इकाइयों की संख्या	कुल प्रतिशत
10 हेक्टेयर	27.66 000	4 0
4 से 10 हेक्टेयर	79.32 000	11 2
2 से 4 हेक्टेयर	1.06.81 000	15 1
1 से 2 हेक्टेयर	1.34.32 000	19 1
1 से कम हेक्टेयर	3.56.82 000	50.2
कुल	7.04 93 000	100

स्रोत 4 मई 1981 का लोकसभा का तारांकित प्रश्न संख्या-644

पट्टे की सुरक्षा और खेती की भूमि का परिसीमन

ग्रामीण क्षेत्र में आमदनी का प्रमुख साधन भूमि है। यदि आमदनी का प्रमुख स्रोत भूमि, ग्रामीण जनता के एक छोटे अंश को ही लाभ पहुंचाता है तो भूमि पर स्वामित्व का (ग्रहण किया हुआ) दावा सामाजिक न्याय के लक्ष्य को पूरा करने में असफल रहता है। इसलिये आय की असमानता को कम करने का सबसे श्रेष्ठ उपाय भू-स्वामित्व में विद्यमान असमानता को कम करना ही है।

पट्टे की सुरक्षा

सर आर्थर यंग ने टिप्पणी की है "मनुष्य को रूखी चट्टान का पक्का अधिकार दे दो,

वह उसे बगिया में बदल देगा, उसे एक बगिया नौ वर्ष के पट्टे पर दे दो, वह उसे रेगिस्तान में बदल देगा।" इसलिये, पट्टेदारी के अधिकार की समाप्ति भूमि का सुधार करने के लिए उद्यम का, बेकार पड़ी हुई भूमि को सुधारने का अथवा खेती की जमीन की उर्वरता को बनाये रखने की अपेक्षित दीर्घकालिक योजनाओं का नाश कर देती है। परिणामस्वरूप सामाजिक न्याय का लक्ष्य और अधिकतम उत्पादन दोनों की ही दृष्टि से पट्टेदारी की सुरक्षा प्रदान करने वाली न्याय-व्यवस्था को अंगीकार करने की आवश्यकता सिद्ध होती है। ऐसी न्याय-व्यवस्था का प्रयोजन खेती करने वाले किसानों को खेत की जमीन पर स्थायी प्रभुता का अधिकार प्रदान करना होना चाहिए।

खेती की भूमि का परिसीमन

भारत में भूमि सुधार का प्राथमिक लक्ष्य था भूस्वामियों की समस्त भूमि यदि एक निश्चित सीमा से अधिक हुई तो राज्य उस भूमि का अधिग्रहण कर लेगा और ये छोटे किसानों में बाट दी जाएगी ताकि उनकी खेती योग्य भूमि आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बन जाए अथवा भूमिहीन मजदूरों को दे दी जाए ताकि उनकी जमीन की आवश्यकता पूरी हो सके। विद्यमान खेती की भूमि और इसके लागू करने की इकाई के परिसीमन के निमित्त कानून दो चरणों में बनाए गए हैं। पहला चरण, जो 1972 तक चला, परिसीमन विषयक कानून अधिकतर भूस्वामी को इस कानून के लागू करने की इकाई मानता था। सन् 1972 के बाद यह निश्चय किया गया कि परिवार को खेती की भूमि का आधार माना जाए। इससे आगे, परिसीमन सीमा को भी घटा दिया गया ताकि गावों में आमदनी के इस दुर्लभ स्रोत का अधिक न्यायिक ढंग से बटवारा हो सके।

सर आर्थर यंग ने टिप्पणी की है "मनुष्य को रूखी चट्टान का पक्का अधिकार दे दो, वह उसे बगिया में बदल देगा, उसे एक बगिया नौ वर्ष के पट्टे पर दे दो, वह उसे रेगिस्तान में बदल देगा।"

समस्या

विद्यमान खेती की भूमि पर सीमा का प्रतिबंध लागू करना एक जटिल समस्या है। इसके लिए वर्तमान भूमि-पद्धति का पुनर्गठन करना जरूरी है। इसके लिए स्वामित्व के अधिकारों की पूरी जाच करनी होगी। इसके साथ कई समस्याए जुड़ी हुई हैं जैसे, दुर्भावना से किए गए हस्तान्तरण, छूट और अतिरिक्त भूमि की व्यवस्था।

भारत में भूमि सुधार का प्राथमिक लक्ष्य था कि भूस्वामियों की समस्त भूमि यदि एक निश्चित सीमा से अधिक हुई तो राज्य उस भूमि का अधिग्रहण कर लेगा और ये छोटे किसानों में बाट दी जाएगी ताकि उनकी खेती योग्य भूमि आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बन जाए अथवा भूमिहीन मजदूरों को दे दी जाएगी ताकि उनकी जमीन की आवश्यकता पूरी हो सके।

अतिरिक्त भूमि और उसका बंटवारा

भूमि परिसीमन के पुराने कानून के अन्तर्गत 1972 तक भारत में करीब 0 23 लाख एकड भूमि अतिरिक्त घोषित की गई थी जिसमें से 0 13 लाख एकड का पुन आबटन हुआ था। बिहार, कर्नाटक, उडीसा और राजस्थान में कोई भूमि अतिरिक्त घोषित नहीं हुई थी। लेकिन इन राज्यों में भूपरिसीमन लागू होने से पहले ही जमीनों के बटवारे अथवा बेनामी हस्तान्तरण हो चुके थे।

भूमि का बंटवारा

मशोधित भू-परिसीमन कानून बीते हुए समय मे अर्थात् 24 जनवरी, 1971 मे लागू होने थे। मुख्यमत्रियों के सम्मेलन द्वारा निर्धारित मार्गदर्शन का अनुसरण करते हुए 17 राज्य मरकारों ने भू-परिसीमन कानूनों का पुनरीक्षण कर दिया गया था और भू-सीमाओं को और कम कर दिया था। लेकिन न्यायालयों के हस्तक्षेप के कारण अतिरिक्त भूमि प्राप्त करने के कार्य को गहरा धक्का लगा।

1992 में इमका पुनरीक्षण हुआ। पता चला कि मालगुजारी-अदालतों में मुकदमों में फमी जमीनों का 75 प्रतिशत मुक्त हो जाना चाहिए जिमका फिर मे आबटन कर दिया जाना चाहिए। मार्च 1985 और जून 1992 के बीच केवल मात वर्षों की अवधि में 0 711 लाख एकड भूमि का अतिरिक्त आबटन किया जा मका। नीचे दी गई तालिका 1980 से जून 1992 तक किये गए भूमि के आबटन को बतलाती है

तालिका 2

भू-परिसीमन कानूनो को लागू करने की समवेत प्रगति (लाख एकड़)

	31.3 80 को	31.3 85 को	31.3.90 को	30 6.92 को
अतिरिक्त घोषित क्षेत्र	69 13	72 07	72.75	72 81
अधिकार में लिया हुआ क्षेत्र	45.50	56 98	62.12	63.53
आबटित क्षेत्र	35.50	42 64	46.47	49 75
लाभान्वित होने वालों की सख्या	24 75	32.90	43 60	47.59

स्रोत   ग्रामीण विकास मत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (1992 93)

ऐसी शोचनीय स्थिति के लिए ग्रामीण क्षेत्र एव रोजगार मत्रालय द्वारा दिए गए कारण इस प्रकार हैं

- पाच से अधिक सदस्य वाले परिवारों द्वारा भू-परिसीमन कानून में निर्धारित सीमा से दुगुनी भूमि को अपने पास बनाए रखने का प्रावधान
- परिवार में बालिग पुत्रों के लिए अलग मे भू-परिसीमन सीमा का प्रावधान
- मयुक्त परिवार के प्रत्येक भागीदार को भू-परिसीमन सीमा के लिये अलग इकाई माने जाने का प्रावधान

- भू परिसीमन सीमा का अतिक्रमण करके चाय, काफी, रबड़, इलायची और कोको की खेती तथा धार्मिक और खैराती संस्थाओं के लिए दी गई छूट
- भू परिसीमन सीमा को वंचित करने के लिए भूमि के बेनामी और फर्जी हस्तान्तरण
- छूटों का दुरुपयोग तथा भूमि का गलत वर्गीकरण, तथा
- लोक-पूंजी के विनिवेश के द्वारा नए सिंचाई के साधनों में हाल ही में तैयार की गई भूमि पर उपयुक्त भू परिसीमन का लागू न किया जाना।

यहां मैं मेरे ही द्वारा किये गए निरीक्षणों में से दो को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूं।

पहला उदाहरण

दिल्ली में खामपुर गांव में (कल्पित नाम) एक कथा प्रचलित है कि गांव की भूमि के वर्तमान पांच स्वामियों के पूर्वजों ने यह सारी भूमि 1857 के विद्रोह में ब्रिटिश सैनिकों को संरक्षण प्रदान करने के कारण इनाम में प्राप्त की। भू परिसीमन से बचने के लिए इन भाइयों ने इस भूमि का कुछ हिस्सा एक योजना के निमित्त सरकार को बेच दिया। उन्होंने इसकी जानकारी उन काश्तकारों को नहीं दी जो इस भूमि को पीढ़ियों से जोत रहे थे। काश्तकारों ने अदालत का दरवाजा खटखटाया। अदालत ने आदेश दिया कि भूस्वामियों को तुरंत मुआवजा दिया जाए। इस प्रकार (भूमि के स्वामी) भाइयों को मुआवजा मिल गया जबकि काश्तकारों को कुछ भी नहीं मिला क्योंकि उनके पास कोई आगम पत्र नहीं थे। पटवारी ने सरकारी कागजों को चालाकी से इस प्रकार तैयार किया कि उनमें खेती योग्य भूमि खेती के अयोग्य दिखाई गई ताकि काश्तकार किसी भी प्रकार के लाभ से वंचित हो जाए।

काश्तकारों ने अपने अपने नाम से हलफनामे दाखिल करा कर सुप्रीम कोर्ट तक (कानूनी) लड़ाई लड़ी—उन्हें प्रतीक रूप में कुछ मुआवजा मिला। ये काश्तकार अभी भी विस्थापित हैं और कृषि व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य किसी कौशल को न जानने के कारण अपने आप को पुन स्थापित नहीं कर पाए हैं। अब नई पीढ़ी धीरे धीरे वैकल्पिक व्यवसायों की तलाश में गांव से पलायन करती जा रही है।

दूसरा उदाहरण

हरियाणा राज्य दावा करता है कि यहां भूमि सुधार वचन और भावना दोनों ही दृष्टियों से लागू किए गए हैं। इसके एक गांव रामपुर में (कल्पित नाम) मैंने पाया कि कागज पर तो सब कुछ ठीक-ठाक था। लेकिन जब मैंने गहराई से खोज बीन की तो मुझे पता चला कि दलितों के आगम पत्र पुराने/मौलिक भू स्वामियों के ही कब्जे में हैं। यह इस मिथ्या तर्क के आधार पर किया गया था कि दलितों के पास इन पत्रों को सुरक्षित

रखने के लिये सदूक या स्थान नहीं थे। भूस्वामी अभी भी दलितों को अपना काश्तकार और भूमिहीन मजदूर मानकर ही उनके साथ व्यवहार करते हैं यद्यपि भूमि का कानूनी रूप में हस्तान्तरण हो चुका है। दलितों का यह शोषण उनके अज्ञान, शिक्षा के अभाव और साथ ही नौकरशाही की उदासीनता के कारण ही है।

क्रियान्वयन न होने के कारण

पी एम अप्पू की अध्यक्षता में नियुक्त किये गए योजना आयोग के कार्य-दल ने भूमि सुधारों के क्रियान्वयन न होने के लिये उत्तरदायी निम्नलिखित कारण बतलाए.

(1) राजनैतिक इच्छा की कमी, (2) निम्न वर्गों की ओर से दबाव का अभाव क्योंकि गरीब देहाती और खेतिहर मजदूर (अ) सहिष्णु और (ब) असगठित हैं। यह तथ्य सरकारी रिपोर्टों से ही स्पष्ट है कि जो कहती हैं कि कुल 314 लाख कर्मकारों में से करीब 80 प्रतिशत (249 लाख) ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। करीब 64 प्रतिशत (200 लाख) खेती में लगे हुए हैं 85 प्रतिशत (267 लाख) अपने काम में लगे हुए हैं अथवा अनियमित वेतन पर काम करते हैं और केवल करीब 47 लाख को नियमित रोजगार मिला हुआ है। असगठित मजदूरों के मुख्य लक्षण हैं कम रोजगार की गभीर स्थिति (कम रोजगार पाने वाले मजदूर काम की उपलब्धता के अनुसार एक से अधिक मालिकों के लिए काम करते हैं) काम का बिखरा हुआ स्वरूप (एक ही प्रकार का काम करने वाले अलग अलग स्थानों पर हैं और यह आवश्यक नहीं है कि वे एक साथ एक भौगोलिक सीमा वाले क्षेत्र में रहते हों) गृह मूलक काम को करना सामूहिक सौदेबाजी करने की क्षमता में कम सगठन क्षमता का निम्न स्तर (ट्रेड यूनियनों को कम रोजगार पाने वाले बिखरे हुए और गृह मूलक व्यवसायों में लगे हुए मजदूरों तक पहुचने में गभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है) और अन्त में मालिक और कर्मकार के बीच ठोस सबध का अभाव। (3) नौकरशाही की उन्मार्गदर्शन और प्राय उदासीन प्रवृत्ति, (4) भूमि के प्रत्यक्ष रिकार्डों का अभाव तथा (5) भूमि सुधारों के क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली कानूनी रुकावटें।

खड दो

गांधीजी के लिये समाज को बदलने के भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में स्वतत्रता की प्राप्ति केवल पहला चरण था। दूसरा और सबसे महत्वपूर्ण चरण होना था अहिंसक सामाजिक आन्दोलन जिसमें खेत को जोतने वाले को उस खेत का स्वामी बनाना था। इससे भारत के लाखों गरीबों की आखों से आसू पोंछने में सहायता मिलने की सभावना थी। अपनी हत्या के कुछ ही दिनों पहले उन्होंने लिखा था कि कांग्रेस ने राजनैतिक स्वतत्रता प्राप्त कर ली है किन्तु इसे अभी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्वतत्रताए प्राप्त करनी हैं। ये स्वतत्रताए राजनैतिक स्वतत्रता से अधिक कठिन हैं।

भूदान का जन्म

जनवरी 1948 में गांधीजी की मृत्यु के बाद उनके सहयोगियों में से, जो उनके सर्वोदय समाज के स्वप्न के प्रति समर्पित रहे, कुछ लोगों ने सर्व सेवा संघ के नाम से एक संस्था गठित की।

गांधीजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा भावे ने 1951 में आंध्र प्रदेश के तेलंगाना जिले की यात्रा की जहां भूमिहीन खेतिहरों और उनके मालिक भूस्वामियों के बीच उग्र संघर्ष चल रहा था। इस यात्रा प्रसंग में जब वे 18 अप्रैल के दिन पोचमपल्ली गांव पहुंचे उनके पास अनेक भूमिहीन दलित आए जिन्होंने उनसे भूमि प्राप्त करने में उनकी सहायता करने की प्रार्थना की। विनोबा जी ने गांव के लोगों को संबोधित किया और उनसे पूछा कि क्या उनमें से कोई अपने भाइयों को भूख से मरने से बचाने के लिए अपनी मर्जी से जमीन देने के लिए राजी है। एक व्यक्ति, जिसका नाम रामचन्द्र रेड्डी था, आगे आया और उसने सौ एकड़ जमीन देने की इच्छा प्रकट की। उसने कहा, "मैं हमेशा राजद्रोही रहा हूं। हमारा सारा परिवार राजद्रोही है। लेकिन मेरी साम्यवादी दर्शकों से असहमति है, और जब तक विनोबा जी यहां नहीं आये थे, तब तक मेरे मन में उलझन थी कि मैं क्या करूं। साम्यवादी कहते हैं कि वे आतंक, रक्तपात और असत्य के द्वारा प्रेम और न्याय का युग शुरू कर सकते हैं। मैं इसमें कभी विश्वास नहीं करता।" यह उस आन्दोलन का जन्म था जो भूदान आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

विनोबा जी ने भूस्वामियों से कहा, "अगर तुम्हारे पांच बेटे होते तो तुम अपनी सम्पत्ति उनके बीच बराबर-बराबर बांटते। मुझे अपना छठा बेटा समझो। दरिद्रनारायण दीन के रूप में प्रकट हुए भगवान के लिये मुझे अपनी जमीन का एक हिस्सा दो।"

दान में प्राप्त हुई भूमि का आवंटन

विनोबा जी ने चालीस दलित परिवारों से कहा कि वे स्वयं निर्णय करें कि वे (दान में प्राप्त हुई) भूमि को कैसे बांटना चाहेंगे और यह कि वे इस भूमि को इकट्ठा मिलकर जोतना चाहेंगे या अलग-अलग। दलितों ने उन्हें कहा है वे भूमि को इकट्ठा मिलकर जोतना चाहेंगे। उनमें से अनेक छोटी जातियों के समूह—जैसे धोबी, चर्मकार, बुनकर—पहले से ही समुदाय के रूप में इकट्ठे रह रहे थे। एक समूह में आठ परिवार, हर समुदाय के मकान एक दीवार के पीछे बने हुए थे। इन सभी का एक बरामदा था। एक साथ जुताई करने के लिए उन्हें इसी व्यवस्था का थोड़ा विस्तार करने की जरूरत थी जिसमें प्रत्येक समूह अपने अलग-अलग क्षेत्र के प्रति उत्तरदायी हो। उन्होंने यह भी कहा, उन्हें शुरुआत करने के लिये 80 एकड़ से अधिक की आवश्यकता नहीं है—हर एक के लिये दो एकड़। कदाचित् फालतू बीस एकड़ का किसी और रूप में उपयोग हो सकता था।

गांव छोड़ते हुए जमा हुए समूह से विदा लेते हुए, विनोबा जी ने टिप्पणी की "यदि

हर एक भूस्वामी रामचन्द्र रेड्डी बन जाए तो हम धरती पर स्वर्ग उतार लें।"

भूदान

विनोबा जी काफी सचेत होकर भारत के भूमिहीनों की समस्या के लिये एक ऐसे समाधान को खोज रहे थे जो हिंसक क्रांति का विकल्प बन सके। उन्होंने सारे भारतवर्ष में पदयात्राओं का एक क्रम प्रारभ करने का निश्चय किया जिसमें वे भूस्वामियों की अन्तरात्मा से अपील कर सकें, भूमिहीनों के लिए भूमि की भिक्षा माग सकें और इस प्रकार व्यक्तिगत दान-कर्म के द्वारा सामाजिक सुधार के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। उनका लक्ष्य त्रिविध क्रान्ति था।

"पहले, मैं लोगों के हृदय बदलना चाहता हू। दूसरे, मैं उनके जीवन में एक परिवर्तन उत्पन्न करना चाहता हू। तीसरे, मैं सामाजिक ढाचे को बदलना चाहता हू हमारा लक्ष्य केवल दया के कर्म करना नही है, किंतु दया का साम्राज्य बनाना।"

भूदान के लिये इतना भारी उत्साह था कि वर्ष 1957 के अन्त तक, जिसका नाम भू-क्रान्ति वर्ष रखा गया था, 50 लाख एकड भूमि प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया था।

विनोबा जी 6 जून, 1951 के दिन हैदराबाद से मध्य भारत में आए तो उन्होंने 12,000 एकड भूमि जमा कर ली थी। जिस किसी भी गाव में वे रुके उसमें से एक ने भी भूमि का दान करने से मना नही किया—उन्होंने एक दिन में औसत 240 एकड़ भूमि प्राप्त की। निजाम ने भी, जिसकी भारत के सबसे कृपण व्यक्ति के रूप में प्रसिद्धि थी, कुछ भूमि दी थी। अगले तीन वर्षों में विनोबा जी के द्वारा पीछे छोडे गए कार्यकर्ताओं ने हैदराबाद में और भी एक लाख एकड भूमि प्राप्त की।

साम्यवादियों के लिये विनोबा जी का एक सदेश था, "रात के अधेरे में क्यों आओ ? दिन के उजाले में क्यों न आओ और क्यों न मेरी तरह ईमानदारी और प्यार से देखो ?"

विनोबा जी ने भू स्वामियों से कहा, "अगर तुम्हारे पाच बेटे होते तो तुम अपनी सपत्ति उनके बीच बराबर-बराबर बाटते। मुझे अपना छठा बेटा समझो। दरिद्रनारायण-दीन के रूप में प्रगट हुए भगवान के लिये मुझे अपनी जमीन का एक हिस्सा दो।"

सही न्याय-विधान

विनोबा जी का विश्वास था कि भारत जैसे प्रजातत्र में व्यापक भूमि-सुधार लाने के लिए भूदान ही एकमात्र उपाय है। यह लोगों के मनों को छूता है और उनके हृदयों को छूता है। इससे सही न्याय विधान के लिये रास्ता तैयार होता है।

भूदान की उत्पत्ति और इसके अर्थ की व्याख्या करने के लिए विनोबा जी हिन्दू

पौराणिक कथाओं के चमत्कारी कोश गृह का सहारा लेते थे। इस बात की व्याख्या के लिये उदाहरणस्वरूप दो पौराणिक कथाए नीचे दी जा रही हैं

पहली पौराणिक कथा

राजा बलि की एक कथा है जिसमें विष्णु वामनावतार में वर मागने के लिये राजा के पास आए। असुर राजा बलि के गुरु, शुक्राचार्य, जानते थे कि याचक असल में कौन है, इसलिये कमण्डलु की जल की नलकी पर वे कीट बन कर चिपक गए ताकि दान का सकल्प लेने के समय उसमें से जल न आ सके। दिव्य साधुवेशधारी याचक ने कीट को देख लिया और जल की रुकावट को हटाने के लिए कमण्डलु की नलकी में सींक घुमा दी वर क्या था? वामनदेव अपने तीन पगों में जितनी धरती माप सकें। जब दान का वचन दे दिया गया, वामन ने विशाल रूप धारण कर लिया और अपने दो पगों में ही सपूर्ण विश्व को माप लिया। जब तीसरे पग के लिये कोई स्थान नहीं बचा तब (उसे रखने के लिए) राजा बलि ने अपना सिर आगे बढ़ा दिया। भूदान, भूमि का दान, विनोबा जी कहते थे, एक दिन बलिदान अर्थात् राजा बलि के दान में बदल जाना चाहिये। सपूर्ण विश्व ईश्वर को समर्पित हो जाना चाहिये।

दूसरी पौराणिक कथा

पाण्डवों ने अधर्म की शक्ति के विरुद्ध महाभारत में वर्णित प्रसिद्ध लड़ाई लड़ी। युद्ध का कारण क्या था? पाण्डवों के सबधी उन्हें अपने उत्तराधिकार में प्राप्त भूमि का हिस्सा देने के लिए तैयार नहीं थे। पहले पाण्डवों ने राज्य नहीं, बल्कि एक नगर की माग की, तदनन्तर एक नगर की नहीं, बल्कि एक गाव की, उसके बाद एक गाव की नहीं, बल्कि एक भवन, उसके बाद एक भवन की नहीं, बल्कि एक कमरे की। लेकिन दूसरा पक्ष सुई की नोक के बराबर भी भूमि देने के लिए तैयार नहीं हुआ। जब उनकी माग नहीं मानी गई तब उन्होंने हथियार उठाने का निर्णय किया। इसी प्रकार आज के गरीब करेंगे, विनोबाजी ने कहा, यदि हम उनके अधिकारों में निरतर कटौती करते रहेंगे इस कथा के अन्त में, एक भुलाया हुआ छठा भाई है, कर्ण उसे उसके जन्म के अवसर पर दूर छिपा दिया गया था। विनोबा जी इसे आज के समाज के उपेक्षित, वंचित के प्रतीक के रूप में देखते थे। यही वह था जिसने कुल की एक शाखा के कान में दूसरे के विरुद्ध विष घोला और जो माता के द्वारा दिये गए कवच से युद्ध में सर्वशक्तिमान बन गया। क्या हम पाण्डवों की तरह अपने छठे भाई को भूल जाना चाहते हैं और आपसी नफरत और कलह को भड़काना चाहते हैं?

अप्रैल 1954 के अत तक 32 लाख एकड़ भूमि भूदान में दी गई थी। इनमें से 20 लाख एकड़ भूमि व्यावहारिक रूप से अच्छी जमीन थी। भूदान करने वाले दाताओं की सख्या 2,30,000 थी जिनमें से एक तिहाई के विषय में कहा जाता है कि उनका हृदय-परिवर्तन हो गया था। 60,000 एकड़ भूमि 20,000 परिवारों में बाटी गई।

भू-स्वामित्व के अधिकार का विसर्जन

वस्तुत 1957 को भूक्रान्ति वर्ष के नाम से जाना जाता है। इस वर्ष तक कुल 4.2 लाख एकड भूमि भूदान आन्दोलन में प्राप्त प्राप्त हो चुकी थी, जबकि लक्ष्य 50 लाख एकड का था। इस निराशाजनक स्थिति का एक कारण यह है कि भू आन्दोलन अब व्यक्ति से अपनी भूमि के एक हिस्से के विसर्जन की माग नहीं कर रहा था बल्कि अब माग ग्राम समुदाय के पक्ष में साम्पत्तिक अधिकारों के पूर्ण विसर्जन की थी। यह ग्रामदान की माग थी—गाव की सारी जमीन को एक जगह जमा करना और संपूर्ण ग्राम समुदाय को इसका स्वामित्व सौंपना।

सन् 1971 तक, 1,68,108 गावों ने—भारत के कुल गावों के एक चौथाई से कुछ अधिक ने—ग्रामदान में शामिल होने की घोषणा कर दी थी। लेकिन अधिकतर यह केवल 'सकल्प' की घोषणा ही थी। केवल करीब 5000 गाव ऐसे थे कि उनके अधिकार पत्र यथार्थ में ग्राम समिति को हस्तान्तरित किए गए थे, ये सरकारी तौर पर ग्राम दान के रूप में पजीकृत हुए थे।

मूलत कुछ ऐसा हुआ प्रतीत होता है कि सत स्वरूप विनोबा अथवा उनके प्रतिनिधि जयप्रकाश नारायण की यात्रा के फलस्वरूप उत्साह की लहर में, गाव अपने को ग्रामदान में शामिल घोषित कर देते थे। इसके बाद नेता लोग तो अगले गाव या स्थान की ओर चल देते थे और पीछे अपनी ओर से घोषित सकल्प को (कानूनी तौर से) लागू करने के लिए सर्वोदय कार्यकर्ताओं को छोड जाते थे। आर्थिक साधनों की कमी और ऐसे कार्य को चलाने के लिये उपयुक्त शिक्षा प्राप्त कार्यकर्ताओं की कमी से भी आन्दोलन को पूर्ण रूप से सफलता न मिल सकी। परिणामस्वरूप, कागज पर जैसी आदर्श तस्वीर दिखाई पडती थी और वास्तविक स्थिति के बीच काफी बडा अन्तर था।

भूदान और ग्रामदान आन्दोलन के प्रयोग से जो शिक्षा ली जा सकती है वह यह है कि सबसे पहले यह जरूरी है कि दान के पात्रों में आत्म विश्वास और आत्म निर्भरता के गुण तथा अपनी जमीन का प्रबध स्वय करने की क्षमता उत्पन्न की जाए।

इसके अतिरिक्त एक लाख से ऊपर भूस्वामियों के द्वारा भूदान योजना के अन्तर्गत दान की गई 4.2 लाख एकड जमीन में से 1.85 लाख एकड जमीन या तो खेती के अयोग्य सिद्ध हुई या कानूनी विवादों में फसी हुई मिली। 1970 के दशक के अन्तिम भाग तक भूदान में प्राप्त की गई कुल जमीन का केवल तीस प्रतिशत ही वास्तव में भूमिहीनों में बाटा गया था। इससे आगे यह पाया गया कि जमीन का आवटन हो जाने पर भी, जिनको जमीन दी गई थी उनमें से अनेक भूदान से लाभ उठाने की स्थिति में नहीं थे क्योंकि ये जमीन सिंचाई सुविधाओं से विहीन होने के साथ समतल भी नहीं थी। इसे सुधारने के लिये इन लोगों के पास धन और साधनों का अभाव होता था। उनके पास खेती शुरू करने के लिये आवश्यक औजारों, बीजों, उर्वरकों और खेती के लिये

आवश्यक पशुओं को प्राप्त करने के माधनों का अभाव था। इमके अतिरिक्त, उनमें भूमि का प्रबध करने के लिये अनुभव और आत्म-विश्वास की कमी थी, क्योंकि उनका जीवन स्थानीय भूस्वामियों पर निर्भर था।

भूदान और ग्रामदान आन्दोलन के प्रयोग से जो शिक्षा ली जा सकती है वह यह है कि सबसे पहले यह जरूरी है कि दान के पात्रों में आत्म-विश्वास और आत्म-निर्भरता के गुण तथा अपनी जमीन का प्रबध स्वय करने की क्षमता उत्पन्न की जाए। इसके अतिरिक्त नई प्राप्त की गई जमीन का पूरा उपयोग करने के लिए जरूरी भौतिक और तकनीकी माधनों का प्रावधान भी आवश्यक है। सक्षेप में, ये लोग अभी भी गाधी जी के ग्राम स्वराज और आर्थिक विषमता को मिटाने के लक्ष्य से काफी पीछे थे।

खड तीन

स्वाधीनता के समय से किए गए भूमि-सुधारों के प्रयत्नों का मूल्याकन इस बात को स्पष्ट करता है कि कुल खेती-योग्य भूमि का एक प्रतिशत ही बाटा गया है। ऐसा मुख्य रूप से अन्तहीन मुकदमेबाजी और कानूनी विवादों के कारण है।

81वा सशोधन—सविधान सशोधन के 81वें विधेयक में मात राज्यों में भूमि सुधार सबधी कानूनों के आधारभूत मुद्दों को सविधान की नवीं सूची में रखने का प्रयत्न किया गया है। ये कानून अब अबाध्य हो गये हैं, क्योंकि धारा 31वी के अनुसार, नवी सूची में शामिल सभी नियम/कानूनों को अदालत में इस आधार पर चुनौती नही दी जा सकती कि ये सविधान में प्रतिष्ठित मौलिक अधिकारों का उल्लघन करते हैं। न्यायालयों से मुक्ति चाहने वाले सात राज्यों में दोनों तरह के राज्य हैं—पश्चिम बगाल, केरल, कर्नाटक जैसे भूमि सुधारों में प्रशमनीय कार्य करने वाले भी और बिहार, राजस्थान, उडीसा और तमिलनाडु जैसे राज्य भी जिनका इस क्षेत्र में कोई बहुत अच्छा इतिहास नहीं है।

अमल मे कमी—भूमि सुधारों को हानि प्रमुख रूप मे इसलिए उठानी पडी है क्योंकि पार्टी के स्तर पर अभिव्यक्त निश्चय कदाचित् ही नीचे के स्तर पर कार्य में परिणत हुआ है। न्याय के सैद्धान्तिक प्रश्नों और न्याय सबको समान रूप से सुलभ होने की बात को एक तरफ करके भी यह सिद्ध है कि ग्राम सुधारों का कृषि की उपज पर सकारात्मक/ भावात्मक प्रभाव है। यह याद रखना चाहिए कि पूर्वी एशिया का चमत्कार (ईस्ट एशियन मिरेकल) 1960 तथा 1970 के दशकों में उत्साहपूर्वक शुरू किये गए ग्राम सुधारों का ऋणी है।

पश्चिम बगाल का प्रयोग—अपने देश में हाल तक अधिकतर पूर्वी भारत में, कृषि उपज में वृद्धि दर जनसख्या की वृद्धि दर से न्यूनाधिक मात्रा में कम ही थी। 1970 और 1980 के दशकों में पश्चिम बगाल में किये गए प्रयोग—आपरेशन बर्गा के द्वारा काश्तकारी का पजीकरण और पचायत चुनाव के द्वारा पार्टी का नियत्रण—की सफलता से राज्य में कृषि उपज में छह प्रतिशत की उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

दुर्भाग्य से, किन्तु यहा भी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट (सी पी एम) सरकार को ग्रामीण सुधारों के लिए धीमे पडते हुए समर्थन का सामना करना पड रहा है। विहार और राजस्थान जैसे राज्यों को तो अभी लवी दूरी तय करनी है। यहा तो अभी बधुआ मजदूरी, अत्यधिक व्याज पर धन देने की प्रथा और व्यक्तिगत सैन्य बलों द्वारा दलितों के वध जैसी समस्याए जारी हैं। विहार में, जबकि लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व वाली जनता दल सरकार अपनी पहली अवधि में इस मोर्चे पर असफल रही, हाल में, आपरेशन 'टोडरमल' के माध्यम से और अडियल अफसरों को आपरेशन 'कालदूत' द्वारा दण्डित करने की धमकी से, सुधार के प्रयत्न सही मार्ग पर चलते प्रतीत होते हैं।

भूमि परिसीमन की नीति—खेती की जमीन पर वर्तमान परिसीमन की व्यवस्था को जारी रखने की नीतिगत घोषणा भी स्वागत योग्य है यद्यपि कर्नाटक और पश्चिम बगाल इससे असतुष्ट रहेंगे। उन्होंने भू-परिसीमन को उठाना चाहा था, प्रत्यक्ष ही, परिमाण की अर्थ नीति (Economy of Scale) का किसानों को लाभ देने के लिए। किंतु, देश के शेष भागों में, जहा ग्राम सुधार अधिकतर असफल रहे हैं, भू परिसीमन को ऊचा करने से दोषियों को ही लाभ पहुचेगा—उन्हें जिन्होंने इससे बचने के लिए छल कपट का सहारा लिया।

नवीं सूची कानून के विरुद्ध कोई गारण्टी नही—किसी कानून का सविधान की नवीं सूची में समावेश मात्र इस बात की गारण्टी नहीं है कि इसे अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। कानूनों को अनेक अन्य आधारों पर चुनौती दी गई है, जैसे (i) सविधान की धारा 14, 19 और 31 से असगत होने के, (ii) बालिग बेटों और नाबालिग बेटों तथा बालिग बेटियों और अविवाहित बेटियों के बीच भेदभाव करने के, (iii) भूमि के वर्गीकरण के आधार, (iv) मुआवजे की दर के (v) प्रामाणिक एकड की गणना के तरीके और (vi) परिवार शब्द की परिभाषा में मनमानी के आधार पर।

पचायतें और भूमि सुधार—सोलह राज्य पचायत कानूनों की समीक्षात्मक परीक्षा 'वानी' (वालन्टरी एक्शन नेटवर्क इन इडिया) द्वारा की गई है। पश्चिम बगाल को छोडकर, इन कानूनों में किसी अन्य राज्य के कानूनों ने भूमि सुधार के मामले में न तो पचायत की भूमिका का विवेचन किया है और न ही उसका उल्लेख।

प्रतिनिधित्व—भूमि सुधार पचायती राज की सफलता की कुजी है। उदाहरण के लिए, पश्चिम बगाल में भूमि सुधार पचायती राज से पहले आये। परिणामस्वरूप पिछले से पिछले पचायत चुनावों में तीन पक्तियों वाले ढाचे के 46,000 चुने हुए सदस्यों में 75 प्रतिशत अध्यक्ष और सदस्य छोटे या सीमात किसान थे। इसके अतिरिक्त कुल क्रियाशील क्षेत्रों में से 19 प्रतिशत से भी अधिक में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व है। कुल प्रतिनिधियों में 36 प्रतिशत से भी अधिक महिलाए थीं। पचायत पद्धति के विभिन्न स्तरों पर 24,799 चुनी हुई महिलाए हैं।

भूमि सुधार सर्वोच्च प्राथमिकता—राज्य में भूमि सुधार ने सर्वोच्च प्राथमिकता प्राप्त की क्योंकि ग्रामीण सबधों का पुनर्गठन सरकार का मुख्य लक्ष्य था। सरकार ने भूमि सुधार के दो पक्षों पर जोर दिया जैसे पट्टेदारों के नामों का लेखा तैयार करना और अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में आवटन। इसके साथ जुडी हुई थी सरकार की भूमि सुधार से लाभान्वित होने वालों के लिए सस्थागत ऋण की सुरक्षा की विस्तार की नीति।

पचायतों और कृषक-सगठनों ने इन कार्यक्रमों को लागू करने में अतिशय प्रभावी भूमिका निभाई। पट्टेदारों के नामों का लेखा तैयार करने का कार्यक्रम, आपरेशन वर्गा (ओ बी) के नाम से जाना जाता है, इसे पहले नौकरशाही के द्वारा आरभ किया गया। बाद में पारपरिक पद्धति की कमी की पूर्ति नौकरशाही और पचायत के बीच व्यावहारिक सबधों को स्थापित करके की गई। ओबी कार्यक्रम में ग्राम पचायतों ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ओबी कार्यक्रम के अर्थपूर्ण पक्षों में शामिल हैं साध्य शिविर और असली वर्गादरों की पहचान। इन दोनों ही विषयों में पचायतों की हिस्सेदारी और वर्गादरों के नामों का लेखा तैयार करने के लिए दिए गए प्रोत्साहन ने इस सारे कार्यक्रम की सफलता में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

81 वा सशोधन कहीं भूमि सुधारों के क्रियान्वयन न होने के फदे में न जा पडे, इसके लिये राजनीतिज्ञों में, राजनैतिक पार्टियों में, शिखर से लेकर निचले स्तर तक नौकरशाही में दृढ समर्पण की आवश्यकता है और आवश्यकता है भूस्वामियों के हृदय परिवर्तन की।

पचायत समितियों को भूमि के आबटन कार्यक्रम को पूरा करने का काम सौंपा गया था। पचायत समिति के स्तर पर भूमि सुधारों की एक स्थायी समिति है जो इस काम को करती है। यह समिति, ग्राम पचायतों और कृषक सगठनों की मदद से उन लोगों की सूची तैयार करती है जिन्हें अधिकार में आई हुई भूमि आवटित की जाती है। इस क्षेत्र में मिली सफलता प्रशमनीय है। पश्चिम बगाल में पचायतों के पुनर्जीवन में वामपथी मोर्चे को प्राप्त हुई अपेक्षाकृत अर्थपूर्ण सफलता का श्रेय वहा शिखर और तल्ले, दोनों ही स्तरों पर विद्यमान उत्कट राजनैतिक इच्छा शक्ति को दिया जा सकता है।

निष्कर्ष

81वा सशोधन कहीं भूमि सुधारों के क्रियान्वयन न होने के फदे में न जा पडे, इसके लिए राजनीतिज्ञों में, राजनैतिक पार्टियों में, शिखर से लेकर निचले स्तर तक नौकरशाही में दृढ समर्पण की आवश्यकता है, और आवश्यकता है भूस्वामियों के हृदय परिवर्तन की। उनके द्रुत क्रियान्वयन के लिए भूमि सुधारों को अदालतों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखा जा सकता है। साथ ही ये कृषि क्षेत्र में आधुनिकीकरण और बढी हुई उत्पादकता के लिए भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं।

भूमि का पुन आवटन ग्रामीण गरीबों की बडी सख्या को एक स्थायी पूजी/सपत्ति

का आधार प्रदान कर सकता है ताकि वे भूमि पर आधारित और इससे जुड़े हुए उद्यमों को अपना सकें। इसी प्रकार खेती की जमीन का एकीकरण, काश्तकारी के नियम और लेखा प्रमाणों का नवीकरण, छोटे और सीमान्त खेतों के मालिकों की खेती की तकनीक को सुधारकर साधनों के निवेश की पहुच को विस्तृत बना देगा और उपज को बढाने में सीधा योगदान करेगा। फिर भी, व्यवहार में यह पाया गया कि इस कार्यक्रम में और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम अथवा एन आरईपी, आरएलजीपी में बहुत थोडा ही सबध है और यह अकेला ही दूसरों से अलग चल रहा है। गरीब किसानों को एक जुझारू ट्रेड यूनियन के रूप में सगठित करना कदाचित् भूमि सुधारों को प्रभावी ढग से लागू करने का एक और उपाय हो सकता है।

कृषि के विषय में गाधी जी का दर्शन—गाधीजी ने अपना जीवन, समाज, कृषि और ब्रह्माड की समष्टिपूर्ण दृष्टि को भारतीय कृषि की समस्या पर लागू किया और इस विषय में एक निश्चित दर्शन को विकसित किया। उनका दर्शन औपनिषदिक सत्य पर आधारित था पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात् पूर्णमुदच्यते जैसे जीवन और विश्व की एकता। जिस नए समाज को वे प्रतिष्ठित करना चाहते थे उसे उन्होंने सर्वोदय समाज की सज्ञा दी। गाधी जी की मृत्यु के बाद इस अवधारणा को विनोबा जी ने साकार किया।

सर्वोदय समाज—विनोबा जी ने कहा "सर्वोदय समाज मात्र एक सगठन नहीं है। यह एक ऊर्जस्वी शब्द है जो क्रान्तिकारी विचारों का अभिव्यजक है।" सगठनों में वह शक्ति नहीं है जो महान् शब्दों में है। शब्दों में बनाने और साथ ही बिगाडने की शक्ति है। ये मनुष्यों और राष्ट्रों को उठा भी सकते हैं और गिरा भी सकते हैं। हमने इन महान् शब्दों में से एक को अपनाया है। इसका क्या अर्थ है? हम इने गिनों की उन्नति नहीं चाहते, बहुतों की भी नहीं, न ही सबसे अधिक सख्या की हमारा सतोष हर एक के कल्याण में ही, ऊचे के भी और नीचे के भी, ताकतवर के भी और कमजोर के भी, बुद्धिमान के भी और जड के भी है। सर्वोदय उदात्त और सर्वग्राही भाव को अभिव्यक्त करता है। इस आदर्श का यदि मन से और वचन से अनुसरण किया जाए और व्यवहार में पालन किया जाये तो यह न केवल भूमि सुधारों को लागू करने में सहायक होगा बल्कि गाधी जी के सपनों के सर्वोदय समाज की भी रचना करेगा।

विनोबा जी कहा करते थे, "गरीबों के लिए मैं अधिकार प्राप्त करने के लिए परिश्रम कर रहा हू। धनिकों के लिए मैं नैतिक विकास प्राप्त करने के लिए परिश्रम कर रहा हू। यदि एक भौतिक दृष्टि से ऊपर उठता है तो दूसरा आध्यात्मिक दृष्टि से, तो नुकसान में कौन है? इसके अतिरिक्त, भूमि क्या है? यह किसी के लिए कैसे सभव है कि वह अपने आपको भूमि का स्वामी समझे? हवा और पानी की तरह, जमीन भी ईश्वर की है। इस पर अपना अकेले का दावा करना स्वय ईश्वर की इच्छा का विरोध करना है। और ईश्वर की इच्छा का विरोध करके कौन सुखी हो सकता है? मधुमक्खी फूलों को नुकसान पहुचाए बिना शहद जमा करती है। क्या हम भूस्वामियों को नुकसान पहुचाए

बिना जमीन इकट्ठा नहीं कर सकते ?"

विनोबा जी कहा करते थे, "गरीबों के लिए मैं अधिकार प्राप्त करने के लिए परिश्रम कर रहा हू। धनिकों के लिए मैं नैतिक विकास प्राप्त करने के लिये परिश्रम कर रहा हू। यदि एक भौतिक दृष्टि से ऊपर उठता है तो दूसरा आध्यात्मिक दृष्टि से, तो नुकसान में कौन है ?"

अभी तक भारत में भूमि सबधी न्याय-व्यवस्था असफल रही है। हमने इसके विषय में बातें की हैं, लेकिन जब इसे लागू किया गया तब घोर निराशाजनक अनुभव हुआ। ऐसा क्यों ? क्योंकि न ही लोग और न ही भूस्वामी इसके लिए तैयार हैं। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को अपना प्रस्ताव पास किये हुए छ दशाब्दिया बीत गईं और भूमि सुधार के कानूनों के मुख्य पक्षों को सविधान की नवीं सूची में रखने में 48 वर्ष अथवा करीब पाच दशाब्दिया बीत गईं। अक्सर कहा जाता है, "कानून की अपनी सीमाए हैं और कानून को तोडने वाले कानून बनाने वालों की अपेक्षा अधिक चतुर हैं।" अभीष्ट परिणामों को प्राप्त करने के लिये हमें स्वय अपने आप को नियम में बाधने पर जोर देना चाहिए।

सदर्भ

1 भाटिया, बी.एम., फैमीन्स इन इण्डिया, कोणार्क पब्लिशर्स, प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, 1991 पृ 14 17

2 दत्त प्रभात और दत्त चन्दन, दि वेस्ट बगाल पचायती राज एक्ट, 1944 इन स्टेट पचायत एक्ट्स, वालण्टरी एक्शन नेटवर्क इण्डिया (वानी), नई दिल्ली, 1995 द्वारा प्रकाशित, पृ 175 193

3 दत्त रुद्र और सुन्दरम्, के.पी.एम., इण्डियन इकानामी, एस. चाद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, 1993, नई दिल्ली, पृ 428-439

4 दत्त देव रिपोर्ट टु गाधी, गाधी स्मारक निधि, नई दिल्ली, 1982, पृ 71-130

5 गगराडे, के.डी., पावर टु दि पॉवरलेस, कुरुक्षेत्र (इगलिश) जिल्द 93, सख्या 7, अप्रैल, 1995, पृ 3-8

6 रिम्बो एण्ड्यू, प्रैक्टिकल यूटोपियनिज्म ए गाधीयन एप्रोच टु रूरल कम्युनिटी डैवलपमेन्ट इन इण्डिया, कम्युनिटी डैवलपमेन्ट जरनल, जिल्द 20, सख्या 1, 1985, पृ 2-9

7 टेनिसन हल्लन, विनोबा भावेज रिवोल्यूशन आफ लव, डब्ल्यू एच. विल्स, बम्बई 1961, पृ 45 69, 122, 135, 136 और 221

8 दि टाइम्स आफ इण्डिया, ए स्टैप फारवर्ड (सपादकीय), शुक्रवार, अगस्त 25, 1995, नई दिल्ली, पृ 10

3

भारतीय सार्वजनिक उपक्रम

वी.के. अग्रवाल

सार्वजनिक उपक्रम जनता के उत्थान के लिए जनता की गाढे पसीने की कमाई पर सचालित होते हैं। धन और आर्थिक शक्ति का एक उचित एव न्यायोचित वितरण करके यह समाज को एक नयी दिशा देने का प्रयास करते हैं। भारत का 'सन्तुलित क्षेत्रीय विकास' कर भी सार्वजनिक उपक्रम एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। इन उपक्रमों का उद्देश्य 'सेवा भावना' पहले तथा 'लाभ-भावना' बाद में रखा जाता है। लाभार्जन करना सार्वजनिक उपक्रमों का लक्ष्य रहता तो है, फिर भी मात्र लाभ उपार्जन करना उनकी नीति का मुख्य अग नही रहता जबकि निजी क्षेत्र का शायद ही कोई ऐसा वाणिज्यिक प्रतिष्ठान हो, जो लाभ न अर्जित करे और अनिश्चित काल तक चलता रहे। बिना लाभ के निजी उपक्रमों को बन्द होना ही पडता है। सार्वजनिक उपक्रम कई बार निरन्तर हानि उठाने पर भी काफी समय तक सचालित किये जाते रहते हैं। राष्ट्रीय वस्त्र निगम का एक उदाहरण कि बीमार मिलों का अधिग्रहण किया गया और आज निरन्तर एनटीसी की अनेक इकाइयाँ करोडों रुपये का घाटा राजकोष को दे रही हैं। सरकार चाहते हुए भी उन इकाइयों को बन्द नहीं कर पा रही है। सरकार बार-बार इन बीमार इकाइयों को चेतावनी देती है, कार्य निष्पादन सुधार की बात पर जोर देती है, ये मिलें करोडों रुपया राजकोष का घाटे में खा जाती हैं, फिर भी सार्वजनिक इकाइयाँ होने के कारण इनको बन्द कर पाना सम्भव नहीं हो पाता है।

प्रश्न है, समाजहित में और सामाजिक उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में किसी भी सीमा तक क्या सार्वजनिक उपक्रमों को निरन्तर घाटे, अक्षमता और अकुशलता का जामा पहनाकर देश और समाज के करोड़ों रुपये निगलने के लिए स्वतन्त्र छोड दिया जाये या फिर इन इकाइयों को ठीक कर, सुधार कर सामाजिक लक्ष्यों के साथ साथ, 'आर्थिक उन्नयन' की ओर उन्मुख कर आर्थिक दृष्टि से भी सक्षम बनायें। अब समय आ गया है कि किसी भी दशा में सार्वजनिक उपक्रमों को करोडों रुपये की हानि उठाकर देश में सीमित तथा दुर्लभ आर्थिक ससाधनों को मनमाने ढग से 'सामाजिक लक्ष्यों' का आवरण पहनाकर किसी भी सीमा तक धन बर्बादी की अनुमति नहीं दी जा सकती। सरकार अब सार्वजनिक उपक्रमों की अक्षमता को गम्भीरता से ले रही है। अब इन उपक्रमों को

अपनी कार्यप्रणाली सुधार कर 'हानि की समस्या' और 'कम लाभदायकता की समस्या' का निदान करना ही होगा, अन्यथा घाटे उठाने वाले उपक्रमों को बन्द होने के लिए तैयार रहना होगा।

समाज की आर्थिक क्रियाओं में सरकारी हस्तक्षेप। आर्थिक असन्तुलनों को दूर करने, समाज के हितों का सम्वर्द्धन करने तथा राष्ट्रीय हित में विकास-कार्यक्रमों को सचालित करने की दृष्टि से लोक-उपक्रमों की स्थापना, विस्तार एव उनका उन्नयन वर्तमान सरकारों का एक अनिवार्य दायित्व हो गया है। आज विश्व का कदाचित् कोई देश होगा, जहाँ वाणिज्यिक और औद्योगिक उपक्रमों की स्थापना और सचालन में सरकार द्वारा सक्रिय भूमिका न निभायी गयी हो।

आज तो लोक-उपक्रम विश्व व्यापी घटना बन गये हैं। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में, भले ही वह पूजीवादी हो अथवा मिश्रित अर्थव्यवस्था विकसित अथवा विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था हो। सभी में सार्वजनिक उपक्रमों ने एक अभूतपूर्व स्थान बनाया है। भारत जैसे विकासोन्मुख राष्ट्रों में लोक-उपक्रम गतिशील तथा सुदृढ समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं की नींव रख रहे हैं। भारत में इन इकाइयों की सख्या, इनमें निवेशित पूजी तथा इनकी कार्यविधियाँ निरन्तर वृद्धि की ओर अग्रसित होती रही हैं।

सार्वजनिक उपक्रमों का उद्देश्य 'लाभ भावना' से ज्यादा 'सेवा भावना' है और समाज का उत्थान तथा धन और आर्थिक शक्ति का न्यायोचित वितरण करना भी इन उपक्रमों का लक्ष्य है। सन्तुलित क्षेत्रीय विकास के कारण भी इन उपक्रमों के सामाजिक पहलू सदा ही प्रथम स्थान पर रखे जाते हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समाज की अपार धनराशि का विनियोग करने वाले उद्यम कितना भी घाटा उठा लेने के लिए मनमाने ढग से स्वतन्त्र नहीं छोडे जा सकते। इन उद्यमों की लाभदायकता और हानि का सम्यक् विवेचन एक अनिवार्यता है। सार्वजनिक उद्यमों की लाभदायकता और घाटे को अन्य विभिन्न सम्बन्धित तथ्यों के आगे दिखाया गया है।

समस्त उद्योगों ने वर्ष 1993-94 में कुल 4,435 रुपये का शुद्ध लाभ अर्जित किया, जो कि वर्ष 1992 93 में मात्र 3,271 करोड रुपये था। चालू वर्ष में 120 इकाइयों ने 9,722 करोड रुपये का लाभ अर्जित किया जबकि 117 इकाइयों ने 5,287 करोड रुपये का घाटा उठाया। वर्ष के दौरान मात्र 3 इकाइयाँ ऐसी रहीं जिन्होंने न लाभ अर्जित किया और न घाटा ही उठाया। विनियोजित पूजी पर शुद्ध लाभ का प्रतिशत वर्ष 1992 93 में 2.33 प्रतिशत रहा जो कि वर्ष 1993-94 में बढकर 2.78 प्रतिशत रहा। इस प्रकार 117 इकाइयों का उठाया गया । 5,287 करोड रुपये का घाटा एक भयाभय प्रश्नचिह्न है, जिसका समाधान करना ही होगा।

सर्वाधिक घाटे वाली इकाइयाँ

तालिका 1 में वे दस इकाइयाँ दर्शायी गयी हैं जिन्होंने 1994-95 में सर्वाधिक घाटा

दर्शाया है। ज्ञात है कि वर्ष 1994 95 में कुल 240 इकाइयों में से 117 इकाइयों ने 5,287 करोड रुपये का घाटा उठाया। इस सम्पूर्ण घाटे में से मात्र 10 इकाइयों ने 2,517 करोड रुपये का घाटा उठाया जो कि कुल घाटे का 47 6 प्रतिशत भाग है। इसी प्रकार 10 उत्तम निष्पादक इकाइयों ने इसी वर्ष 7,402 करोड रुपये का लाभ अर्जित किया, जो कि लाभ अर्जित करने वाली इकाइयों के पूर्व लाभ 11,818 करोड रुपये का 62 64 प्रतिशत भाग है। तालिका 3 में उन 24 इकाइयों का विवरण है जिन्होने या तो 20 करोड रुपये से ज्यादा घाटा वर्ष *1994-95 में बढाया है या 20 करोड रुपये से ज्यादा शुद्ध लाभ में कमी की हे।*

तालिका 1

सर्वाधिक घाटे वाली इकाइयाँ (वर्ष 1993-94)

(करोड रुपये मे)

क्रमाक	विवरण	शुद्ध हानि	हानि का प्रतिशत
1	राष्ट्रीय इस्पात निगम लि	572 66	10 84
2	हिन्दुस्तान फर्टीलाइजर्स कारपोरेशन लि	366 73	6 94
3	डी टी सी	281 85	5 33
4	फर्टीलाइजर्स कारपोरेशन आफ इण्डिया लि.	268 87	5 09
5	इण्डियन एयरलाइन्स लि	258 46	4 88
6	हिन्दुस्तान पेपर कारपोरेशन लि.	246 84	4 67
7	सीमेंट कारपोरेशन ऑफ इण्डिया लि	147 13	2 78
8	न्यूक्लियन पावर कारपोरेशन आफ इण्डिया लि.	129 71	2 45
9	जैस्सोप एण्ड क लि	125.51	2 37
10	एच.एम.टी. लि.	119 26	2 26
	योग	2517 02	47 61
	हानि वाली इकाइयों की कुल हानि	5286 87	100 00

ऐसे 24 सार्वजनिक उपक्रम ऐसे हैं जिनका वर्ष 1992 93 में लाभ 154 85 करोड रुपये था लेकिन वर्ष 1993 94 में ये घाटे में चले गए और यह घाटा 1 638 13 करोड रुपये तक पहुच गया। इस प्रकार वर्ष 1993 94 में इन 24 इकाइयों ने अपने घाटे में गत वर्ष की तुलना में 1,792 98 करोड रुपये का घाटा बढाया।

सार्वजनिक इकाइयाँ एव बढता घाटा

सार्वजनिक उपक्रमों के उपलब्ध ससाधनों में से जब ससाधनों के उपयोग की रकम कम कर दी जाए तो अन्तर (यदि कोई हो तो) घाटा कहलाता है। वर्ष 1992 93 के अन्त में घाटे की सम्पूर्ण रकम 22,115 6 करोड रुपये थी और वर्ष 1993 94 में इस घाटे की रकम में 4,197 1 करोड रुपये का इजाफा हुआ और घाटे की सम्पूर्ण राशि बढकर 26,312 6 करोड रुपये तक पहुँच गयी। इस प्रकार निरन्तर बढते घाटे सार्वजनिक उपक्रमों का एक भयाभय प्रश्न चिह्न बन गये है।

सार्वजनिक उपक्रम एवं बजटरी सपोर्ट

सार्वजनिक उपक्रमों को बजटरी सपोर्ट द्वारा भी एक बडी रकम उपलब्ध करायी जाती है। सातवीं योजना में 25,537 करोड रुपये की सहायता बजटरी सपोर्ट के रूप में दी गयी। वर्ष 1993-94 में भी 4,067 7 करोड रुपये की बजटरी सहायता राजकीय उपक्रमों को उपलब्ध करायी गयी। अन्य विस्तृत सख्यात्मक विवरण तालिका 2 में दर्शाया गया है।

तालिका 2

सार्वजनिक उपक्रमो को बजटरी एव ससाधन उपलब्धता

(करोड रुपये में)

क्रमाक	विवरण	शुद्ध आन्तरिक ससाधन	अतिरिक्त बजटरी ससाधन	बजटरी सपोर्ट	योजना प्रावधान (आउटले)
1	सातवीं योजना	20 755.35	18 053 62	25.536.67	64.345 64
2	1990-91 (सशोधित अनुमान)	6.180.57	7,696.74	44 740 17	18.351 48
आठवीं योजना					
1991 92 (सशोधित अनुमान)		7,293 45	7 987.82	3 617 07	18.898.34
1992 93 (सशोधित अनुमान)		10 081.80	11 001 43	3 443.66	24.526.89
1993-94 (सशोधित अनुमान)		9.862.03	14,743 93	4 067.65	28.673 61

अल्प क्षमता उपयोग

सार्वजनिक इकाइया अल्प क्षमता उपयोग की समस्या से भी ग्रस्त हैं। कुल सर्वेक्षित इकाइयों में से 75 प्रतिशत से भी ज्यादा क्षमता का उपयोग करने वाली इकाइया 1991 92 में 56 प्रतिशत, 1992-93 में 54 प्रतिशत तथा 1993-94 में 52 प्रतिशत मात्र ही रह गई। कम से-कम 21 प्रतिशत इकाइया विचाराधीन समस्त वर्षों में 50 प्रतिशत क्षमता उपयोग नहीं कर सकीं। इस प्रकार अल्प क्षमता उपयोग की समस्या भी सार्वजनिक उपक्रमों की एक गहन समस्या है तथा इस समस्या से उत्पादन लागत ज्यादा आती है तथा उत्पादकता विपरीत रूप से प्रभावित होती है।

निजीकरण तथा अपनिवेशन

सार्वजनिक उपक्रमों में निजीकरण, अपनिवेशन तथा ममता आशिकीकरण (डाइलूशन ऑफ इक्विटी) भी इन इकाइयों की अक्षमता, घाटे तथा ससाधनों की बर्बादी का परिणाम है। एक ओर तो सार्वजनिक उपक्रम करोडों रुपये के घाटे उठाकर राजस्व को प्रवाहित करते हैं तथा दूसरी ओर बजटरी सपोर्ट की माँग सरकार से करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि हमें सार्वजनिक उपक्रमों को करोड़ों रुपये की हानि उठाकर भी जारी रखना पडेगा क्योंकि यह उपक्रम सामाजिक न्याय लाते हैं। इनका सामाजिक योगदान

भी नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता।

अपनिवेशन तथा निजीकरण की भी कुछ विसगतियाँ इस प्रकार दी जा सकती हैं :

निजीकरण अच्छी और कार्यक्षम इकाइयों का न किया जाये, निजीकरण तथा समता आशिकीकरण घाटे की, अकार्यक्षम, बीमार एव मृत प्राय इकाइयों का ही किया जाये, अपनिवेशन से प्राप्त धन को सरकार को स्थायी ऋण भुगतान (आन्तरिक या बाह्य) में प्रयोग किया जाये, किसी भी दशा में अपनिवेशन की जाने वाली इकाइयों को सरकार (केन्द्रीय/प्रान्तीय) को सरकारी सस्थाओं, सरकारी बैंकों या वित्तीय सस्थाओं, बैंक-म्यूचुअल फण्डों को न बेचा जाए, अपनिवेशन की इकाइयों की समता मात्र निजी उद्योगों को अथवा निजी विनियोगकर्ताओं को बेची जाए; सरकारी एजेन्सियों को सरकारी उपक्रमों के अश बेचना इस प्रकार होगा कि एक व्यक्ति अपनी एक जेब का रुपया दूसरी जेब में रख ले। समता का आशिकीकरण न कर यदि सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबन्ध का निजीकरण किया जाये तो यह अच्छा रहेगा, समझौता ज्ञापन प्रणाली (मेमोरेन्डम ऑफ अन्डरस्टेन्डिग सिस्टम) को निजीकरण तथा अपनिवेशन की तुलना में प्राथमिकता दी जाये, निजीकरण मात्र को ही समस्या का निदान न माना जाए, निजीकरण की एक सुविचारित व यथार्थवादी नीति बनायी जाये, निजीकरण उस नीति के तहत् ही किया जाए, निजीकरण, अपनिवेशन, समझौता ज्ञापन प्रणाली, बीमा उपक्रमों को बन्द करना, बजटरी सपोर्ट, अपनिवेशन से प्राप्त धनराशि के प्रयोग आदि नीतिगत प्रश्नों के हल हेतु एक पृथक् विभाग/बोर्ड बनाया जाये जिसमें आई ई एस के अधिकारी, एम बी ए, चार्टर्ड एकाउन्टेंट्स, निजी उपक्रमी, तकनीकी विशेषज्ञ आदि रखे जायें, निजीकरण को एक नियमित प्रणाली न बनाया जाये, सरकारी उपक्रमों में भौतिक ससाधनों के सुधार से पहले आवश्यकता है। मानवीय ससाधनों के सुधार व उसके नैतिक व चारित्रिक उन्नयन की। बिना मानव को सुधारे मात्र भौतिक तत्वों को सुधार कर या तकनीक उन्नयन से समस्या का स्थायी हल न खोजा जा सकेगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सार्वजनिक इकाइयों की लाभदायकता काफी कम है। एक बड़ी सख्या में इकाइयाँ घाटा उठा रही हैं। लाभदायकता वाली कम-से-कम 10 मुख्य इकाइयों की लाभदायकता बनाये रखनी है और हानि वाली इकाइयों को ठीक करना पड़ेगा, अन्यथा सम्पूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र 'किसी का भी क्षेत्र नहीं' बना रहेगा अथवा 'घाटे वाला क्षेत्र' कहा जाता रहेगा। सार्वजनिक उपक्रम की अक्षमता, अकार्य-कुशल, कार्य निष्पादन व्यवस्था, कम लाभदायकता और बढते घाटे के निवारण के लिए दो पहलू महत्वपूर्ण हैं—भौतिक पहलू और मानवीय तत्व। भौतिक पहलू में समयानुकूल सर्वोत्तम कार्य-प्रणाली और तकनीक, उत्तम उपकरण और कच्चा माल सुनिश्चित करना, पर्याप्त और समयानुकूल शक्ति तथा ऊर्जा की उपलब्धि कराना, कार्य-दशाओं की व्यवस्था करना, वैज्ञानिक प्रबन्ध विवेकीकरण और अक्षमता पर नियन्त्रण करना, पर्याप्त और उन्नत आदान व्यवस्थित तौर पर उपलब्ध कराना, शोध और अनुसन्धान पर पर्याप्त

4

भारत में लोहा और इस्पात उद्योग

अजय कुमार सिन्हा

स्वतंत्रता के बाद महसूस किया गया कि देश की प्रगति के लिए बड़ी मात्रा में लोहे और इस्पात की आवश्यकता होगी। साथ ही यह भी महसूस किया गया कि इस मूलभूत क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना लक्ष्य होना चाहिए। इसी चिंतन और प्रयास का परिणाम है कि आज देश इस्पात के सामानों के उत्पादन में लगभग आत्मनिर्भर हो गया है। यही नहीं देश से लोहे और इस्पात के निर्यात में वृद्धि हो रही है और आयात में लगातार कमी आ रही है।

भारत में लोहा और इस्पात उद्योग अति प्राचीन है। यह कुटीर उद्योग के रूप में गाँव गाँव में फैला हुआ है। लेकिन आधुनिक तरीके से लोहे का उत्पादन 1875 में आरम्भ हुआ जब पिग आयरन बनाने के लिए पश्चिम बंगाल में बराकर में एक कारखाने की स्थापना की गई। इसकी उत्पादन क्षमता एक लाख टन थी। 1889 में इस कारखाने को बंगाल आयरन कंपनी ने अपने हाथ में लिया।

वास्तव में देश में आधुनिक प्रक्रिया से लोहा और इस्पात का उत्पादन 1907 में बिहार के जमशेदपुर स्थित टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी (टिस्को) की स्थापना से आरम्भ होता है। स्वर्णरेखा और खरकई नदियों के संगम पर स्थित यह कारखाना आज भी लोहा और इस्पात के उत्पादन में अग्रणी है। 1919 में पश्चिम बंगाल में बर्नपुर में इंडियन आयरन एंड स्टील कंपनी (इस्को) की स्थापना हुई। यह आज भारतीय इस्पात प्राधिकार 'सेल' की एक सहायक कंपनी है। 1923 में कर्नाटक में भद्रावती में भद्रावती आयरन एंड स्टील कंपनी की स्थापना की गई। अब इसका नाम प्रख्यात इंजीनियर विश्वेश्वरैया के नाम पर विश्वेश्वरैया आयरन एंड स्टील वर्क्स लि. हो गया है और यह भी अब 'सेल' के अधीन है।

आधुनिक भारत के निर्माता पंडित जवाहरलाल नेहरू ने देश को आधारभूत उद्योगों में आत्मनिर्भर बनाने के लिए जो नीति लागू की उसी क्रम में द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात के तीन कारखाने लगाये गये— ब्रिटेन की सहायता से पश्चिम बंगाल के दुर्गापुर में, रूस के सहयोग से मध्य प्रदेश के भिलाई में और जर्मनी के सहयोग से उड़ीसा के राउरकेला में। इन कारखानों में 1959 से 1962 के बीच उत्पादन

आरंभ हुआ। प्रत्येक की प्रारंभिक उत्पादन क्षमता दस लाख टन थी। बाद में इनका विस्तार किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में रूस के सहयोग से बिहार के बोकारो इस्पात कारखाने पर काम शुरू हुआ। इसमें 1978 में उत्पादन आरंभ हुआ। 1979 में बर्नपुर स्थित 'इस्को' पूरी तरह 'सेल' के अधीन आ गया। 'सेल' के अंतर्गत चार और संयत्र हैं जो विशेष प्रकार के इस्पात, मिश्र धातु और प्रचलित मिश्र धातु का उत्पादन करते हैं। ये हैं—दुर्गापुर मिश्र धातु संयत्र, सलेम स्टेनलेस स्टील संयत्र (तमिलनाडु), चंद्रपुर (महाराष्ट्र) और भद्रावती। मध्य प्रदेश के उज्जैन में एक पाइप और कास्ट आयरन संयत्र है, जो 'इस्को' की सहयोगी कंपनी है।

'राष्ट्रीय इस्पात निगम' का विशाखापत्तनम इस्पात प्लांट सार्वजनिक क्षेत्र में एक अन्य महत्वपूर्ण कारखाना है। आंध्र प्रदेश में बंगाल की खाडी के तट पर स्थित इस अत्याधुनिक कारखाने में 1992 में उत्पादन शुरू हुआ। इसकी वार्षिक उत्पादन क्षमता तीस लाख टन कच्चा इस्पात है।

घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में माँग में लगातार वृद्धि को ध्यान में रखकर 'सेल' अपने इस्पात संयत्रों का विस्तार और आधुनिकीकरण कर रहा है।

सरकार ने जुलाई 1993 में बोकारो इस्पात कारखाने के आधुनिकीकरण (प्रथम चरण) की मंजूरी दी। इसके 1997 में पूरा हो जाने की आशा है। इसके अलावा कारखाने के विस्तार और आधुनिकीकरण की एक महत्वाकांक्षी परियोजना तैयार की जा रही है। इस परियोजना के पूरा हो जाने पर कारखाने की उत्पादन क्षमता वर्तमान 40 लाख टन से बढ़ कर 75 लाख टन हो जायेगी। इसके कार्यान्वयन पर 70 अरब रुपये लागत आयेगी। यह कारखाना अपनी उत्पादन क्षमता बढा कर एक करोड टन करने की भी सोच रहा है। आधुनिकीकरण के दौरान मूल संवर्धित वस्तुओं के उत्पादन पर बल दिया जायेगा ताकि कारखाने के मुनाफे में और बढोत्तरी हो।

दुर्गापुर और राउरकेला कारखाने के आधुनिकीकरण का काम भी चल रहा है। 'सेल' ने 'इस्को' के पुनरुद्धार के लिए 38 अरब 86 करोड रुपये की एक योजना तैयार की है। 'सेल' अपनी विपणन और अनुसंधान तथा विकास शाखाओं को भी मजबूत बना रहा है। चूंकि 'सेल' मुनाफे में चल रहा है, अतः इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में धन की कमी नहीं होगी।

1994-95 में 'सेल' को 11 अरब 72 करोड रुपये का टैक्स से पहले का भारी मुनाफा हुआ। यह पिछले वर्ष के टैक्स से पहले के मुनाफे की तुलना में 115 प्रतिशत अधिक है। यह लगातार ग्यारहवाँ वर्ष है जब 'सेल' को लाभ हुआ है। यहां पर उल्लेखनीय है कि 'सेल' की सहायक कंपनी 'इस्को' सहित इसके संयत्र ने पिछले वर्ष 101 प्रतिशत क्षमता पर काम किया। यही नहीं दुर्गापुर मिश्र धातु कारखाना के घाटे में कमी आई और सलेम संयत्र को मुनाफा हुआ।

'सेल' के प्लांटों की कच्चा इस्पात उत्पादन क्षमता

	लाख टन
भिलाई	40
दुर्गापुर	11
राउरकेला	15
बोकारो	40
इस्को	4

जमशेदपुर स्थित निजी क्षेत्र के 'टिस्को' का भी विस्तार किया जा रहा है। 1994 में तीसरे चरण के आधुनिकीकरण का कार्य पूरा हुआ। इसके साथ ही इसकी बिक्री योग्य इस्पात उत्पादन क्षमता 27 लाख टन प्रतिवर्ष हो गयी है।

जुलाई 1991 में नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी। इस्पात उद्योग क्षेत्र में निजी पूंजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई है। बाद में भी इस्पात उद्योग को निजी पूंजी के लिए और आकर्षक बनाया गया। नये प्रावधानों में से कुछ इस प्रकार हैं (क) लोहा और इस्पात उद्योग को अनिवार्य लाइसेंस से मुक्त किया गया, (ख) इसे विदेशी निवेश के लिए प्राथमिकता वाले उद्योगों में शामिल किया गया, (ग) इसकी कीमत और वितरण पर से नियंत्रण समाप्त किया गया, (घ) पूंजीगत सामानों के आयात पर शुल्क में कमी, (ङ) इसके आयात निर्यात को उदार बनाया गया।

इन परिवर्तनों के फलस्वरूप देश के कई भागों में निजी अथवा संयुक्त क्षेत्र में नयी इकाइयां स्थापित की जा रही हैं। लगभग 60 लाख टन क्षमता की स्थापना की जा चुकी है। इनमें लियोड स्टील एंड निप्पोन डेनरो (महाराष्ट्र), इस्पर गुजरात (गुजरात), जिन्दल स्ट्रीप (मध्य प्रदेश) और मालविका स्टील (उत्तर प्रदेश) शामिल हैं। इनके अलावा उड़ीसा के दाईतारी और गजम तथा कर्नाटक के विजयनगर में नयी इकाइयां स्थापित की जा रही हैं।

स्पंज आयरन जिसका उपयोग सेकंडरी स्टील कारखानों में स्टील स्क्रैप के स्थान पर होता है का भी उत्पादन बढ़ रहा है। देश में स्पंज आयरन की स्थापित उत्पादन क्षमता 1988 89 में तीन लाख 30 हजार टन थी जो अब बढ़कर 52 लाख 20 हजार टन हो गयी है। 1993 94 में 24 लाख दो हजार टन स्पंज आयरन का उत्पादन हुआ जबकि 1994-95 में 30 लाख टन होने का अनुमान है। स्पंज आयरन इकाइयों की सूची तालिका 1 में दी गई है।

पिग आयरन, फाउंड्री और कास्टिंग उद्योग का मुख्य कच्चा माल है। पिग आयरन का उत्पादन मुख्य रूप से इस्पात कारखानों में होता है लेकिन वहां बेसिक ग्रेड के पिग आयरन का उत्पादन होता है, अतः फाउंड्री ग्रेड के पिग आयरन का बड़े पैमाने पर आयात करना पड़ता है। लेकिन हाल के वर्षों में सेकंडरी क्षेत्र में पिग आयरन उद्योग का काफी

विकास हुआ। 1994 में सेकेंडरी क्षेत्र में पिग आयरन की वार्षिक उत्पादन क्षमता 10.95 लाख टन थी। इसके अलावा कई इकाइयों पर काम चल रहा है, जिनकी कुल उत्पादन क्षमता 10.04 लाख टन होगी। देश में बिक्री योग्य इस्पात के उत्पादन में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। जिसे तालिका 2 में दर्शाया गया है।

तालिका 1

क्रमांक	स्पंज आयरन इकाई का नाम	स्थान
1	स्पंज आयरन इंडिया लि.	कोटागुडम-आंध्र प्रदेश
2	उड़ीसा स्पंज आयरन लि.	पलासपगा-उड़ीसा
3	आई पी आई टाटा आयरन लि.	जोड़ा-उड़ीसा
4	बिहार स्पंज आयरन लि.	चाड़ील बिहार
5	सनफ्लैग आयरन एंड स्टील कंपनी लि.	भंडारा-महाराष्ट्र
6	जिंदल स्ट्रीप	रायगढ़ मध्य प्रदेश
7	एच.इ.जी. लि.	दुर्ग मध्य प्रदेश
8	कुमार मेटालर्जिकल कारपोरेशन लि.	बेलारी-कर्नाटक
9	बेलारी स्टील एंड अल्युअ लि.	कर्नाटक
10	गोल्डस्टार स्टील एंड अल्युम्यूनियम लि.	विजयनगर आंध्र प्रदेश
11	प्रकाश इंडस्ट्रीज लि.	चम्पा-मध्य प्रदेश
12	नोवा आयरन एंड स्टील लि.	बिलासपुर मध्य प्रदेश
13	रायपुर स्टील एंड अल्युम्यूनियम लि.	रायपुर मध्य प्रदेश
14	मोनेट इस्पात लि.	रायपुर मध्य प्रदेश
15	तमिलनाडु स्पंज लि.	सलेम-तमिलनाडु
गैस आधारित स्पंज आयरन संयत्र		
16	इस्सार गुजरात लि.	हाजिरा गुजरात
17	विक्रम इस्पात लि.	रायगढ़ महाराष्ट्र
18	निप्पोन डेनरो इस्पात लि.	रायगढ़ महाराष्ट्र

तालिका 2

बिक्री योग्य इस्पात का उत्पादन

वर्ष	लाख टन
1993-94	146.8
1994-95	169.6
1995-96 (अनुमानित)	207.9

1994-95 में घरेलू बाजार में खपत में बढ़ोत्तरी और चीन आदि देशों में माग कम होने से निर्यात में कमी आयी। मुख्य आयातक देश हैं चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, दुबई, श्रीलंका, सिंगापुर, मलेशिया, म्यांमार, इंडोनेशिया, वियतनाम, बंगलादेश, ताइवान, नेपाल,

दक्षिण कोरिया और थाईलैंड।

देश में इस्पात की खपत में लगातार वृद्धि हो रही है। 1994-95 में इस्पात की खपत में 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस्पात के मुख्य क्रेता इजीनियरिग, निर्माण उद्योग, विद्युत, सीमेंट और आटोमोबाइल उद्योग हैं। यहा ध्यान देने योग्य है कि आटोमोबाइल उद्योग में इस्पात के स्थान पर प्लास्टिक का लगातार उपयोग बढने के बावजूद इस उद्योग में इस्पात की माग बढ रही है। आटोमोबाइल में अब लगभग तीस प्रतिशत सामान प्लास्टिक का होता है।

दूसरी ओर पिछले चार वर्षों के दौरान इस्पात का आयात लगभग स्थिर रहा और पिग आयरन और स्क्रेप के आयात में कमी आयी। इसे तालिका 3 में दर्शाया गया है।

तालिका 3

लोहा और इस्पात का निर्यात

वर्ष	लाख टन	करोड़ रुपय
1992 93	9 10	708 00
1993 94	22 20	1678 00
1994 95	17 13	—
1995 96 (अनुमानित)	20 00	

यद्यपि भारत विश्व का नवा सबसे बडा इस्पात उत्पादक देश है लेकिन देश में प्रति व्यक्ति खपत मात्र 32 किलोग्राम है जबकि विश्व औसत 134 किलोग्राम है। यह दर जापान जर्मनी और सयुक्त राज्य अमरीका में क्रमश 676 किलोग्राम 477 किलोग्राम और 383 किलोग्राम है। शहरीकरण में वृद्धि और ग्रामीण क्षेत्रों में सपन्नता आ रही है। फलस्वरूप इस्पात की माग में बढोत्तरी होगी और आशा की जाती है कि 2001-02 तक इस्पात की घरेलू माग बढ कर तीन करोड दस लाख टन हो जाएगी।

भारत में लौह अयस्क, मैगनीज अयस्क क्रोमाइट अयस्क और रिफ्राक्टरिज मैटीरियल का पर्याप्त भडार है तो दूसरी ओर इस उद्योग के सामने कोकिंग कोल की कमी और उसमें अधिक राख की समस्या है। पाचवें दशक में इस्पात सयत्रों के जो डिजाइन तैयार किये गये थे उनमें 17 प्रतिशत तक राख वाले कोकिंग कोल का उपयोग हो सकता है। लेकिन लगातार खुदाई के कारण कोकिंग कोल अधिक गहराई से निकालना पडता है। जिसमें राख की मात्रा 19 से 25 प्रतिशत होती है। राख में एक प्रतिशत की वृद्धि से ब्लास्ट फर्नेस के उत्पादन में 2 से 5 प्रतिशत की कमी आ जाती है, जिससे कोकिग कोल को साफ करना पडता है। भारत में खनन योग्य कोकिग कोल का भडार 17 अरब टन है जिसमें चार अरब 24 करोड टन प्राइम कोकिंग कोल है। प्राइम कोकिंग का अधिकाश भडार बिहार के झरिया और हजारीबाग क्षेत्र और पश्चिम बगाल का रानीगज है। इसके कारण कुल खपत का आधे से अधिक आयात करना पडता है।

भारत में लौह अयस्क का विशाल भडार है। खनन योग्य लौह अयस्क का भडार 12 अरब 74 करोड 50 लाख टन है जिसमें हेमेटाइट नौ अरब 60 करोड बीस लाख टन और शेष मैगनेटाइट है। मैगनेटाइट का विशाल भडार कर्नाटक और गोवा में है। हेमेटाइट के भडार बिहार, उडीसा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक और गोवा में हैं। भारत से लोहे और इस्पात के निर्यात को तालिका 4 में दर्शाया गया है।

तालिका 4

आयरन मात्रा

(लाख टन में)

वर्ष	बिक्री योग्य इस्पात	पिग आयरन	स्क्रैप
1991 92	10 44	1.52	12.68
1992 93	11 16	0 73	25 73
1993-94	11.53	-	7.54
1994 95	15 00	0 20	-

भारत बडी मात्रा में लौह अयस्क का निर्यात करता है। ब्राजील, आस्ट्रेलिया और स्वतत्र राष्ट्रों के राष्ट्रमडल (रूस और उसके सहयोगी देश) के बाद भारत चौथा सबसे बडा निर्यातक देश है।

उच्च कोटि के लौह अयस्क के विशाल भडार, मैगनीज और क्रोमाइट की पर्याप्त उपलब्धता सस्ते कुशल मजदूर, घरेलू बाजार में इस्पात की माग में बढोत्तरी तथा अतर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतिबधों की समाप्ति के फलस्वरूप भारतीय इस्पात उद्योग का भविष्य काफी उज्ज्वल है। भारत को उत्पादन लागत में कमी करनी होगी तथा गुणवत्ता में लगातार सुधार लाना होगा। बदरगाह रेल, टेलीफोन, सडक, बाजार जैसी आवश्यक सुविधाओं का विस्तार करना होगा और ऊर्जा की खपत को अतर्राष्ट्रीय स्तर पर लाना होगा। यह सतोष की बात है कि 'सेल' के सयत्रों में ऊर्जा की खपत में पिछले वर्ष कमी आयी। यह लगातार सातवा वर्ष था जब ऊर्जा की खपत में कमी हुई। □

आर्थिक विकास का मॉडल क्या हो?

सूरज सिंह

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की स्थिति एक साफ स्लेट की भांति नहीं थी जिस पर स्पष्ट कुछ लिखा जा सके। ब्रिटिश शासन काल में भारतीय अर्थ-व्यवस्था इतनी जर्जर अवस्था को प्राप्त कर चुकी थी कि विकास की कल्पना करना तक दूर था। घी-दूध की नदिया बहाने वाले देश में अकाल, गरीबी, भुखमरी व बेरोजगारी का साम्राज्य व्याप्त था और विश्व गुरु कहलाने वाले देश में अशिक्षा का वातावरण विद्यमान था। ऐसे में 15 अगस्त, 1947 को जब भारत को ब्रिटिश दासता से मुक्ति मिली तो देश को विकास के पथ पर अग्रसर करने के लिये योजनाकारों के समक्ष महती चुनौती आ खड़ी हुई। तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सोवियत रूस में आर्थिक नियोजन के परिणामों से प्रभावित होकर भारत में भी नियोजित आर्थिक विकास की प्रक्रिया को अपनाने पर जोर दिया, फलत 15 मार्च, 1950 को एक सलाहकार संस्था के रूप में योजना आयोग का गठन किया गया, जिसके निर्देशन में पहली अप्रैल, 1951 को प्रथम पंचवर्षीय योजना का सूत्रपात किया गया। तब से अब तक सात पंचवर्षीय योजनायें पूरी की जा चुकी हैं और आठवीं पंचवर्षीय योजना क्रियान्वयन के पथ पर अग्रसर है।

भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिहीनता की स्थिति से उबारने के लिए योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया को अपनाये जाने के निर्णय के पीछे मुख्य रूप से तीन कारण रहे हैं—

(i) आर्थिक पिछड़ेपन से देश को ऊपर उठाकर आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास के अवसर प्रदान करना,

(ii) आर्थिक साधनों का न्यायानुकूल वितरण,

(iii) आत्मनिर्भरता को प्राप्त करना।

नियोजन के चार दशक

1 अप्रैल, 1951 से प्रारंभ किये गये योजनाबद्ध विकास के चार दशक पूर्ण हो चुके हैं। इस अवधि में विभिन्न क्षेत्रों में विकास देखने को मिलता है। आंकड़े बताते हैं कि

प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास में तेजी देखी गई है। इसी प्रकार प्रति व्यक्ति आय व राष्ट्रीय आय में भी वृद्धि देखने को मिलती है। यह तथ्य तालिका से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

तालिका

नियोजन काल में आर्थिक विकास, सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति आय

(प्रतिशत वृद्धि दर प्रतिवर्ष)

योजना का नाम	आर्थिक विकास की दर	सकल राष्ट्रीय उत्पाद	प्रति व्यक्ति आय
प्रथम	2.6	3.7	1.7
द्वितीय	3.9	4.1	1.9
तृतीय	2.3	2.7	(-)0.1
चतुर्थ	3.3	3.4	2.9
पंचम	4.9	5.0	2.6
छठा	5.4	5.5	3.2
सप्तम	5.5	5.5	3.4
अष्टम	5.6	—	—
	(प्रस्तावित)		

तालिका से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में विकास की दर में वृद्धि हो रही है, किन्तु सकल राष्ट्रीय उत्पाद की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय में कमी आई है, इसका मुख्य कारण तेजी से बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी, गरीबी का दुष्चक्र व अर्थव्यवस्था में व्याप्त भारी आर्थिक व सामाजिक असमानता है।

सार्वजनिक क्षेत्र : बढ़ता पूंजी निवेश घटती लाभदायकता

नियोजन के शैशवकाल में विशेष कर 1956 की नवीन औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र पर विशेष बल दिया गया और इस क्षेत्र में वृहद् उद्योग, कल-कारखाने, बांध, बहुउद्देशीय सिंचाई परियोजनायें स्थापित की गईं। प. नेहरू ने इन्हें भारत के तीर्थ कह कर सम्बोधित किया। वे देश को तीव्र औद्योगीकरण द्वारा विकास के उच्चतम शिखर पर पहुंचाना चाहते थे। इस सम्बन्ध में उनका मानना था कि सभी देश जिस देवता की आराधना करते हैं वह देवता है औद्योगीकरण, वह देवता है मशीन, वह देवता है तीव्र उत्पादकता और प्राकृतिक शक्तियों तथा साधनों का अधिकाधिक लाभप्रद उपयोग।

भारी उद्योगों के विकास से सम्बन्धित महालेनोबिस मॉडल पर द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान अत्यधिक ध्यान केन्द्रित करने के पीछे कई कारण रहे जैसे, देश में उपलब्ध मानवीय व प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम विकास व विविधीकरण, भारतीय कृषि से जनसंख्या के अत्यधिक दबाव के प्रतिकूल प्रभावों को दूर करना, तीव्र

औद्योगिक विकास को सर्वांगीण आर्थिक विकास की पूर्व शर्त मानना आदि। विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं में सार्वजनिक क्षेत्र पर भारी राशि विनियोजित की गई, जहा प्रथम पचवर्षीय योजना में कुल विनियोजित राशि का 46 प्रतिशत भाग सार्वजनिक क्षेत्र पर विनियोजित किया गया, वहीं द्वितीय व तृतीय योजना में यह क्रमश 55 प्रतिशत व 63 7 प्रतिशत था। सातवीं योजना में 48 प्रतिशत और आठवीं पचवर्षीय योजना में 43 प्रतिशत भाग का प्रावधान किया गया।

यद्यपि नियोजन के प्रारम्भिक वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र से काफी आशाए रखी गई थीं, यहा तक कि सार्वजनिक क्षेत्र को समस्त आर्थिक समस्याओं की रामबाण औषधि माना गया, किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में बढते घाटे और इनके द्वारा सामाजिक उत्तरदायित्वों का भली प्रकार निर्वाह किये जाने से इनके आलोचक इन्हें सफेद हाथी कहकर सम्बोधित करने लगे। साथ ही कहा जाने लगा कि लोक उपक्रम न तो लोक रहे न ही उपक्रम। यह सत्य है कि देश में प्रथम पचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में कुल पाच इकाइया विद्यमान थीं जिनमें 29 करोड रुपये की धनराशि पुनियोजित थी। उम्मीद का गई थी कि इन इकाइयों से आगामी पाच वर्षों में देश की बेरोजगारी व गरीबी का पूर्णत उन्मूलन कर दिया जायेगा। आज देश में 240 से भी अधिक इकाइया सार्वजनिक क्षेत्र में विद्यमान हैं जिनमें 1.3 मिलियन रुपये से अधिक की पूजी विनियोजित है साथ ही यह कटु सत्य है कि आज देश में बेरोजगारों की सख्या व गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाली जनसख्या 1956 की तुलना में कई गुना अधिक है। यह भी सत्य है कि सार्वजनिक क्षेत्र से जिस सेवा की आशा रखी गई थी उसमें भी पूर्णत सफल नहीं रहा। आज परिवहन, बैंकिंग, डाक तार, बीमा, चिकित्सा व शिक्षा आदि क्षेत्रों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सेवाओं के लिए आम उपभोक्ता द्वारा शिकायतें की जाती हैं।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का मॉडल पूर्णत विफल नहीं रहा तो इसे सफल भी नहीं कहा जा सकता। इसके पीछे कई कारण रहे जिनमें प्रमुख हैं

(i) प्रबन्धकीय कुशलता का अभाव

(ii) सामाजिक उत्तरदायित्व का अभाव

(iii) राजनैतिक हस्तक्षेप की बहुलता

(iv) उत्पादित वस्तु सेवा की निम्न गुणवत्ता और ऊची लागत

(v) पर्याप्त नियत्रण का अभाव

(vi) निजी क्षेत्र से प्रतिस्पर्धा का अभाव

(vii) स्थापित क्षमता का अल्प उपयोग

नियोजन काल में भारत में यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया गया किन्तु 1990 के आते आते इसके दुष्प्रभाव सामने आने लगे जिसमें भुगतान सतुलन का

घाटा, अनिवार्य वस्तुओं की कीमतों में तेजी से वृद्धि, बढता हुआ विदेशी ऋण, विदेश मुद्रा भडार में भारी गिरावट आदि प्रमुख थे। इन सबके पीछे कई कारण गिनाये गये जैसे सार्वजनिक क्षेत्र का असतोषजनक निष्पादन, निर्माण क्षेत्र के उत्पादन की निम्न गुणवत्ता और ऊची लागत, विभिन्न प्रकार के नियत्रणों, लाइसेन्स व परमिट की बहुलता। इन समस्त कारणों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को नवीन दिशा देने के लिए प्रेरित किया। परिणामस्वरूप 1991 में नवीन आर्थिक नीति घोषित की गई।

आर्थिक उदारीकरण : एक अभिनव मॉडल

भारत में लगभग चार दशक तक सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभुत्व छाया रहा। इस दौरान लोगों का वास्ता समाजवाद, लोक उपक्रम, लालफीताशाही, कोटा परमिट राज, लाइसेन्स, प्रशुल्क नियत्रण आदि जैसी शब्दावलियों से पडा। इन सबका मिला-जुला असर 1990 में तब देखने में आया जब अर्थव्यवस्था की स्थिति बिल्कुल क्षीण होने को आ गई। ऐसे में इन समस्त समस्याओं से निजात पाने के लिये ही आर्थिक उदारीकरण का मॉडल अपनाया गया जिसको अपनाये जाने के कारणों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया में आयी रुकावटों को दूर करना, भारतीय अर्थ-व्यवस्था को भुगतान सकट व व्यापार सकट के जाल से मुक्त कराना, सार्वजनिक क्षेत्र की कार्य कुशलता में वृद्धि करना, नौकरशाही, अकुशलता व ससाधनों के दुरुपयोग में कमी करना, भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के समकक्ष लाना आदि प्रमुख हैं।

आर्थिक सुधार कार्यक्रम के तहत अल्पकालीन एव दीर्घकालीन दोनों प्रकार के उपाय किये गये। अल्पकालीन सुधार उपायों में रुपये का अवमूल्यन, अनुदान में कटौती, सरकारी व्ययों में कटौती, अनिवार्य आयातों हेतु विदेशी मुद्रा की व्यवस्था प्रमुख है। दीर्घकालीन सुधार उपायों में औद्योगिक क्षेत्र में नियत्रणों व विनियमनों में उदारीकरण, लाइसेंसिंग प्रणाली का सरलीकरण, आयातों का उदारीकरण, सार्वजनिक क्षेत्र में विनिवेशन की नीति अपनाना, आयात व उत्पाद शुल्कों में भारी कटौती, निगम व आय कर की दरों का विवेकीकरण, फेरा व एम आरटीपी कानूनों का उदार बनाना तथा रुपये की पूर्ण परिवर्तनशीलता आदि प्रमुख हैं।

आर्थिक सुधार कार्यक्रम लागू किए चार वर्ष पूरे होने को आ रहे हैं। इस अवधि में कुछ अच्छे प्रभाव दृष्टिगोचर हुए हैं जैसे

- विदेशी मुद्रा भडार में वृद्धि,
- निर्यात विकास दर में वृद्धि,
- भुगतान सतुलन के चालू खाते के घाटे में कमी,
- विदेशी पूजी निवेश में वृद्धि,
- हवाला बाजार सम्बन्धी क्रियाओं पर नियत्रण,

- मुद्रा स्फीति की दर में गिरावट।

आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के प्रति कुछ आशकायें भी व्यक्त की जा रही हैं, जैसे बहुराष्ट्रीय कपनियों को पूरी छूट दे देने से अर्थव्यवस्था का एकाकी व असतुलित विकास होगा (क्योंकि इनके द्वारा केवल उन्हीं क्षेत्रों में पूजी का विनियोग किया जाता है जहा लाभ की अत्यधिक सभावना हो), निजीकरण को अत्यधिक प्रोत्साहन दिये जाने से अर्थव्यवस्था में आर्थिक सत्ता के सकेन्द्रण व एकाधिकार से सम्बन्धित दोष उत्पन्न होंगे, प्रशुल्क दरों में कमी किये जाने व बाहर से ऐसी पूजीगत वस्तुओं के आयात पर छूट का कोई औचित्य नहीं है, जिनका उत्पादन देश में ही किया जा रहा है। कोर सेक्टर में निजी क्षेत्र को आमत्रण एव बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को छूट देने के परिणाम घातक हो सकते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र का विनिवेशन एव पूजी-प्रधान तकनीक अपनाए जाने के परिणामस्वरूप देश में सुरसा के मुह की भांति फैलती बेरोजगारी में कमी होने के बजाय वृद्धि होगी, वर्तमान में देश में बढते विदेशी पूजी निवेश पर अर्जित लाभाश जब विदेशी मुद्रा के रूप में देश से बाहर जायेगा तो भारत में स्थित विदेशी मुद्रा के कोषों पर दबाव बढेगा और रुपये की स्थिति कमजोर होगी, सरकार द्वारा घोषित छूटों व रियायतों का लाभ धनी व्यवसायी वर्ग को ही अधिक मिल पायेगा, जो अन्ततोगत्वा समाज में वर्ग सघर्ष को जन्म देगा। इसी प्रकार विभिन्न कर आगतों में कमी किये जाने और गैर योजनागत व्ययों में कमी न किये जाने से कृषि, आधारभूत सरचना, शिक्षा, ग्रामीण विकास आदि के लिए धन के आवटन में कमी आयेगी। इस प्रकार वर्तमान में आर्थिक उदारीकरण का अपनाया गया मॉडल भी देश की आर्थिक स्थिति को अत्यधिक सुदृढ कर पायेगा ऐसा नहीं लगता।

भारत में आर्थिक विकास . वास्तविकता क्या है ?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही देश में आर्थिक विकास को त्वरित गति देने हेतु नियोजन का सहयोग लिया गया। नियोजन के चार दशक पूर्ण किये जा चुके हैं इस दौरान आर्थिक विकास में यद्यपि तेजी आई है किन्तु साथ ही निम्न अनुत्तरित प्रश्न भी हमारे सामने उभरते हैं—

- क्या देश से गरीबी व बेरोजगारी का उन्मूलन किया जा चुका है ?
- क्या प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकी है ?
- क्या कथित विकास का स्वाद प्रत्येक व्यक्ति ले सका है ?
- क्या शहरी व ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सतुलन स्थापित किया जा सका है ?

भारत में स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् कई विकृतियां पैदा हो चुकी हैं जैसे विरासत में मिले हिन्दुस्तान के आज दो भाग हो चुके हैं 20 प्रतिशत लोगों का इडिया व 80 प्रतिशत

ही रहकर अपना पुश्तैनी धन्धा करने में उन्हें शर्म महसूस होती है। इसका परिणाम यह है कि आज गाव के गाव खाली होते जा रहे हैं और शहरों में भीड बढती जा रही है जिससे शहरीकरण से सम्बन्धित कई अन्य समस्यायें जन्म ले रही हैं। इस दौरान एक विशेष प्रवृत्ति देखने में आई है। देश के नागरिकों में स्वदेशी वस्तुओं के स्थान पर विदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने में होड बढी है। आज किसी वस्तु का आविष्कार न्यूयार्क लदन या टोकियो में होता है तो उसका उपयोग दिल्ली, बम्बई या बगलौर के बाजारों में देखा जा सकता है। इस प्रवृत्ति को अर्थशास्त्र में प्रदर्शन प्रभाव कहा जाता है जो विकासशील देशों के विकास के लिए घातक समझा जाता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जिस देश में विदेशी भाषा, विदेशी वस्तु और विदेशी संस्कृति अपनाने पर गर्व महसूस किया जाता है उस देश के भविष्य का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। स्वतत्रता के पश्चात् देश के आर्थिक विकास के लिये विकास का जो मॉडल विकसित किया गया उसमें जनता के गाढे खून पसीने की कमाई से बडी बडी इमारतें स्थापित की गईं किन्तु उनकी उपादेयता पर किसी का ध्यान नहीं गया। इस प्रकार अभी तक देश के विकास के नाम पर जो भी मॉडल बनाए गये, वे अपने लक्ष्य प्राप्ति में पूर्णत सफल नहीं हो सके।

विकास का मॉडल क्या हो ?

आज पूरा विश्व जबकि आर्थिक रूप से स्वय को महा शक्ति के रूप में देखना चाहता है, भारत के लिए भी यह आवश्यक हो गया है कि वह नियोजन के इन चार दशकों में अपनाई गई विभिन्न योजनाओं व नीतियों का मूल्याकन करे। हमें यह तो मानना ही पडेगा कि दूसरे के भरोसे बैठ कर हम कभी भी सर्वांगीण विकास को मूर्त रूप नहीं दे सकते। भला दूसरे से ऋण लेकर घी पीकर स्वय को समृद्ध मान लेना कोई बुद्धिमानी थोडे है। वास्तविकता यही है कि देश के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखते हुए अभी तक कोई मॉडल ही विकसित नहीं किया गया। आज के सदर्भ में देश में विकास के लिये लघु कुटीर व ग्रामोद्योगों के विकास मॉडल को अपनाये जाने व स्वदेशी भावना को प्रमुखता देने की सख्त आवश्यकता है। इस मॉडल के कई लाभ हैं जैसे—

- देश में शहरीकरण की बढती प्रवृत्ति पर रोक लगेगी, क्योंकि गाव के लोगों को यदि गावों में ही रोजगार उपलब्ध होगा तो वे शहर में क्यों आना चाहेंगे ? इससे जहा बेरोजगारी में कमी आयेगी वहीं शहरीकरण से सम्बन्धित कई समस्याओं जैसे आवास, चिकित्सा, पर्यावरण प्रदूषण, महामारी महगाई वृद्धि आदि पर रोक लग सकेगी।
- समाज में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण व एकाधिकारी प्रवृतियों पर रोक लगेगी क्योंकि विकास के इस मॉडल में सबको अपना व्यवसाय स्थापित करने की छूट रहेगी।
- स्वदेशी उद्योगों को ही पनपाये जाने से और लोगों में उसके प्रति भावना

जाग्रत किये जाने से देश का पैसा देश में ही रहेगा। कम से कम ऐसा तो नहीं होगा कि देश के किसानों से दो रुपये किलो आलू खरीद कर उसकी चिप्स बना कर उसे कई गुना ऊंची कीमत पर भारतीय बाजार में ही बेचा जाये।

- अर्थव्यवस्था के आधार स्तंभ कृषि व पशु पालन को विशेष दर्जा मिलेगा जिससे संतुलित आर्थिक विकास की अवधारणा को बल मिल जायेगा।
- ऐसा नहीं है कि विकास के इस मॉडल से भारत विश्व अर्थव्यवस्था से अलग-थलग पड जायेगा, बल्कि विश्व में अपनी अच्छी स्थिति को बनाये रखने में सक्षम होगा। द्वितीय महायुद्ध में अपना सर्वस्व लुटा देने के बाद जापान ने भी लघु व कुटीर उद्योगों के मॉडल को अपनाया और आज विश्व में जापान की आर्थिक स्थिति किसी से छिपी नहीं है।
- समाज में सभी लोग समानता के साथ जीवन निर्वाह कर सकेंगे, क्योंकि विकास के लिए किसी को कम या अधिक प्रोत्साहन न दिया जाकर सबको समान अवसर मिलेगा साथ ही वर्ग संघर्ष जैसी बुराइयों पर भी रोक लग सकेगी।

विकास के इस नवीन मॉडल के परिणामस्वरूप देश में प्रत्येक हाथ को काम, प्रत्येक पेट को भोजन, तन को कपड़ा और सिर पर छत मिल सकेगी। आइये जरा कल्पना करें उस भारत की जब किसी को भी आर्थिक विकास के नारे देकर लूटा न जाएगा, जब भारत को बौद्धिकता के लिए विश्व में उसकी पहचान बन सकेगी, देश का कोई भी व्यक्ति भूखा नहीं होगा, रोजगार दिलाने के नाम पर किसी के अंग नहीं निकाले जायेंगे, गावों में काम करने में कोई परहेज नहीं करेगा, बल्कि गाव की हरी-भरी वादियों में मिट्टी की भीनी व सौंधी सुगंध व नव प्राण दिलाने वाली ब्यार का आनन्द उठाने में हर कोई स्वयं को गौरवान्वित महसूस करेगा। □

6

भारत के लिए अंटार्कटिका अनुसंधान का महत्त्व

श्याम सुन्दर सिंह चौहान

भूमडल का सातवा महाद्वीप अटार्कटिका सारे विश्व के लिए अत्यधिक महत्त्व की नैसर्गिक शुद्धता वाली ऐसी प्रयोगशाला है जो मानव जाति के लिए वैज्ञानिक अनुसधान और उसके अनुप्रयोग के श्रेष्ठतम अवसर प्रदान करती है। अटार्कटिका अनुसधानों से जुडे वैज्ञानिकों एव अनुसधानकर्ताओं को इसके माध्यम से वैश्विक पर्यावरणीय घटनाक्रमों जैसे वातावरणीय ओजोन परत का विरल हो जाना, भू मण्डल के सामान्य तापमान में वृद्धि हो जाना, समुद्र का जल स्तर बढ जाना आदि का पता लगाने तथा उसका अनुश्रवण करने में सहायता मिली है। अटार्कटिका पर किए गए अनुसधानों से दक्षिणी गोलार्द्ध में मौसम विज्ञान से सबधित आंकड़ों की सहायता से मौसम की भविष्यवाणी करने में सहायता मिली है। हिमक्रिया विज्ञान विषयक अनुसधान से तापमान आदान प्रदान तथा मौसम एव जलवायु पर अटार्कटिका के प्रभाव के बारे में महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त हुई है। इस महाद्वीप पर किए गए भू गर्भिक एव भू भौतिकीय अनुसधानों से महाद्वीपों के निर्माण एव वैश्विक भू-गर्भिक इतिहास के बारे में नई नई जानकारिया प्राप्त हुई हैं। पृथ्वी का भू चुम्बकीय क्षेत्र सौर पृथ्वी तल के बीच सपर्कों तथा हमारी आकाश गगा के बाहर से आने वाली ब्रह्माण्डीय किरणों के अध्ययन की दृष्टि से अटार्कटिका सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र है। जीवधारियों के पर्यावरण के साथ विशिष्ट अनुकूलन, समुद्री जीवों एव जैव ससाधनों के बारे में निर्णय लेने के लिए वाछित सूचना, मानव जीव विज्ञान तथा चिकित्सा सबधी अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाए प्राप्त करने के लिए अटार्कटिका का पर्यावरण अत्यधिक उपयोगी है।

अटार्कटिका अनुसंधान की वैश्विक व्यवस्था

विश्व के सभी देश प्रकृति की इस विपुल सम्पदा की खोज एव उसके अनुप्रयोग के लिए आतुर थे। आकार में भारत और चीन के भौगोलिक क्षेत्रफल से भी बडे विश्व के इस सातवें महाद्वीप का 98 प्रतिशत भू-भाग वर्ष भर बर्फ से ढका रहता है। इसलिए इस तक पहुचना तथा इस पर खोज व अनुसधान करना एक दुरूह कार्य समझा जाता था। अनुसधान एव खोज में विभिन्न देशों के बीच टकराहट न हो इसके लिए मिल जुल कर

प्रयास करने को ही सर्वाधिक उपयुक्त माना गया। सन 1959 में संयुक्त राष्ट्र संघ के परिक्षेत्र से बाहर भारत सहित विश्व के 112 देशों ने अटार्कटिका संधि 1959 पर हस्ताक्षर किए। इस संधि के प्रावधानों के अनुसार ही अटार्कटिका पर अनुसंधान एवं खोज कार्यक्रम संचालित हो रहे हैं। वर्तमान में विश्व के 43 देश इस संधि के तहत अनुसंधानरत हैं। इस महाद्वीप से संबंधित समस्त निर्णय एक 16 सदस्यीय परामर्श मण्डल द्वारा लिए जाते हैं। भारत भी इस मण्डल का सदस्य है। इस सम्मानजनक स्थिति के बीच भारत 1981 से ही अटार्कटिका पर अपना अभियान दल भेजता रहा है। 1981 से प्रत्येक वर्ष आयोजित किए जाने वाले अटार्कटिका अनुसंधान अभियानों से आधारभूत तथा पर्यावरण विज्ञानों में उत्कृष्ट अनुसंधान का व्यावहारिक आधार निर्मित हुआ है। इससे अटार्कटिका संधि के सदस्य देशों में भारत को सम्मानजनक स्थान तथा मान्यता प्राप्त हुई है। इस संधि में भारत की स्थिति एक सलाहकार की है। भारत अटार्कटिका अनुसंधान वैज्ञानिक समिति का सदस्य है और अटार्कटिका समुद्री सजीव संसाधन संरक्षण समझौते पर भी इसने हस्ताक्षर किए हैं। अटार्कटिका संधि के सलाहकार सदस्य देश 6 वर्ष के लगातार विचार विमर्श के बाद अटार्कटिका खनिज संसाधन गतिविधियों के नियमन पर जून 1988 में ही सहमत हो गए थे। अक्टूबर,1989 में ये सभी देश इस बात पर भी सहमत हो गए कि अटार्कटिका के पर्यावरण की सुरक्षा के लिए व्यापक उपाय किए जाने की व्यवस्था की जाए, इस हेतु जून, 1991 में एक व्यापक समझौता किया गया जिसमें अगले 50 वर्ष तक अटार्कटिका में व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए खनन कार्यों पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

अटार्कटिका अनुसंधान कार्यक्रम

भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी, जिन्हें अटार्कटिका अनुसंधान में विशेष रुचि थी, की पहल एवं मार्ग निर्देशन पर सन् 1981 में अटार्कटिका अनुसंधान का एक व्यापक कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य इस महाद्वीप की विशिष्ट स्थिति और पर्यावरण का लाभ उठाते हुए उन प्रमुख वैश्विक प्रक्रियाओं को समझना है जिनसे मानव जाति का भविष्य बेहतर हो सके। उच्च वैज्ञानिक अनुसंधान प्रकृति के इस अति महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम में निम्न को सम्मिलित किया गया है

(i) अटार्कटिका की बर्फीली महासागरीय प्रणाली तथा वैश्विक पर्यावरण का अध्ययन

(ii) अटार्कटिका के भूम्दर मण्डल एवं गोण्डवाना भूमि की पुनर्निर्माण प्रक्रियाओं का स्वरूप निर्धारण तथा खनिज संसाधनों व हाइड्रो-कार्बन संसाधनों का आकलन करना

(iii) अटार्कटिका की पारिस्थितिकी प्रणाली एवं पर्यावरणीय जैव तत्वीय प्रणाली का

अध्ययन करना,

(iv) सौर-भू प्रक्रियाओं का अध्ययन करना,

(v) सहायक प्रणाली के लिए अभिनव प्रौद्योगिकिया विकसित करना,

(vi) पर्यावरणीय प्रभाव का आकलन करना, एव

(vii) आधारभूत आकडे एकत्रित करना तथा उन्हें व्यवस्थित करना।

अटार्कटिका अनुसधान कार्यक्रम एक बहुआयामी कार्यक्रम है जिसमें भू भौतिकी भू चुम्बकत्व, मौसम विज्ञान, भू गर्भ विज्ञान, जीव विज्ञान, गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोत, पर्यावरण फिजियोलोजी, वायुमण्डल विज्ञान, पृथ्वी विज्ञान, हिम विज्ञान, वैमानिकी एव जलोच्चता विज्ञान आदि क्षेत्रों मे सबधित वैज्ञानिक तथा अनुसधानकर्ता प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जुडे हुए हैं। भारत सरकार के महासागर विकास विभाग, मौसम विज्ञान विभाग, रक्षा मन्त्रालय, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, भारतीय भू गर्भ सर्वेक्षण विभाग सहित 45 से अधिक विभाग, वैज्ञानिक व शोध सस्थान और विश्वविद्यालय अटार्कटिका अनुसधान कार्यक्रम से सम्बद्ध हैं।

अटार्कटिका अनुसधान हेतु भेजे जाने वाले अभियान दलों के परिवहन हेतु विदेशों से आयातित या किराए पर लिए गए पोतों—'फिन पोलरिस' तथा 'थूले लैण्ड' 'एम वी स्टीफन क्राशनिकोव' और 'एम वी पोलर बर्ड' का प्रयोग सर्वाधिक किया गया है।

इन अभियान दलों के लिए आवश्यक साज सज्जा, उपकरण आदि उपलब्ध कराने में भारतीय थल सेना, नौ सेना, वायुसेना तथा रक्षा अनुसधान एव विकास सगठन ने उल्लेखनीय भूमिका निभायी है।

अटार्कटिका अनुसधान कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक 14 अभियान दल अटार्कटिका जा चुके हैं। पहला अभियान दल महासागर विकास विभाग के सचिव डॉ एस जैड कासिम के नेतृत्व में दिसम्बर, 1981 में गया था जिसमें विभिन्न विभागों/सस्थानों के 21 सदस्य शामिल थे। इन अभियान दलों का विवरण तालिका में दिया गया है।

भारतीय वैज्ञानिकों ने अटार्कटिका में वर्ष 1983-84 में एक स्थायी केन्द्र 'दक्षिण गगोत्री' की स्थापना की थी। केन्द्र अब आपूर्ति आधार कैम्प के रूप में कार्य कर रहा है। इस केन्द्र से लगभग 80 किमी दूर हिमरहित क्षेत्र में दूसरा स्थायी केन्द्र "मैत्री" स्थापित किया गया है। यह केन्द्र शिरमाकर ओसिस नामक चट्टानी इलाके में वर्ष 1988-89 में स्थापित किया गया है।

तालिका

अंटार्कटिका अनुसंधान हेतु भेजे गए अभियान दलों का विवरण

अभियान दल	अभियान दल के नेता	भारत से प्रस्थान दिनांक	अभियान दल के सदस्यों की संख्या	विशेष
पहला	डॉ. एस.जैड. कासिम सचिव, महासागर विकास विभाग	6 दिसम्बर, 1981	21	
दूसरा	डा. वी.के. रैना निदेशक भारतीय भू-गर्भ सर्वेक्षण	28 नवम्बर, 1982	28	
तीसरा	डॉ. एच.के. गुप्ता निदेशक, पृथ्वी विज्ञान अध्ययन केन्द्र, तिरुअनन्तपुरम	27 दिसम्बर, 1983	83	कार्यकारी प्रयोगशाला "दक्षिण गंगोत्री" की स्थापना
चौथा	डॉ. बी.बी. भट्टाचार्य निदेशक, भारतीय खान स्कूल, धनबाद	4 दिसम्बर, 1984	82	सीधे उच्च आवृत्ति संचार सम्पर्क प्रणाली की स्थापना
पांचवा	श्री एम.के. कौल भू-गर्भ वैज्ञानिक	30 नवम्बर, 1985	88	
छठा	डॉ. ए.एच. पारुलेकर वैज्ञानिक, भारतीय सागर विज्ञान संस्थान, गोवा	26 नवम्बर, 1986	90	
सातवा	डॉ. डी.आर. सेनगुप्ता वैज्ञानिक, सागर विज्ञान संस्थान, गोवा	25 नवम्बर, 1987	92	
आठवा	डॉ. अमिन्वसेन गुप्ता वैज्ञानिक, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला	24 दिसम्बर, 1988	58	स्थायी केन्द्र "मैत्री" की स्थापना
नौवा	श्री आर. रवीन्द्र वैज्ञानिक भारतीय भू-गर्भ सर्वेक्षण	30 नवम्बर, 1989	73	
दसवा	अनुपलब्ध	27 नवम्बर, 1990	72	
ग्यारहवा	डॉ. एस. मुकर्जी वैज्ञानिक भारतीय भू-गर्भ सर्वेक्षण	27 नवम्बर, 1991	98	
बारहवा	डॉ. बी.के. धारगलकर वैज्ञानिक, राष्ट्रीय महासागर विज्ञान संस्थान	5 दिसम्बर, 1992	56	
तेरहवा	श्री सुधाकर राव वैज्ञानिक, भारतीय मौसम विज्ञान विभाग	7 दिसम्बर, 1993	58	
चौदहवा	डॉ. एस.डी. शर्मा वैज्ञानिक, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला	दिसम्बर, 1994	62	ई-मेल सुविधा प्रारम्भ की गयी

अटार्कटिका अध्ययन केन्द्र

भारतीय अंटार्कटिका अनुसधान कार्यक्रम को राष्ट्रीय स्तर पर बढावा देने के लिए गोवा में वास्को नामक स्थान पर अटार्कटिका अनुसधान हेतु राष्ट्रीय वैज्ञानिक कार्यक्रम बनाने, अनुसधान अभियानों के लिए आवश्यक साज सज्जा जुटाने, विशिष्ट प्रयोगशालाओं की सुविधाए विकसित करने, अटार्कटिका सबधी आकडों और साहित्य के सकलन तथा विविध विषयों के अनुसधान को बढावा देने का कार्य करेगा। पूर्ण रूप से चालू हो जाने पर यह केन्द्र ध्रुवीय विज्ञान में अन्तर विषात्मक अध्ययन करने के लिए राष्ट्रीय सुविधा उपलब्ध कराने के लिए कार्य करेगा। इस केन्द्र की स्थापना वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसधान परिषद् की देख रेख में की जा रही है।

अटार्कटिका अनुसधान से लाभ एव भारत के लिए इनका महत्त्व

अटार्कटिका अनुसधान पर गए 14 अभियानों मे भारत को अन्य महत्त्वपूर्ण जानकारियों के साथ साथ गोंडवाना पुनर्निर्माण के एक भाग के रूप में प्रायद्वीपीय भारत और अटार्कटिका के बीच शैलविज्ञान विषयक सहसम्बन्ध स्थापित करने में सफलता मिली है। इन अभियानों की अनुसधानिक जानकारियों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि इनसे भारत मानसून सबधी भविष्यवाणिया करने तथा सियाचिन जैसे ऊचे ठन्डे स्थानों में जलवायु से मानव द्वारा स्वय को अभ्यस्त बना लेने में विकसित कर लेने के रूप में लाभान्वित हुआ है। इन जानकारियों से ठन्डे तापमान में प्रौद्योगिकी तथा लम्बी दूरी की सचार प्रणाली को घरेलू स्तर पर भी विकसित कर पाना सम्भव हो गया है। इस सुदूर महाद्वीप से एकत्र की गयी जानकारी तथा इसके चारों ओर के महासागरों से प्राप्त हुई सूचनाओं मे पृथ्वी के क्रमिक विकास के इतिहास तथा वैश्विक चेतावनी 'ग्रीन हाउस' प्रभाव एव ओजोन परत में छिद्र हो जाने जैसी समस्याओं के निराकरण पर ध्यान देकर मानव समाज के भावी निर्वाह को सुसाध्य बनाया जा सकता है।

भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा अटार्कटिका पर स्थापित स्थायी केन्द्र 'मैत्री' पर लगायी गयी स्थायी मौसम वेधशाला द्वारा सतत रूप से विभिन्न प्रकार से मौसम विज्ञानी पैरामीटर्स सबधी आकडे एकत्रित किए जाते रहते हैं। इन आकडों को दक्षिणी महासागरों के ऊपर के मौसम को समझने में प्रयुक्त किया जा सकता है। इनमें से कुछ आकडे वास्तविक समय आधार पर वैश्विक दूर सचार नेटवर्क को भी हस्तान्तरित किए जाते रहते हैं। ग्रीन हाउस गैसों एव ओजोन छिद्र तथा दक्षिण हिन्द महासागर के ऊष्मा बजट पर इनके प्रभावों पर किए गए अध्ययनों से भी भारत काफी बडी मात्रा में लाभान्वित हुआ है। लम्बी दूरी के सचार की प्रजनन तकनीक पर भू चुम्बकत्व के प्रतिकूल प्रभावों के लिए सुधारवादी उपायों को भी सीखने में अटार्कटिका अभियानों से प्राप्त आकडे मदद कर सकते हैं। हिमक्रिया विज्ञान विषयक खोजों एव हिमालयीन हिमानियों से उनका सहसबध स्थापित कर लेने से भारत को अत्यधिक लाभ प्राप्त

होगा। अटार्कटिका पर भारतीय लोगों ने जिस प्रकार अत्यधिक ठण्डी जलवायु में सुगमतापूर्वक रहना सीख लिया है उससे हिमालय के सियाचिन जैसे अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर मानव, विशेष रूप से सैनिकों के स्थायी रूप से रहने को सम्भव बनाया जा सकेगा।

अटार्कटिका पर मौजूद माइक्रोब्स सियाचिन जैसे ठण्डे क्षेत्रों में मानव मल-मूत्र एव कार्बनिक अपशिष्ट के स्वच्छ निस्तारण के कारणों के अध्ययन के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं। प्रशिक्षित श्रमशक्ति अब अत्यधिक ठण्डी, दुरूह एव एकाकी दशाओं में भी कार्य करने के लिए उपलब्ध है। शिरमेकर ओआसिस तथा वोल्थैट पर्वतों के भूगर्भीय मानचित्रों से गोण्डवाना भूमि महसम्बन्ध के रूप में भू-गर्भिक ससाधनों के वितरण को समझने में सहायता मिली है। तेरहवे और चौदहवें अभियान दलो के वैज्ञानिकों ने अटार्कटिका पर भारतीय मार्ग से मिलने वाले पहुच जल (एप्रोच वाटर) का जलोच्चता (हाइड्रोग्राफिक) चार्ट तैयार किया है। यह चार्ट दक्षिण गगोत्री हिमानी की सामने की ओर हिमानीय चलन की गति का अनुश्रवण करता है। भारतीय वैज्ञानिकों ने 800 वर्ग किमी क्षेत्र में फैले औरविन पर्वतों का भू-गर्भीय मानचित्र तैयार कर लिया है। इस प्रकार अब तक अटार्कटिका महाद्वीप के 9,600 वर्ग किमी क्षेत्र का मानचित्रण भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा किया जा चुका है। प्रकाशिकी एयरोनोमी पर किए गए भारतीय प्रयोग द्वारा सौर प्लाज्मा तथा भू चुम्बकीय क्षेत्रों की अन्तक्रिया, जो थरथराहट के रूप में परिणामित होती है, पर भी खोज की गयी है। राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, अहमदाबाद के वैज्ञानिकों ने विश्व में सर्वप्रथम एक ऐसा उपकरण तैयार किया है जो दिन में ही थरथराहटी प्रभावों की खोज कर सकता है।

जैव विविधता कार्यक्रम पर केन्द्रित चार अभिनव प्रयोग अटार्कटिका अनुसधान अभियान पर भेजे गए दलों ने किए हैं। ये हैं—(i) मैत्री के चारों ओर की झीलों में शैवाल उपनिवेशीकरण, (ii) ऐसे निम्न तापीय जीवाणु की खोज जो अत्यधिक ठण्डे स्थानों मे मानव के मल एव अन्य कार्बनिक अपशिष्टों के स्वच्छ निस्तारण में प्रयुक्त किया जा सके, (iii) अटार्कटिका स्तनधारियों (सील) और पक्षियों (पेंगुइन) की जनगणना करना ताकि एक दीर्घकालिक अनुश्रवण प्रोटोकोल तैयार किया जा सके, एव (iv) पारिस्थितिक अनुश्रवण के लिए फायलम टैडीग्रेडा को एक प्रमुख प्रजाति मानकर किए गए अध्ययन।

चौदहवें अभियान के दौरान अटार्कटिका पर इलेक्ट्रॉनिक मेल स्थापित करके इन्टरनैट के माध्यम से 'मैत्री' का भारत से सीधा दूरसचार सबध स्थापित हो गया है।

अटार्कटिका अनुसधानों का शैक्षिक महत्त्व तो है ही, इन जानकारियों के व्यावहारिक प्रयोग से भारत में वर्षा सबधी भविष्यवाणिया करने एव मौसम मानचित्रण तकनीकों में सुधार करने, मौलिक रूप से अलग-अलग मौसमी प्रकृति के क्षेत्रों में मानव

द्वारा स्वय को अभ्यस्त बना लेने की सक्षम विधि विकसित करने में सहायता मिली है।

आने वाले दिनों में इस बात की प्रबल सम्भावनाए हैं कि भारत अटार्कटिका के समुद्री खाद्य ससाधनों के व्यावसायिक दोहन के कार्यक्रम में शामिल हो जाए। भारत की रुचि क्रिल्स के उत्पादन में है जिसे पारिस्थितिकीविद मानव के लिए सम्भाव्य समुद्री भोजन मानते हैं जो विटामिन 'ए' का एक समृद्ध स्रोत है। जापान, रूस एव पोलैण्ड क्रिल्स का उत्पादन पहले ही प्रारम्भ कर चुके हैं। भारत के लिए क्रिल्स भविष्य में एक अच्छा निर्यातक हो सकता है। इसी विचारधारा के तहत पन्द्रहवें अभियान में मत्स्य उद्योग सघ, भारतीय मत्स्य सर्वेक्षण एव केन्द्रीय लवण एव समुद्री रसायन अनुसधान सस्थान के वैज्ञानिकों को शामिल किया जा रहा है।

अटार्कटिका और उससे जुड़ी भावी सम्भावनाए

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अटार्कटिका अनुसधान से भारत एव विश्व के अन्य देशों की प्रकृति के बारे में अनेक ऐसी उपयोगी जानकारिया मिलेंगी जिनके बारे में लोग अब तक अनभिज्ञ थे। इन जानकारियों से अनेक प्रकार के उपयोगी अनुप्रयोग करके विकास की गति को तेज किया जा सकेगा। लेकिन विश्व के अनेक देशों के अनुसधान दलों के अटार्कटिका जाने और वहा पर रहने से वहा के पर्यावरण के असन्तुलित हो जाने का खतरा भी धीरे धीरे बढ़ता जा रहा है। मई 1995 में सिओल में आयोजित 19वीं अटार्कटिका सधि परामर्शक बैठक में अटार्कटिक सधि प्रचालन की समीक्षा की गयी, पर्यावरणीय सुरक्षा से सबधित मैड्रिड सयाचार को अन्तरिम रूप से लागू किए जाने पर आम सहमति स्थापित हुई, अटार्कटिक सधि प्रणाली के लिए सचिवालय की स्थापना पर विचार विमर्श किया गया तथा अधिकारों के प्रयोग से सबधित विषय वैज्ञानिक और सभार मामलों में सहयोग पर विचार-विमर्श हुआ। इन विचार विमर्शों के आधार पर ही भारत सहित सक्रिय रूप से अटार्कटिका अनुसधान से जुडे परामर्शदाता देशों द्वारा सयाचार के उपबन्धों को यथा व्यवहार्य लागू किए जाने के विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। अनुसधानकर्ता देशों द्वारा अपशिष्ट निपटान के आधुनिक वैज्ञानिक तरीके प्रयोग में लाए जा रहे हैं। भारत से जाने वाला प्रत्येक अभियान दल अटार्कटिका में कार्यकलापों के पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्याकन करता रहता है।

अटार्कटिका में पर्यटन उद्योग के विकास की अच्छी सम्भावनाओं को देखते हुए कार्ययोजना तैयार की जा रही है। अटार्कटिका आने वाले आगन्तुकों और गैर-सरकारी अभियानों को चौकस रहने में सहायता के लिए तथा उन्हें सयाचार के उपबन्धों का पालन करने के लिए विस्तृत मार्गदर्शक सिद्धान्तों का निर्धारण किए जाने की दिशा में पहल की गयी है।

अटार्कटिका समुद्री सजीव ससाधनों के सरक्षण के लिए आयोग और वैज्ञानिक समिति की 13वीं बैठक 24 अक्तूबर से 4 नवम्बर, 1994 तक होबर्ट (आस्ट्रेलिया) में

आयोजित की गयी। इसमें भारत सहित आयोग के सभी सदस्य देशों ने भाग लिया। इस बैठक में क्रिल ससाधनों, प्रजातियों की खेती, परितत्र का प्रबोधन, निरीक्षण, सरक्षण के उपायों के साथ अनुपालन, वैज्ञानिक अनुसधान के सरक्षण उपायों के अनुप्रयोग पर विचार-विमर्श किया गया।

पर्यावरणीय प्रबोधन, अटार्कटिका में आकडा प्रबन्धन तथा पर्यावरणीय मामले एव सरक्षण, पर्यटन, आकस्मिक अनुक्रिया तथा अटार्कटिका प्रबन्धक इलेक्ट्रानिक्स नेटवर्क का विकास आदि मुद्दों पर विचार विमर्श के लिए राष्ट्रीय अटार्कटिका कार्यक्रमों तथा अटार्कटिका सभार एव प्रचालनों पर स्थायी समिति और अटार्कटिका अनुसधान पर 23वीं वैज्ञानिक समिति की प्रबन्ध परिषद् की बैठकें आयोजित की गईं जिनमें भारत ने सक्रिय भागीदारी निभायी।

निष्कर्ष

पृथ्वी के क्रमिक विकास, जलवायु एव मौसम, खनिज, भू चुम्बकीय, हिम क्रिया विज्ञान विषयक, जीव विज्ञान विषयक, शैल विज्ञान विषयक एव जलोच्चता विषयक अनेक प्रकार की विपुल जानकारी और सम्पदा अपने गर्भ में छिपाए भू-मण्डल का सातवा महाद्वीप अटार्कटिका अधिकाश विश्व के लिए आज भी रहस्यमय बना हुआ है। विश्व के वैज्ञानिक इस दुरूह तथा मानव जीवन व्यतीत करने के लिए लगभग अनुपयुक्त महाद्वीप के बारे में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करके उसका उपयोग मानव हेतु करने के लिए सन् 1959 से ही सतत प्रयत्नशील हैं। इस क्षेत्र में किए जा रहे अनुसधानों एव खोजों के मामले में भारत की स्थिति एक अग्रणी और परामर्शदाता देश की है। अटार्कटिका अनुसधान कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत से 1981 के बाद से अब तक 14 अभियान दल अटार्कटिका जा चुके हैं जिनसे लगभग 45 सस्थानों/विभागों के 1,000 से अधिक वैज्ञानिक लाभान्वित हो चुके हैं। हालाकि अंटार्कटिका की खनिज सम्पदा के व्यावसायिक दोहन पर अगले पचास वर्षों तक प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, तथापि इस क्षेत्र की जैविक सम्पदा के दोहन में भारत की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। अटार्कटिका अनुसधानों से प्राप्त जानकारी के आधार पर भारत अपने अधिक ऊचाई वाले इलाकों में सामरिक महत्त्व के स्थलों की रखवाली अब अधिक भली प्रकार कर सकता है। इतना ही नहीं हिमालय के अधिक ऊचाई वाले क्षेत्रों में छिपी विपुल प्राकृतिक सम्पदा के व्यावसायिक दोहन की सम्भावनाए भी तलाश सकता है। □

7

भारत मैक्सिको की भूल नहीं दोहरायेगा

वेद प्रकाश अरोड़ा

उत्तर अमरीका और मध्य अमरीका को मिलाने वाले देश मैक्सिको में आर्थिक सुधारों का बीडा लगभग दस वर्ष पहले तत्कालीन राष्ट्रपति कारलोस सालीनास ने देश को मजबूत बनाने तथा उसकी छवि सुधारने के लिए उठाया था। इधर भारत को 1991 के आर्थिक सकट से उबार कर प्रगति की डगर पर ले जाने के लिए आर्थिक सुधारों की शुरुआत लगभग चार वर्ष पहले की गई। मैक्सिको को अपना वित्तीय लेखा सतुलित रखने, व्यापार को उदार बनाने, अमरीका और कनाडा के साथ उत्तर अटलाटिक मुक्त व्यापार क्षेत्र 'नाफ्टा' स्थापित करने, सरकारीकरण से निजीकरण की तरफ कदम बढाने और आतरिक अर्थतत्र को अकुशों के घने जगल से बाहर निकालने के लिए एक आदर्श सुधारकर्ता देश का नाम दिया गया था। विदेशी पूजी का प्रवाह तेजी से होने, विदेशी मुद्रा भडार बढने और मुद्रा पैसों के मजबूत होने पर मैक्सिको के डके चारों तरफ बजने लगे थे। सुधार और उन्नति के शिखर को छूने के बाद पिछले दो वर्षों से उसे वित्तीय झझटों झझावातों का सामना करना पड रहा है। उसका व्यापार घाटा 1990 से साढे सात अरब डालर से 1994 में एकदम बढकर लगभग 28 अरब डालर हो गया। उसका काफी खाली हुआ विदेशी मुद्रा भडार उसकी अर्थव्यवस्था की खस्ता हालत की मुह बोलती तस्वीर है। डालर की तुलना में उसके पैसों का मूल्य एक बार फिर 7.265 से 7 67 पर आ गया है। यह गत 9 मार्च के 7 70 के उस स्तर से कुछ ही ऊचा है जब मैक्सिको सरकार को दिसबर 1994 की अवमूल्यन जैसी स्थिति पैदा होने से बचने के लिए आपात उपाय करने पडे थे।

उसके वित्तीय सकट से भारत के लिए चिंतित होने का कोई कारण नही है क्योंकि भारत की स्थिति और मैक्सिको की स्थिति में कोई खास समानता नहीं है। समानता मात्र इतनी है कि आर्थिक सुधारों से पहले दोनों ने कई उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर रखा था। दूसरी समानता यह है कि दोनों उदारीकरण बाजारीकरण, सार्वभौमीकरण और निजीकरण की राह पर चल रहे हैं लेकिन जहा मेक्सिको का अर्थतत्र बुलदियों से नीचे गहराइयों में जा गिरा है वहा भारत का अर्थतत्र गड्ढे से निकलकर विकास के राजमार्ग पर बढ निकला है। जमीन आसमान का यह अतर भारत में 1991 और 1995 की स्थितियों

की तुलना करने पर सहज ही स्पष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए 1991 में मुद्रास्फीति तेज गति से बढती हुई 17 प्रतिशत की दर तक पहुच गई थी, लेकिन आज वह उसके आधे से भी नीचे चली गई है। तब हमारे विदेशी भडार में मात्र 1.4 अरब डालर रह जाने के कारण हमारे लिए आरक्षित सोने तक को बेचने और गिरवी रखने की नौबत आ गई थी लेकिन आज इस भडार में लगभग 20 अरब डालर जमा है।

मैक्सिको के सकट का मूल कारण आर्थिक सुधार नहीं, बल्कि नए अवसरों और चुनौतियों का सही सामना न करना, सभावनाओं का लाभ न उठाना तथा अर्थव्यवस्था का अकुशल प्रबधन था। पहले अतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और सस्थागत तथा अन्य विदेशी पूजी निवशकों को यह प्रबल धारणा थी कि तेल मे विपुल आय के कारण मैक्सिको एक अडिग आर्थिक ताकत बन गया है। इसीलिए अधिकतर विदेशी पूजी निवेशकर्ता, पूजी लगाने के लिए मैक्सिको को ही प्रमुखता देते थे। उसके प्राथमिकता क्रम में भारत और चीन नीचे रहते थे। उधारी की रकम के बरते जाने से मैक्सिको ने अपने को अल्पकालिक उपायों तक सीमित रखा तथा दीर्घकालिक नियत्रणों और नीतियों को गौणता प्रदान की, वरना कोई वजह नहीं थी कि वह मुद्रास्फीति के खतरे से बचते हुए विकास न कर पाता और भुगतान सतुलन की पीडा झेले बिना आयात का विस्तार न कर पाता। सरकार ने सुगमता से कर्ज मिलते जाने से घाटे पर लगाम लगाने का प्रयास नहीं किया। फिजूलखर्ची बढती चली गई, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों में मजदूरों की सख्या आवश्यकता से अधिक होती चली गई, ऊपर से सरकार ने मुद्रास्फीति के प्रभाव स उन्हें बचाने के लिए महगाई भत्ते एव वेतन बढाने की गारटी दी। परिणामस्वरूप बाजार में प्रत्येक चीज महगी होती चली गई। उसने ओलम्पिक जैसी आडम्बरपूर्ण परियोजनाओं पर भारी व्यय करने से हाथ पीछे नहीं खींचा। इतना ही नहीं वहा के राजनीतिज्ञों नौकरशाहों और व्यापारियों ने सरकारी खजाने से धन निकालकर अमरीका और यूरोप में पूजीनिवेश किया। आयात की तुलना में निर्यात कम होने से व्यापार घाटा बढता चला गया। नतीजतन चालू खाते का घाटा बढता चला गया। यह घाटा चार वर्षों की अल्पावधि में लगभग चौगुना हो गया। फिजूलखर्ची, पूजी पलायन, व्यापारिक घाटे और विदेशी मुद्रा कोष के ह्रास से सकट चतुर्दिक गहराता चला गया। इस स्थिति में विदेशी पूजीनिवेशकों का उत्साह भी ठडा पडने लगा। वे अपने शेयर और प्रतिभूतियों को बेचकर डालर हासिल करने के लिए दौड पडे। नोटों की छपाई से खर्च चलाने पर बाजार में पैसों मुद्रा की भरमार हो गई। नतीजा यह हुआ कि 1985 से 1993 तक मुद्रास्फीति की दर 45 प्रतिशत तक पहुच गई। इस ऊची दर को नीचे लाने के लिए सरकार ने उपभोक्ता वस्तुओं पर आयात शुल्कों में भारी कटौती कर दी। 1982 में लगे 100 प्रतिशत शुल्क को पहले 1987 में घटा कर 20 प्रतिशत तक और इधर कुछ समय पहले 10 प्रतिशत तक कर दिया गया, लेकिन बेतहाशा बढ रहे खर्च को कम करने के लिए कोई ठोस व्यावहारिक कदम नहीं उठाया गया। कम दाम में आयातित विदेशी

सामान में मैक्सिको के बाजार पट गए। इससे मैक्सिको के अपने उद्योगों के चक्के की चाल धीमी पडती चली गई, बेरोजगारी बढती चली गई और मंदी का माहौल बनना शुरू हो गया। दूसरे, बढते व्यापार घाटे और गिरते पूंजीनिवेश से मैक्सिको की मुद्रा पर दबाव बढता चला गया। आयात के भुगतान के लिए मैक्सिको सरकार और फर्मों के लिए पैसो का बेचना तथा डालरों का खरीदना जरूरी था। परिणाम यह हुआ कि मैक्सिको के बाजार में पैसो की बाढ सी आ गई। उसकी खरीद से दूर हटने जाने से उसका मूल्य गिरना अनिवार्य था और ऐसा हुआ भी। पैसो का मूल्य बनाए रखने के प्रयास में मैक्सिको के केंद्रीय बैंक ने डालरों के बदले पैसो खरीदने शुरू कर दिए। इससे विदेशी मुद्रा भडार और खाली हो गया। नतीजतन पूंजीनिवेशकों में अधिक घबराहट फैलनी शुरू हो गई। विदेशी पूंजीनिवेशक अपने पूंजी भडार और कारोबार को बचाने के लिए तेजी से बोरिया बिस्तर बाध कर अन्यत्र जाने शुरू हो गए।

20 दिसबर, 1994 को राष्ट्रपति एर्नेस्टो जेडिलो की नई सरकार ने पैसो का न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित कर दिया। पैसो के 30 प्रतिशत से अधिक अवमूल्यन से स्थिति बद से बदतर हो गई। पैसो के विनिमय मूल्य में गिरावट कहीं रुकने का नाम नहीं ले रही थी। पहले अगर लगभग तीन पैसे एक डालर के बराबर थे तो बाद में सात पैसो का विनिमय एक डालर से होने लगा। मुद्रा और पूंजी बाजार में यह गिरावट तभी कुछ थम पाई जब अमरीका ने राहत और सहायता के एकमुश्त कार्यक्रम की घोषणा की। तब अमरीका, मैक्सिको को तेल से होने वाली आय के बदले में 40 अरब डालर देने पर राजी हो गया। मैक्सिको के उत्तर अमरीका मुक्त व्यापार संगठन नाफ्टा का सदस्य होने के नाते भी अमरीका उसकी सहायता के लिए उद्यत हो गया। अगर वह ऐसा न करता तो स्वयं अमरीका में मैक्सिको के नागरिकों का दूसरा गैरकानूनी पलायन आरंभ हो जाता। मैक्सिको को विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भी तीन अरब डालर की एकमुश्त सहायता देने की योजना बनाई।

इधर भारत में मैक्सिको जैसी स्थिति उत्पन्न होने के आसार नहीं हैं। हमारे सुधारों का चाल चलन और चेहरा भी कुछ भिन्नता लिए है। भारत में सुधारों के दो पडाव हैं। पहले पडाव में हमने 1991 के गहरे आर्थिक संकट से उबरने, तात्कालिक उधार चुकाने, रुकी विकास प्रक्रिया को गतिशील बनाने, भुगतान संतुलन को और बिगडने से रोकने और विदेशी मुद्रा भडार में आवक की फिर शुरुआत करने का प्रयास किया। दूसरे पडाव में हम अंधेरी कोठरी से बाहर आकर प्रगति की राह पर आगे बढने लगे हैं। इसके लिए वित्तीय, राजकोषीय और विनिमय दर में सुधार करने, औद्योगिक और कृषि उत्पादन बढाने तथा निर्यात में वृद्धि कर उसे आयात की बराबरी पर लाने का प्रयास किया जा रहा है। कर प्रणाली को सरल बनाने तथा उसे व्यापक आधार प्रदान करने के साथ साथ पूंजी बाजार की कमियां दूर करने में मुस्तैदी से काम किया जा रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के कुछ शेयरों की बिक्री से राजकोष बढाने के साथ साथ

उनके कामकाज को सुधार कर उन्हें अधिक मुनाफा कमाने वाले उपक्रमों में बदला जा रहा है। सुधारों से मजदूरी पर कोई प्रतिकूल असर न पडे, बल्कि वे भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से इनसे लाभान्वित हों—इसके लिए भी विशेष कदम उठाए गए हैं। अनिवासी भारतीयों तथा विदेशी सस्थागत भारतीयों तथा विदेशी सस्थागत एव गैर-सस्थागत पूजी निवेश से बचाए गए सरकारी धन से शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबी की रेखा से नीचे जिंदगी बसर कर रहे लोगों के कल्याण की अनेक परियोजनाए हाथ में ली गई है और सुधारों को मानवीय पुट देते हुए लाखों बेरोजगारों के लिए रोजगार का जुगाड किया गया है। सरकार ने नौवीं पचवर्षीय योजना के अत तक शिक्षा पर सकल घेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत खर्च करने का सकल्प किया है। इसके अलावा सरकार गरीबी उन्मूलन तथा स्वास्थ्य कार्यक्रमों को भी नया रूप देने के लिए प्रतिबद्ध है। अब तो फर्मों उद्योगों को देहाती इलाकों में बिजली पैदा करने, बागवानी, फूलों की खेती करने, खाद्य परिशोधन और वन लगाने जैसे कामों में पूजी लगाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। असगठित मजदूरों के लिए कल्याण कोष बनाने तथा अन्य सुविधाए देने के लिए दो अध्यादेश जारी किए गए हैं। सरकारी व्यय में कटौती के लिए नए आयोग और नई समितिया बनाने पर प्रतिबध लगा दिया गया है। यह इसलिए जरूरी समझा गया है कि पहले ही विभिन्न मत्रालयों और विभागों द्वारा गठित लगभग 900 समितियों पर अरबों रुपये खर्च हो रहे हैं। प्रत्येक समिति के अध्यक्ष को मत्री का दर्जा और तदनुसार सुविधाए दी जाती हैं। सदस्यों और कर्मचारियों पर जो खर्च होता है, वह अलग। सरकार अपव्यय रोकने के साथ ही रुपये का मूल्य गिरने से बचाने, वस्तुओं के अभाव न होने देने तथा पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा दूरदराज के क्षेत्रों में सस्ती दरों पर चीजें उपलब्ध कराने के लिए प्रयत्नशील है। उधर मैक्सिको में एक दशक से किए जा रहे ढाचागत समायोजन के दौरान आम लोगों के लिए अभावों का दौर बना रहा और वे मूल्यों में कमी के लिए तरसते रहे, जबकि पूजीपति और धनाढय व्यापारी बेराकटोक धन बटोरते रहे। इस सब ने वहा चियापास क्षेत्र के विद्रोह में समिधा का काम किया। इस स्थिति में मैक्सिको का निर्यात आयात से पिछडता चला गया और चालू खाते का घाटा निरतर बडा आकार लेता चला गया। वर्ष 1994 के दौरान चद सप्ताहों में ही सुरक्षित विदेशी मुद्रा भडार 25-26 अरब डालर से लुढक कर साढे छह अरब डालर हो गया।

जब हम मुद्रास्फीति पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि 1985 से 1993 तक मैक्सिको की मुद्रास्फीति की औसत दर 45 प्रतिशत रही जो कमर तोड़ देने वाली थी। इसके विपरीत भारत में यह दर 17 प्रतिशत से नीचे उतर कर नौ और दस प्रतिशत के बीच चलती रही और अब यह आठ प्रतिशत के आसपास है। फिर भारत में मुद्रास्फीति का एक बडा कारण पिछले कई वर्षों से किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाना रहा है। आबादी के एक बडे भाग किसानों को रबी और खरीफ फसलों की उपज बढ़ाने

के लिए प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सरकार प्रति मौसम विभिन्न उत्पादों के अधिकाधिक मूल्य निर्धारित करती चली आ रही है। बुनियादी उपभोक्ता वस्तु की इस मूल्य वृद्धि का प्रभाव अन्य वस्तुओं के मूल्यों पर पडना स्वाभाविक है। अक्सर यह कहा जाता है कि भारत पर विदेशी कर्ज 1980 के लगभग 24 अरब डालर से बढकर 92 अरब डालर तक पहुच गया है अर्थात् साढे तीन गुना से भी अधिक हो गया है। विकासशील देशों में ब्राजील और मैक्सिको के बाद भारत तीसरा सबसे बडा कर्जदार देश बन गया है और यह कर्ज़ उसके वार्षिक सकल घरेलू उत्पाद के 37 प्रतिशत से भी अधिक हो चुका है। यह भी कहा जाता है कि अतर्राष्ट्रीय वित्तीय सगठनों से हमें जो सहायता मिलती है उससे अधिक राशि मूल रकम और ब्याज चुकाने में चली जाती है। लेकिन इस संदर्भ में इस बात को नजरअदाज कर दिया जाता है कि इसमें से काफी राशि जुलाई 1991 से पहले उधार ली गई थी और अब उसे चुकाना पड रहा है। दूसरे,इस सदर्भ में देखने की बात यह है कि भारत की ऋण भार चुकाने की क्षमता कितनी हो गई है। इस कसौटी पर भारत को कसने पर हम पाते हैं कि पिछला और वर्तमान कर्ज चुकाने की उसकी ताकत एव क्षमता निरतर बढती जा रही है। विश्व बैंक ने भी दबी आवाज में कहा है कि भारत के ऋण फदे में फसने की आशका नहीं है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार भारत पर 1993 में 92 अरब डालर का कर्ज चढ चुका था,जबकि मैक्सिको 118 अरब डालर के कर्ज में काफी गहरा डूब चुका था। अगर भारत पिछला कर्ज चुकाए बिना 26 अरब डालर का कर्ज और ले ले,तभी यह मैक्सिको की इस लक्ष्मण रेखा को पार करने का खतरा मोल लेगा। लेकिन देश पर विदेशी ऋण का बोझ इस समय पहले से अधिक आसानी से उठाया और उतारा जा रहा है। 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में विदेशी ऋण की राशि प्रतिवर्ष छह अरब डालर की औसत से बढती चली जा रही थी। लेकिन अब ऋण-वृद्धि की दर एक अरब डालर से भी नीचे चली गई है। इधर कुछ किस्तें तो हमने समय से पहले चुका दी हैं। सबसे बढकर 1985 से 1993 तक की अवधि में मैक्सिको के विदेशी ऋणों के भुगतान की दर लगभग 45 प्रतिशत थी तो भारत में यह उससे 15 प्रतिशत कम अर्थात् 30 प्रतिशत से भी नीचे रही है। इतना ही नहीं, कुल ऋण में अल्पकालिक ऋण का प्रतिशत नाटकीय ढग से बहुत कम को गया है जो वित्तीय स्वास्थ्य के लिए एक शुभ सकेत है। अब हम दीर्घकालीन ऋणों का या फिर विश्व बैंक से सम्बद्ध अतर्राष्ट्रीय विकास एसोसिएशन से प्राप्त आसान शर्तों वाले कर्जे का सहारा लेकर ऋण भार कम करने की सही दिशा में बढ रहे हैं। जहा तक प्रतिव्यक्ति वास्तविक राष्ट्रीय आय का सबध है इस अवधि में यह भारत में तीन प्रतिशत की वार्षिक दर से बढी है। इस वर्ष तो राष्ट्रीय आय लगभग 5.5 प्रतिशत बढ जाने की आशा है। इसकी तुलना में मैक्सिको में वृद्धि दर बहुत कम यानि 0 90 प्रतिशत रही। भारत में औद्योगिक उत्पादन में भी कम-से-कम 5.5 प्रतिशत बढोतरी से उसके 12 से 13 प्रतिशत हो जाने की आशा है। निर्यात और आयात का अतर कम होता जा रहा है। निर्यात में 27 प्रतिशत की वृद्धि एक महत्त्वपूर्ण धारणा है। कृषि उत्पादन में तो हम कीर्तिमान पर कीर्तिमान

स्थापित करते चले जा रहे हैं। 1994-95 में सभी क्षेत्रों में वृद्धि के कारण वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद 6.2 प्रतिशत बढ गया। 1993-94 में इससे कम अर्थात् 5.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। मैक्सिको के चालू खाते का घाटा सकल घरेलू उत्पाद का आठ प्रतिशत था, जबकि भारत में यह घाटा निरंतर घटता जा रहा है। 1990-91 में यह घाटा सकल घरेलू उत्पाद का तीन प्रतिशत से कुछ अधिक था, जो इस वर्ष एक प्रतिशत से भी नीचे चला गया है। मैक्सिको ने अपनी बाहरी अर्थव्यवस्था को पूरी तरह उदारीकृत बना दिया है, जबकि भारत ने उपभोक्ता वस्तुओं के आयात तथा रुपये की विनिमय दर के नियमन का प्रयास किया है। देखा जाए तो यहा मशीनों और औद्योगिक कच्चे माल को छोड अन्य वस्तुओं का आयात एक तरह से बंद है, इसीलिए अनेक मचों से विकसित देश तथा अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठन हमसे आयात के नए नए दरवाजे खोलने का आग्रह करते हैं। रही बात हमारी मुद्रा रुपये की, तो अभी पिछले दिनों जब डालर की तुलना में इसके मूल्य में कुछ गिरावट आई तो रिजर्व बैंक ने हस्तक्षेप कर उसकी स्थिति फिर मजबूत कर दी। मुक्त बाजारीकरण की तरफ कदम बढाने का मतलब यह नहीं कि भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका समाप्त हो गई है और स्थिति गंभीर होने अथवा संकट उत्पन्न होने पर वह दखल न दे। भारतीय मुद्रा रुपये को गिरने से बचाना तो उसका परमावश्यक कार्य है। इस सब को देखते हुए ही कहा जाता है कि मैक्सिको का पिछला दशक खोए, लुटे और उजडे विकास का दशक रहा। लेकिन भारत के आर्थिक सुधारों ने एक वर्ष के अंदर ही संकट को पार करते हुए विकास कार्यों को सफलतापूर्वक पुनर्जीवित कर उनमें प्राण फूंक दिए।

तो भी मैक्सिको के घटना चक्र ने कुछ सीख और चेतावनी दी है। उसकी अर्थव्यवस्था टूटने से पहले भारत की वर्तमान अर्थव्यवस्था से बेहतर थी। उसकी विकास दर और निर्यात दोनों अधिक थे, लेकिन सावधानी न बरतने के कारण उसे दुर्दिन देखना पडा तथा उसके यहा विदेशी पूंजी प्रवाह की धारा सूखती चली गई। उसके आर्थिक परिदृश्य ने यह भी उजागर कर दिया है कि मुद्रास्फीति, महगाई और गरीबी के बे लगाम बढते आकार को समय पर यथोचित तराश कर छोटा कर देना चाहिए, वरना लम्बे समय से खाये जा रहे लंच का बिल चुकाने पर होश ठिकाने लग जाते हैं। तब विदेशी मुद्रा भंडार की सुखद स्थिति एक झूठा दिलासा और भ्रामक तसल्ली साबित होगी। अमरीका ने मैक्सिको को कुए में गिरने से बचा लिया, लेकिन हमें ऐसी स्थिति बचाने के लिए आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कोई भी देश नहीं। अमरीका नहीं चाहता था कि उसकी सीमा पर सकट से घिरा कोई अर्थ तंत्र हो और वह भी मैक्सिको जो उत्तर एटलांटिक मुक्त व्यापार क्षेत्र, 'नाफ्टा' का सदस्य है, इसलिए भारत को अपने विदेशी मुद्रा भंडार के लिए विदेशी उधार और पोर्टफोलियो पूंजी निवेश पर अधिक निर्भर नहीं करना चाहिए। दूसरे, उसका विदेशी मुद्रा भंडार तभी मजबूत माना जायेगा जब उसका निर्यात आयात से अधिक होगा तथा उसके व्यापार के अनुकूल संतुलन होगा। □

8

भारत में जनजातियां : समस्या एवं समाधान

मनोज कुमार द्विवेदी

भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों के अनुयायी हैं, इसीलिए इसे अनेकता में एकता का देश कहा जाता है। अनादिकाल से ही यहां के वन्य तथा पर्वतीय क्षेत्रों के एकांत व निर्जन स्थलों में खुले आसमान के नीचे, घास फूस की झोंपड़ियों व छप्परों में रहने तथा जंगली खाद्य पदार्थों का सेवन करने वाले आदिम समूहों का निवास रहा है। ये समूह अपने पौराणिक परिवेश तथा संस्कृति के अनुरूप ही जीवन यापन करते हैं। इन्ही समूहों को विकसित लोगों ने आदिवासी, जनजाति, वन्य जाति तथा वनवासी आदि नाम दिए हैं।

भारत में लगभग 300 प्रकार की जन जातियां पायी जाती हैं जिनमें भील, गौंड और संथाल ऐसी जनजातियां हैं जिनकी जनसंख्या 40 लाख से भी अधिक है। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार मध्य प्रदेश भारत का सबसे बड़ा जनजातीय राज्य है। जहां पर मुख्यतः पाण्डों, कोरबा, मुण्डा, कोल, गौंड तथा भील आदि जनजातियां पायी जाती हैं। इसके बाद उड़ीसा का क्रम आता है जहां मुख्यतः कोल और गौंड जनजातियां पायी जाती हैं। तीसरा स्थान बिहार का है जहां मुख्यतः कोरवा, बैंगा, गौंड, हो, मुण्डा व संथाल आदि जनजातियां पायी जाती हैं तथा इसके बाद आंध्र प्रदेश, गुजरात, राजस्थान और महाराष्ट्र का स्थान है जहां चेचू, गदवा, भील, डुबिया, गौंड, मीणा और भीलों के उपवर्ग की जनजातियां निवास करती हैं।

विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट है कि भारत में जनजातीय गणना का कार्य सर्वप्रथम स्वतंत्रता पूर्व 1881 में किया गया था किन्तु कतिपय अनियमितताओं के कारण सही आकलन नहीं हो पाया। 1931 से जनगणना का कार्य स्थायी रूप से प्रारम्भ हुआ किन्तु 1951 में भारत पाक विभाजन के कारण इसमें बाधा आई। 1961 से 1991 तक की जनगणनाओं में आदिवासियों की संख्या में लगातार वृद्धि देखी गयी। इससे स्पष्ट है कि देश की बढ़ती आबादी में इनकी वृद्धि दर की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है जैसा कि तालिका 1 से स्पष्ट है।

तालिका 1

भारत में जनजातीय जनसख्या, 1961-91

वर्ष	कुल जनसख्या (करोड़ में)	जनजातीय जनसख्या (करोड़ में)	कुल जनसख्या का प्रतिशत
1961	43 91	3 01	6 87
1971	54 80	3.80	6 93
1981	68.33	5 26	7 69
1991	84 39	6.55	7 76

सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति

आजादी के 48 वर्ष बाद भी भारत में जनजातियों की सामाजिक एव सास्कृतिक स्थिति यथावत है। इनकी मानसिकता रूढिवादिता, अधविश्वास तथा पूर्वाग्रहों से इतनी ग्रसित है कि ये उसके साथ किसी भी प्रकार का समझौता स्वीकार नही करते। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि स्थानीय भाषागत अवरोध आदिवासियों में शिक्षा एव जागरूकता के अभाव होने में अहम् भूमिका रखता है। अधिकाशत ये लोग अपनी समस्याओं का निदान आपसी प्रेम, सौहार्द तथा सहभागिता से स्थानीय स्तर पर ही कर लेते हैं।

आदिवासियों के मकान मिट्टी की दीवाल, घास-फूस, बास-बल्ली के छप्परों, जगली झाड-फूस के दरवाजों से बने होते हैं, इन्ही छप्परों में ये रहते हैं, खाते हैं, सोते हैं और जानवरों को भी रखते हैं। इन छप्परों में रहने वाले अधनगे, भूखे, दीन-हीन तथा गरीबी से जूझते ये आदिवासी अधिकाशत अपने परिवार के पेट की ज्वाला शात करने के लिए मजदूरी, मेहनत व जगलों का सहारा लेकर मामूली आय से परिवार को बमुश्किल दो वक्त की रोटी दे पाते हैं।

भारतीय जनजातीय-समाज अपने सामाजिक, सास्कृतिक रूढियों, अज्ञानताओं से इतने बधे होते हैं कि बीमारियों से बचने व ठीक होने के लिये अस्पतालों की शरण न लेकर अपने देवी देवता की पूजा-अर्चना में विश्वास रखकर उनकी शरण लेते हैं तथा आराध्य देव का आह्वान अपने रक्त तथा बकरे व मुर्गे की बलि देकर बडी धूमधाम से स्थानीय वाद्य यत्रों एव महिलाओं-पुरुषों के सामूहिक नाच-गानों के बीच करते हैं। जनजातीय महिलाओं में पर्दा प्रथा न के बराबर है और दैनिक पारिवारिक दायित्वों तथा दिनचर्या के उपरान्त नि सकोच पुरुषों के साथ बराबरी से कडी मेहनत, परिश्रम व धनार्जन करती हैं। जनजातीय महिलाओं को कहीं भी मेलों, मदिरों तथा अन्य कार्यों हेतु जाने में रोक नहीं होती, ये पुरुषों की भाति स्वतत्र होती हैं। इनके यहा पुत्री-जन्म पर खुशिया मनाई जाती हैं। महिलाओं में जेवर आदि पहनने का शौक भी बहुत होता है जिसे वे अपनी आय के अनुसार पहनती हैं।

आर्थिक स्थिति

भारत के वन्य एव पहाडी क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय है कि स्वयसेवी सस्थाओं एव शासन द्वारा करोडों रुपये व्यय करने के बावजूद आज भी इनका शोषण बरकरार है। शासन द्वारा पट्टे के रूप में दी गई भूमि में परिवार के सभी सदस्यों द्वारा कडी मेहनत व कठिन परिश्रम करने के बाद भी उत्पादन का अल्प भाग ही मिल पाता है क्योंकि इनकी जमीनों पर अधिकाशत स्थानीय सम्पन्न व दबग व्यक्तियों का कब्जा रहता है और अपनी ही जमीन में मजदूरी करके ये प्रतिदिन 15-20 रुपये कमाते हैं।

आदिवासियों की आय वृद्धि के मुख्य स्रोत के रूप में वनों से लकडी काटना, फलों फूलों व जडी-बूटियों को लाकर सुखाना विपणन व्यवस्था के अभाव के कारण इन्हें बिचौलियों व तस्करों को अत्यन्त सस्ती दर पर बेचना पडता है। ठेकेदार आदि बिचौलियों व तस्करों से मिलकर आदिवासियों की आड में वन्य सम्पत्ति का सफाया कर लाखों कमा रहे हैं जबकि आदिवासी हरे वृक्ष की डाली व सूखी लकडियों को ही काटकर लाते हैं जिससे मूल वृक्ष सुरक्षित रहता है और फलता फूलता है। इसके अलावा ये वनवासी अपनी आय को बढाने के लिए पशुधन, कृषि, मजदूरी व अन्य व्यवसायों में कडी मेहनत करते हैं। इसके बाद भी आज इनकी आर्थिक स्थिति यथावत् है।

समस्याए

भारतीय जनजातीय समाज वर्तमान में विभिन्न प्रकार की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से ग्रसित है जो मुख्यत इस प्रकार हैं

1 अशिक्षा जो रूढिवादिता, अज्ञानता, परम्पराओं में अध विश्वास के कारण इन्हें आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के ग्रहण करने से रोकती है तथा सरकार द्वारा सरकारी सेवाओं में निर्धारित आरक्षण सुविधा का लाभ उठाने से भी वचित रखती है,

2 निर्धनता जिसके कारण ये कुपोषण, ऋणग्रस्तता, अत्याचार व शोषण के शिकार हैं,

3 जनसख्या वृद्धि एव आवासीय समस्या,

4 वनों तथा वन्य उपजों पर नियत्रण से आय में भारी कमी,

5 कृषि हेतु उपजाऊ भूमि व सिंचाई व्यवस्था न होना,

6 विकास योजनाओं में सहभागिता का अभाव,

7 सरकारी सुविधाओं, अधिकारों व प्रबध सूचना प्रणाली की अनभिज्ञता,

8 सरकार द्वारा आवटित भूमि पर स्थानीय सम्पन्न व दबग वर्ग का अधिकार,

9 मदिरा पान, रीति रिवाजों, रूढियों तथा अध विश्वासों को दूर करने हेतु अनुकूल

अभिप्रेरणा की कमी,

10 शासकीय अधिकारियों/कर्मचारियों की कर्तव्य के प्रति उदासीनता,

11 विपणन एव यातायात का अभाव।

शासकीय प्रयास

स्वतत्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने योजना आयोग की सिफारिश पर जनजातीय विकास के लिए योजनाए एव उपयोजनाए बनाईं तथा इन्हें सरकारी व गैर-सरकारी सस्थाओं के माध्यम से लागू किया। सरकार द्वारा जनजातीय विकास के लिए करोडों रुपये विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं एव उपयोजनाओं में व्यय किए गए। इन योजनाओं व उपयोजनाओं के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, आवास, पशुपालन एव आर्थिक उन्नयन पर विशेष बल दिया गया तथा जनजातीय विकास हेतु आदिम जाति कल्याण विभाग की स्थापना भी की गयी। इसका उद्देश्य भूमि हस्तातरण, साहूकारी, वन आदि क्षेत्रों को शोषणमुक्त कर पर्यावरण एव स्वच्छता में सुधार करना था। जनजातियों की शिक्षा में सुधार हेतु स्थानीय स्तर पर ही छात्रवृत्ति युक्त स्कूलों की स्थापना, स्वास्थ्य सेवाओं हेतु अस्पताल एव तस्करों तथा ठेकेदारों से बचाने हेतु विपणन सुविधाओं के लिये जनजातीय सहकारी विपणन विकास सघों की स्थापना तथा वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कम दर पर ब्याज से ऋण दिलाने के लिए सार्वजनिक बैंकों की स्थापना भी प्रमुख लक्ष्य था।

तालिका 2

जनजातीय विकास हेतु विभिन्न योजनाओ मे व्यय राशि

पचवर्षीय योजना	वर्ष	व्यय राशि (करोड रुपय)
प्रथम	1951 56	19 83
द्वितीय	1956-61	42.92
तृतीय	1961-66	51 05
उपयोजना	1966-69	68.50
चतुर्थ	1969 74	166.34
पाचवीं	1974-79-80	489.35
छठी	1980-85	470 00
सातवीं	1985-89	1500 00

अभी हाल ही में वर्ष 1995 96 के बजट में गरीबों की आवासीय समस्या को दूर करने हेतु इदिरा आवास योजना के तहत वर्ष 1994-95 में चार लाख मकान निर्मित कराने के लक्ष्य को बढाकर 10 लाख कर दिया गया है। इसी प्रकार 65 वर्ष से ऊपर वृद्ध गरीबों हेतु 75 रुपये प्रतिमाह पेंशन दिये जाने का प्रावधान किया गया है।

गर्भवती महिलाओं को पौष्टिक आहार एव स्कूली बच्चों को दोपहर का भोजन दिए

जाने की योजना भी प्रारभ की गयी है। वर्ष 1995-96 के बजट के अनुसार जनजातीय बाहुल्य एक सौ जिलों में राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, नाबार्ड अनुसूचित जनजातियों की कर्ज की जरूरतों को पूरा करने के लिए सहकारी व क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को 400 करोड रुपये की ऋण राशि देगा। केन्द्र सरकार सहित राज्य सरकारें व स्वयसेवी सस्थाए भी जनजातीय विकास के पुनीत कार्य में लगी हैं।

समाधान हेतु सुझाव

प्रथम पचवर्षीय योजना से आज तक शासन द्वारा करोडों रुपये व्यय किये गये फिर भी ये लोग अशिक्षा, दारिद्र्य एव सामाजिक कुरीतियों से ग्रसित हैं। इसलिए प्रश्न उठता है कि क्या केवल इनकी समस्याए आर्थिक प्रयासों से सुलझायी जा सकती हैं। अगर ऐसा होता तो एक भी जनजातीय परिवार समस्याओं से जूझते हुए पाया नहीं जाता। आखिर ऐसा कौन सा कारण है कि आज तक शासकीय व अशासकीय तत्र इनके साथ समरसता स्थापित करने में असमर्थ रहा है। हमारे देश में जनजातीय विकास योजना की रूपरेखा एव क्रियान्वयन में इनकी सास्कृतिक महत्ता पर ध्यान नहीं दिया गया जिससे सहभागितापूर्वक स्वीकार्यता का अत्यधिक अभाव रहा है।

विकास तो हर मानव की आवश्यकता है और वह इसे प्राप्त भी करना चाहता है। वर्तमान भौतिकवादी युग में बहुत से जनजातीय परिवार ऐसे हैं जिन्होंने वर्तमान आधुनिक समाज से अभिप्रेरित होकर अपनी सास्कृतिक रूढिवादिता, धर्मान्धता, भाग्यवादिता व अकर्मण्यता को तिलाजलि देकर शिक्षा की महत्ता को समझा। देश की कुल आबादी का 7 76 प्रतिशत जनजातीय आबादी का बहुत बडा भाग आज भी गरीबी के आसू बहा रहा है। अत विकास योजनाओं एव क्रियान्वयन में इनकी सास्कृतिक महत्ता एव सहभागिता को सुनिश्चित करना हमारी अनिवार्यता है। ऐसी योजना को कार्य रूप देने हेतु निम्न मुख्य विकास बिन्दुओं पर ध्यान देना होगा

1 जनजातीय समाज में व्याप्त रूढिवादिता, अध विश्वास एव अज्ञानता को दूर करने के लिए ऐसी शिक्षा पद्धति का विकास किया जाना चाहिए जो इनकी मूल सस्कृति के अनुरूप हो तथा रोजगार एव आय वृद्धि में सहायक हो,

2 आर्थिक स्थिति को सुदृढ बनाने हेतु स्थानीय स्तर पर वन्य एव पहाडी क्षेत्रों में पाये जाने वाले ससाधनों व कच्चे पदार्थों पर आधारित परम्परागत व्यवसायों को विकसित करने के लिए कुशल, अनुभवी तथा जनजातीय समस्याओं से परिचित प्रशिक्षकों द्वारा समुचित प्रशिक्षण कार्यक्रम सचालित किये जाने चाहिए,

3 स्थानीय स्तर पर समस्त विपणन सुविधाओं हेतु समुचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए ताकि लोग बिचौलियों का सहारा न लेकर उचित कीमत प्राप्त कर सकें,

4 आवटित भूमि पर कब्जा दिलाने तथा कृषि से सबधित समस्त सुविधाए प्रदान

कराने हेतु सक्षम, ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए,

5 प्रत्येक माह में एक बार दृश्य-श्रव्य माध्यमों द्वारा प्रत्येक जनजातीय क्षेत्र में शासकीय नीतियों, जनजातीय सुविधाओं तथा अधिकारों के प्रति जागरूकता की भावना विकसित की जानी चाहिए,

6 वन्य उपजों के उपभोग हेतु आवश्यक कानून एव शर्तों के अधीन स्वतत्रता प्रदान की जानी चाहिए,

7 आवासीय तथा पशुपालन सबधी सुविधाए सर्वप्रथम आदिवासी क्षेत्रों में ईमानदारी से प्रारम्भ की जानी चाहिए,

8 बालकों/बालिकाओं को बाल श्रम से अधिक वृतिका देकर शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित किया जाना चाहिए,

9 उचित पोषाहार, पर्यावरण, स्वच्छता तथा पेयजल आपूर्ति सबधी सुविधाए शीघ्र प्रदान की जानी चाहिए,

10 महिलाओं व पुरुषों में बढती मद्यपान सबधी प्रवृत्तियों को रोकने हेतु विभिन्न सचार माध्यमों का प्रयोग निरन्तर करना चाहिए।

11 जनसख्या नियत्रण हेतु परिवार नियोजन के प्रति स्थानीय स्तर पर अधिक जागरूकता पैदा करनी चाहिए,

12. सरकार द्वारा नियोजित कार्यक्रमों व सुविधाओं को शीघ्र तथा ईमानदारी से लाभार्थियों तक पहुचाने हेतु सक्षम अधिकारियों द्वारा समय समय पर मानीटरिंग व मूल्याकन किया जाना चाहिए,

13 आदिवासी क्षेत्रों में कार्यरत स्वयसेवी सस्थाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

जनजातीय विकास की समस्या हमारे समाज का अभिशाप बनकर रह गई है। अत सरकार को इन क्षेत्रों में अपनी समस्त योजनाओं को लाभार्थी वर्ग तक पहुचाने में प्रशासनिक अधिकारियों/कर्मचारियों के प्रति जागरूक रहना होगा ताकि ये आदिवासी हमारी विकसित राष्ट्र धारा से जुड सकें तथा भारतीय समाज को विकास के मार्ग में ले जाने में सहायक सिद्ध हो सकें। □

9

भारतीय पर्यटन उद्योग

अरुण शर्मा

विभिन्न औद्योगिक गतिविधियों में पर्यटन उद्योग का अपना अलग एव विशिष्ट महत्व है। प्रदूषण रहित यह उद्योग रोजगार के अवसर जुटाने तथा विदेशी मुद्रा के अर्जन के सम्बन्ध में अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। वर्ल्ड ट्रेवल्स एण्ड टूरिज्म कौन्सिल, ब्रुसेल्स के अनुसार 1995 में पर्यटन उद्योग का अशदान विश्व के कुल राष्ट्रीय उत्पाद (जी एन पी) का 10 9 प्रतिशत होगा तथा यह उद्योग 21 2 करोड व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करेगा। 2005 तक यह सख्या बढकर 33 8 करोड हो जायेगी, जो कुल रोजगार का 10 प्रतिशत होगी, अर्थात् अगली शताब्दी में प्रत्येक 10 व्यक्तियों में से एक व्यक्ति पर्यटन से रोजगार प्राप्त करने वाला होगा।

पर्यटन के रोजगार के महत्त्व को इस रूप मे भी समझा जा सकता है कि किसी उत्पादन उद्योग में 10 लाख रुपए विनियोजित करके हम 12 व्यक्तियों को रोजगार के अवसर जुटाते हैं, जबकि पर्यटन के क्षेत्र में इतनी ही राशि विनियोजित कर हम 88 व्यक्तियों को रोजगार प्रदान कर सकते हैं। जहा तक विदेशी मुद्रा के अर्जन का प्रश्न है, भारत ने 1994-95 में पर्यटन के माध्यम से 7,374 करोड रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित की। विदेशी मुद्रा की दृष्टि से पर्यटन तीसरा स्थान रखता है, लेकिन पर्यटन के बढते महत्त्व को देखते हुए अगले दो वर्षों में ही इसे दूसरा स्थान प्राप्त होने की सभावना है तथा सन् 2000 तक 10 हजार करोड रुपए के बराबर विदेशी मुद्रा के अर्जन का लक्ष्य भी काफी पहले अर्थात् 1997 में ही पूरा होने की उम्मीद है। आज विश्व के अनेक छोटे-बडे राष्ट्र मात्र पर्यटन के आधार पर ही अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में सक्षम हो पाये हैं। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में पर्यटन का महत्त्व बढता जा रहा है।

भारत पर्यटन की दृष्टि से एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण राष्ट्र माना जा सकता है। भारत की सुदृढ सस्कृति, अनूठी कला, गौरवमय इतिहास, यहा की स्वस्थ परम्पराए, भौगोलिक विविधताए आदि पर्यटकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने की पूरी क्षमता रखते हैं। पर्यटकों को देने की दृष्टि से हमारे देश में इतनी अधिक क्षमता है जिसकी एक पर्यटक कल्पना भी नहीं कर सकता है। हिमालय की बर्फ से ढकी पर्वत मालाए, थार के

तपते हुए रेगिस्तान, शाव एव हजारों मीलों तक फैला विशाल समुद्रतट इन सभी का सगम भारत में ही सभव है। ताजमहल, कुतुबमीनार, अजन्ता-एलोरा जैसे अनेक कला व कारीगरों से भरपूर स्मारक, किले एव मन्दिर इत्यादि हमारा गौरवमय इतिहास दर्शाने में सक्षम हैं। रामायण एव गीता के सस्कारों वाली यह धरती जिसने जैन व बौद्ध जैसे धर्मों को जन्म दिया है निश्चित रूप से सास्कृतिक रूप से भी बहुत अधिक धनाढ्य है। इसके अतिरिक्त तीज त्यौहारों, सगीत एव नृत्य से जुडे लोगों की जीवन-शैली हमारी स्वस्थ परम्परा को दर्शाती है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि इतना सब कुछ होने के बावजूद हम पर्यटन को उन ऊचाइयों पर नहीं पहुचा पाये, जहा हम पहुचने की क्षमता रखते हैं। इतनी अधिक पर्यटन क्षमताए रखने वाला भारत पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विश्व के प्रमुख 20 राष्ट्रों में भी अपना स्थान नहीं रखता है। विश्व के अनेक छोटे राष्ट्र जैसे टर्की, थाइलैण्ड, हागकाग, सिंगापुर, मलेशिया इस दृष्टि से भारत से कहीं आगे हैं। यदि भारत आने वाले विदेशी पर्यटकों की सख्या पर दृष्टिपात करें तो निम्न आकडे भी उत्साहवर्धक नहीं माने जा सकते हैं—

वर्ष	लक्ष्य	वास्तविक पर्यटक आगमन
1992 93	19 लाख	18 लाख
1993-94	20 लाख	18 लाख
1994 95	22 लाख	19 लाख

इस प्रकार उपरोक्त आकडे दर्शाते हैं कि भारत में पर्यटक आगमन में लगभग 4 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। जबकि एशिया के ही अन्य राष्ट्रों में वृद्धि की यह दर 15 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक है। इस प्रकार सन् 2000 तक 50 लाख पर्यटकों का लक्ष्य भी सन्देहात्मक प्रतीत होता है। भारत में पर्यटन का धीमी गति से विकास यह दर्शाता है कि अभी तक भी हम पर्यटन के महत्त्व को पूरी तरह से समझने में असफल रहे हैं, इसी कारण से इस क्षेत्र में आने वाली विभिन्न बाधाओं को तत्परता से दूर नहीं किया जा सकता है।

भारतीय पर्यटन उद्योग की प्रमुख बाधाए

आज भारतीय पर्यटन उद्योग विभिन्न बाधाओं से ग्रसित है। पर्यटन से सम्बन्धित आधारभूत ढाचे जैसे होटल, ट्रासपोर्टेशन का पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाया है। इसके अतिरिक्त पर्यटन केन्द्रों पर आवश्यक सुविधाओं का अभाव है। सर्वप्रथम होटल अथवा ठहरने की सुविधा को लें। विगत वर्ष अनेक बडे टूर आपरेटरों को भारत पर्यटन का कार्यक्रम मात्र इस आधार पर रद्द करना पडा कि यहा ठहरने के लिए होटलों की कमी है। निम्न सारणी भारत व एशिया के कुछ अन्य राष्ट्रों में कमरों की उपलब्धता को दर्शाती है—

राष्ट्र	कमरों की उपलब्धता
सिंगापुर	27 029
मलेशिया	61 005
थाईलैण्ड	2 12,387
भारत	49 068

भारत में महानगरों में कमरों की उपलब्धता निम्न प्रकार है—

शहर	कमरों की उपलब्धता
दिल्ली	6 722
बम्बई	8 638
मद्रास	4 111
कलकत्ता	2 152

एक अनुमान के अनुसार भारत में लगभग 45 000 कमरों की और आवश्यकता है। विगत दो तीन वर्षो में एक नया आयाम और विकसित हुआ है जिसके कारण होटलों की कमी बहुत अधिक अनुभव की जाने लगी है। उदारीकरण एव मुक्त व्यापार के इस युग में अपनी व्यापारिक गतिविधियों के कारण भारत आने वाले व्यापारिक पर्यटकों की सख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। इस कारण से पर्यटन की दृष्टि से खाली समझे जाने वाले समय (अप्रैल से सितम्बर) में भी होटलों में कमरों की उपलब्धता नही रहती है। फलस्वरूप परम्परागत पर्यटकों द्वारा पहले से आरक्षण के बावजूद उन्हें ठहरने का उचित स्थान प्राप्त नहीं हो पाता है। महानगरों में स्थित बडे बडे होटल भी परम्परागत पर्यटकों के स्थान पर व्यापारिक पर्यटकों को अधिक महत्त्व देने लगे हैं। इसी नये आयाम के कारण होटल मालिकों एव टूर आपरेटरों तथा ट्रेवल ऐजेन्टों से समन्वय में बाधा उत्पन्न होने लगती है। होटल मालिक होटलों की कमी के कारण व्यापारिक पर्यटकों से अधिक-से अधिक राशि वसूलने की प्रवृत्ति रखते हैं, फलस्वरूप वह टूर आपरेटरों एव एजेन्सी को अग्रिम रूप में किराया आदि बताने में विशेष रुचि नही लेते हैं। इस कारण टूर आपरेटर एव ट्रैवल एजेन्सियों को अग्रिम बुकिंग करने में कठिनाई का सामना करना पडता है। कई बार बताई गयी दर में परिवर्तन भी विषय परिस्थिति उत्पन्न कर देता है। इन सभी बातों से विदेशी पर्यटकों के मन में भारत के प्रति एक गलत प्रभाव पडता है।

भारतीय पर्यटन उद्योग में ट्रासपोर्टेशन अथवा यातायात दूसरी प्रमुख समस्या है। पर्यटन की दृष्टि से वायु रेल तथा सडक परिवहन किसी की भी सेवाए सतोषजनक नही मानी जा सकती हैं। प्रमुख पर्यटन स्थलों का वायुमार्ग से जुडा न होना, गतव्य स्थानों के लिये सीमित उडानें, हवाई अड्डों पर सुरक्षा व अन्य कारणों से लगने वाला समय, निर्धारित समय से देरी से उडान आदि प्रमुख समस्याओं का आये दिन पर्यटकों को सामना करना पडता है। रेलों में अत्यधिक भीड भाड, आरक्षण में असुविधा, रेलों का देरी से चलना रेलों में आरामदायक सफर का अभाव आदि अनेक समस्यायें पर्यटकों पर एक प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। इसी प्रकार सडकों का खराब रख रखाव आरामदायक

बसों व कारों का अभाव द्रुतगामी सेवाओं का अभाव आदि सडक मार्ग की प्रमुख समस्यायें हैं जिनका एक आम पर्यटक को सामना करना पडता है। इस प्रकार हमारी यातायात व्यवस्था पर्यटन की दृष्टि से अनुकूल नहीं मानी जा सकती है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक अनगिनत समस्याए हैं जो पर्यटकों के मन में एक खीझ उत्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिये होटल में रुचिकर भोजन का न मिलना, होटल में आवश्यक सुविधाओं का अभाव, पर्यटन स्थलों पर व्याप्त गदगी व दूषित वातावरण, योग्य एव अनुभवी गाइडों का अभाव, ट्रैवल एजेन्टों अथवा गाइडों द्वारा पर्यटकों को ठगने की प्रवृत्ति, विदेशी-मुद्रा परिवर्तन में कठिनाई आदि अनेक समस्यायें हैं जिन पर अविलम्ब चिंतन कर इनके समाधान की आवश्यकता है।

नवीनतम प्रयास एव सुझाव

पर्यटन के बढते महत्त्व को देखते हुए इसकी समस्याओं के अविलम्ब समाधान हेतु पर्यटन मत्रालय द्वारा अनेक प्रयास किये जा रहे हैं, जिसके निकट भविष्य में अच्छे परिणाम प्राप्त होने की सभावना है। होटलों की कमी को देखते हुए निजी उद्यमियों की भागीदारी से नये होटलों के निर्माण पर बल दिया जा रहा है। इस सम्बन्ध में अनेक विदेशी होटल शृखलाओं व अप्रवासी भारतीयों के साथ मिलकर युद्ध स्तर पर होटल निर्माण के कार्य को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

यातायात व्यवस्था में सुधार की दृष्टि से हवाई अड्डों के विस्तार और आधुनिकीकरण, विमान सेवाओं की सख्या में वृद्धि, सडक और रेल परिवहन के विस्तार के सम्बन्ध में अनेक नीतिगत निर्णय लिये गये हैं। पर्यटन मत्रालय के अनुसार जून 1996 तक देश में 20 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के हवाई अड्डे तैयार करने का प्रावधान है। विमान सेवाओं के विस्तार की दृष्टि से सरकार ने निजी विमान कम्पनियों को भी आन्तरिक उडान की अनुमति प्रदान की है। इसके अतिरिक्त चार्टर विमान सेवा भी देश में आरभ की गयी। वर्ष 1994 में भारत में 980 चार्टर उडानें आयीं जबकि 1993 में यह सख्या 605 उडानें थी। एक अनुमान के अनुसार इन अतिरिक्त प्रयासों एव विदेशी कम्पनियों को अधिक उडानों की अनुमति देने से साल भर में 12 लाख अतिरिक्त सीटें उपलब्ध होंगी।

विदेशों में भारत की छवि को नये रूप से प्रदर्शित करने के सम्बन्ध में भी हाल में विदेशी टूर आपरेटरों के साथ मिलकर पर्यटन मत्रालय ने अनेक निर्णय लिये हैं। भारत की छवि एक अत्यधिक 'वहन करने योग्य गतव्य स्थान' के रूप में प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। एक निर्धारित बजट में एक विदेशी पर्यटक जहा यूरोप में मात्र 6 दिन व्यतीत कर सकता है वहीं इतने ही बजट में भारत में 12 दिन व्यतीत कर सकता है। इसके अतिरिक्त विदेशों में भारत के सम्बन्ध में प्लेग, मलेरिया, साम्प्रदायिक दगों आदि के सम्बन्ध में जो भ्रान्तिया व्याप्त हैं उन्हें भी प्रभावशाली ढग से दूर करने का प्रयास किया जा रहा है।

उपरोक्त प्रयासों के अतिरिक्त और भी अनेक सुझाव हो सकते हैं जो हमारे पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहित करने में कारगर साबित हो सकते हैं। आज भारत आने वाले 90 प्रतिशत पर्यटकों का आगमन दिल्ली अथवा बम्बई के माध्यम से होता है। इन दोनों ही शहरों में व्यापारिक पर्यटकों की भरमार रहने के कारण परम्परागत पर्यटकों को ठहरने की असुविधा रहती है। अत इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि भारत में नवीन प्रवेश द्वार विकसित किये जाए।

होटलों की कमी को देखते हुए हमें घरों में उपलब्ध अतिरिक्त कमरों के प्रयोग की योजना 'पेइंग गेस्ट' को और अधिक आकर्षक बनाना चाहिये। अनेक राष्ट्रों में यह योजना अत्यधिक लोकप्रिय साबित हो रही है।

'पैलेस ऑन व्हील्स' के समान निजी उद्यमियों एव रेल मत्रालय के सहयोग से अनेक रेलें चलाई जा सकती हैं। इससे जहा एक ओर पर्यटन स्थल का विकास होगा वहीं दूसरी ओर ठहरने की समस्या का भी समाधान हो सकेगा।

किसी पर्यटन स्थल के आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वहा के स्थानीय लोगों को भी पर्यटन से जोडा जाए। पर्यटन विकास के लिए स्थानीय ससाधनों का अधिकतम प्रयोग किया जाना चाहिये।

टूर आपरेटरों व गाइडों के द्वारा पर्यटकों को ठगने की प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए कारगर प्रयास की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में प्रमुख पर्यटन स्थलों पर पर्यटन मत्रालय द्वारा ऐसी दुकानों का सचालन किया जाना चाहिए जहा से पर्यटक खरीददारी आदि कर सकें।

पर्यटन क्योंकि राज्य के क्षेत्राधिकार के अतर्गत आने वाला विषय है अत इस सम्बन्ध में राज्य सरकारों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे पर्यटन को प्रोत्साहित करने के लिए विलासिता कर में कमी करेंगी। अनेक राज्यों में आज भी कुल बजट राशि का एक प्रतिशत से भी कम पर्यटन पर व्यय किया जाता है, अत इसमें भी वृद्धि की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

विगत तीन दशकों से तीव्र गति से पर्यटन उद्योग का महत्त्व बढ रहा है तथा आने वाले समय में यह विश्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्यम होगा। अत आवश्यकता इस बात की है कि हम इस उद्योग के महत्त्व को समझें। जहा तक पर्यटन की दृष्टि से भारत का प्रश्न है यह बात निसन्देह कही जा सकती है कि हमारे देश में पर्यटन विकास की व्यापक सभावनाए हैं। जरूरत मात्र इस बात की है कि हम इस उद्योग में आने वाली कठिनाइयों पर गभीरतापूर्वक विचार कर उन्हें दूर करने का प्रयास करें। आवश्यकता पर्यटन के सम्बन्ध में सही दिशा निर्देशन व नीति निर्माण की है, आवश्यकता 'पर्यटकों का स्वर्ग भारत' के सपने को साकार करने की है। □

महात्मा गांधी का सपना साकार हुआ

राजीव पंछी

भारत में पचायतें लोकतत्र की जननी रही हैं। यदि देखा जाए तो लगभग दो हजार वर्ष पूर्व पचायतों का वर्चस्व अपनी चरम मीमा पर था। परतु धीरे-धीरे इन सस्थाओं के कार्य-कलापों में विमगतिया आने लगीं और लोकतत्र की नीव पर बनी पचायतें वश धरोहर बनने लगीं। देश में पचायतों के प्रति विश्वाम के पतन का यही मुख्य कारण था।

स्वतत्रता के बाद हमारी सरकार ने इन्हें पुन मक्रिय और मशक्त बनाने के निरतर प्रयाम किए हैं। योजना आयोग ने 1957 मे बलवतराय मेहता समिति गठित की जिसकी मिफारिशों के आधार पर तत्कालीन प्रधानमत्री प जवाहरलाल नेहरू ने 2 अक्तूबर, 1959 को पचायती राज की तीन स्तरीय ढाचे की घोषणा की थी। परतु वित्तीय शक्तियों के अभाव में यह प्रणाली सार्थक न बन सकी। मन् 1978 में अशोक मेहता ममिति ने पचायतों की आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु कुछ सुझाव दिए जो अगीकार न हो मके।

लगभग 10 वर्ष बाद तत्कालीन प्रधानमत्री श्री राजीव गाधी ने एक बार फिर पचायतों को अस्तित्व में लाने और उन्हें सुदृढ बनाने का बीडा उठाया परतु उनके कार्यकाल में भी मविधान सशोधन पारित न किया जा मका। कॉग्रेस सरकार के मत्ता में आते ही प्रधानमत्री श्री पी वी नरसिम्ह राव के अथक प्रयामों का ही परिणाम रहा कि 73वा मविधान मशोधन अधिनियम लागू हो गया। देश के सभी राज्यों में पचायतों के चुनाव हुए और लोकतात्रिक ढग से चुनी हुई पचायतें अस्तित्व में आ गई हैं।

मविधान सशोधन के अनुरूप पचायतों को अधिकार दिया जाना, उन्हें निश्चित कार्यकलापों की जिम्मेदारी सौंपे जाना और इन कार्यों को पूरा करने के लिए उन्हें पैसा दिया जाना, उन्हें सुदृढ और सक्रिय बनाने के लिए नितात आवश्यक है अन्यथा पिछले तीन वर्षे से किए गए प्रयास भी पिछले प्रयासों की भाति निरर्थक हो जायेंगे। प्रधानमत्री ने यह जरूरी समझा कि इस सबध में देश के कोने-कोने से पचायतों के अध्यक्षों को राजधानी में बुलाया जाए, उनकी कठिनाइयों को सुना जाए, उन्हें उनके कर्तव्यों और अधिकारों की जानकारी दी जाए तथा उन्हें वित्तीय शक्तिया सौंपी जाए।

9 व 10 अक्तूबर, 1995 को राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की 125वीं जन्म शताब्दी समारोह के अग के रूप में देश के पचायत अध्यक्षों का एक सम्मेलन नई दिल्ली के इदिरा गाधी स्टेडियम में आयोजित हुआ जिसे राष्ट्रपति डॉ शकर दयाल शर्मा, तत्कालीन प्रधानमत्री श्री पी वी नरसिम्ह राव, ग्रामीण क्षेत्र व रोजगार मत्री डॉ जगन्नाथ मिश्र, कृषि मत्री डॉ बलराम जाखड, मानव ससाधन विकास मत्री श्री माधवराव सिधिया, कल्याण मत्री श्री सीताराम केसरी, पर्यावरण एव वन राज्य मत्री श्री राजेश पायलट, जल समाधन मत्री श्री विद्याचरण शुक्ल, ग्रामीण क्षेत्र एव रोजगार राज्य मत्री श्री उत्तमभाई एच पटेल, श्री विलास मुत्तेमवार, कर्नल राव राम सिंह एव प्रसिद्ध समाजसेवी एव गाधीवादी श्री बीडी पाडे आदि नेताओं ने सम्बोधित किया।

सम्मेलन में उपस्थित सभी राज्यों के पचायत अध्यक्षों का स्वागत करते हुए डॉ जगन्नाथ मिश्र ने प्रतिनिधियों से कहा कि आप लोगों को यहा बुलाने का हमारा आशय आपकी कठिनाइयों को सुनना, उनका हल निकालना और आपको अपने कार्यों और अधिकारों तथा वित्तीय शक्तियों के बारे में जानकारी देना है। इसके बाद पाच विषयों पर अलग अलग ग्रुप बनाए गए। ये पाच विषय थे

1. पचायती राज सस्थाए अधिकार एव कार्य
2. योजना के विकेन्द्रीकरण में पचायतों की भूमिका
3. ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के बारे में सूचना का प्रचार प्रसार
4. नीति एव योजना बनाने वालों, प्रशासकों एव पचायत प्रतिनिधियों के बीच सहयोगी परिचर्चा
5. सामाजिक सगठन में पचायतों की भूमिका

पचायतों के माध्यम से मजबूत भारत के निर्माण का आह्वान

ग्रामीण क्षेत्र एव रोजगार मत्री डॉ जगन्नाथ मिश्र ने सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा कि पचायती राज महात्मा गाधी को प्रिय था। हमारे पूर्व प्रधानमत्री स्वर्गीय राजीव गाधी ने इस विषय में काफी काम कराया। हमारे तत्कालीन प्रधानमत्री श्री नरसिम्ह राव जी के नेतृत्व में मजबूत पचायती राज की स्थापना करने का स्वप्न साकार किया गया है। इसके लिए यह देश उनका सदैव ऋणी रहेगा।

73वें सविधान सशोधन के जरिए जो सबसे महत्वपूर्ण बातें हुई हैं वे हैं पचायतों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों के लिए आरक्षण। इसके अलावा महिलाओं के लिए भी 30 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गई हैं। इस प्रकार पचायतों के कामकाज में वर्तमान केन्द्र सरकार ने पहली बार दलितों और महिलाओं की सम्मानजनक भागीदारी को तय किया है।

केन्द्र सरकार ने गावों के विकास के लिए विशाल धनराशि तय की है। इस साल

यह 7,700 करोड रुपये तक पहुचा दी गई है। आठवीं पचवर्षीय योजना में इसके लिए विशाल धनराशि यानी 30,000 करोड रुपये की व्यवस्था है। इसमें से पचायती राज की व्यवस्था पर काफी वडी राशि खर्च की जायेगी।

डॉ मिश्र ने बताया कि अभी हाल ही में तीन नयी योजनाए शुरू की गई हैं और इन पर अमल का अधिकार भी पचायतों को दिया गया है। ये योजनाए हैं राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम, प्राइमरी स्कूलों के बच्चों के लिए पोषाहार की व्यवस्था और ग्रामीण ग्रुप इश्योरेंस स्कीम।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम की तीन प्रमुख मदें इस प्रकार हैं—

(क) 65 साल या उसके ऊपर के बेसहारा गरीब लोगों के लिए 75 रुपये प्रति माह की सहायता।

(ख) गरीब परिवार के रोटी कमाने वाले की अचानक स्वाभाविक मौत पर 5,000 रुपये की और दुर्घटना में मृत्यु पर 10,000 रुपये की एक मुश्त सहायता।

(ग) गरीब परिवारों की महिलाओं के लिए दो बच्चों तक तीन तीन सौ रुपये की प्रसूति सहायता और साथ में प्रसव के बाद के सारे लाभ भी।

इन योजनाओं पर आवेदन लेने, उन पर सिफारिश करने, बच्चों के लिए भोजन तैयार करने आदि का पूरा काम पचायतें ही करेंगी। बीमा की किस्तें लेने और जमा करने तथा दावों के निपटान कराने का काम भी पचायतें ही करेंगी। अतत ससाधनों, सत्ता और अधिकार पर नियत्रण के साथ साथ प्रशासनिक उपायों और कोषों से पचायती राज सस्थायें मजबूत होंगी और लोगों की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी बनेंगी।

पचायतें लोगों का विश्वास जीतें

ग्रामीण क्षेत्र एव रोजगार राज्य मत्री श्री उत्तमभाई एच पटेल ने सम्मेलन में उपस्थित पचायत अध्यक्षों का स्वागत करते हुए कहा कि दो हजार वर्ष से भी अधिक समय से हमारे देश में किसी न किसी रूप में पचायती राज व्यवस्था विद्यमान रही है। अतीत काल की पचायती राज व्यवस्था के उदाहरण हमें वाल्मीकि रामायण, महाभारत, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिले हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी जी ने पचायतों के माध्यम से जनतत्र के विकेन्द्रीकरण पर सबसे ज्यादा जोर देकर 'ग्राम स्वराज' को सर्वोत्तम माना। अब जबकि तत्कालीन प्रधानमत्री श्री पी वी नरसिम्ह राव के अथक प्रयासों के बाद महात्मा गाधी जी का ग्राम स्वराज का सपना साकार हुआ है, महात्मा गाधी की 125वीं जयती के शुभ अवसर पर इस समारोह का आयोजन उनको सबसे बड़ी श्रद्धाजलि होगी। आज के शुभ अवसर पर यहा उपस्थित हम सब लोगों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि महात्मा गाधी के 'ग्राम स्वराज' के सपने को देश के कोने कोने में सही रूप में साकार करने के लिए दृढ सकल्प लें और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गाव के लोगों को इस

अभियान में एक जुम्बिश के रूप में जोड़ें।

श्री पटेल ने कहा कि आदरणीय प्रधानमत्री ने आठवीं पचवर्षीय योजना के लिए ग्रामीण विकास हेतु 30,000 करोड रुपये की राशि आवटित की है जो कि पूर्व पचवर्षीय योजना की तुलना में कहीं अधिक है। यह भी तय किया गया है कि गरीबी की रेखा में नीचे जीवन विता रहे लोगों के लाभ के लिए जवाहर रोजगार योजना, इन्दिरा आवास योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम आदि के लिए जिलों तथा पचायतों को सीधे राशि दी जाए। हमने यह भी सुनिश्चित किया है कि गरीबी उन्मूलन के सभी केन्द्रीय प्रायोजित कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में हमारी पचायतों को महत्त्वपूर्ण भूमिका सौंपी जाए। श्री पटेल ने कहा कि हाल ही में प्रधानमत्री ने यह निर्णय लिया है कि गरीबों के लिए शुरू की गई तीन नई योजनाओं अर्थात् राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम, प्राइमरी स्कूलों के बच्चों के लिए पोषाहार कार्यक्रम एव ग्रामीण क्षेत्रों में सामूहिक जीवन बीमा योजना के कार्यान्वयन में भी पचायतें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेंगी।

राज्य सरकारें पचायतो को अधिक जिम्मेवारी सौंपे—कर्नल राव राम सिंह

ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार राज्य मत्री कर्नल राव राम सिंह ने कहा कि पचायती राज सस्थाओं की भागीदारी से सरकार की विकास योजनाओं को सफल बनाने में सहायता मिलेगी। राज्य सरकारों को चाहिए कि वे पचायती राज सस्थाओं को शक्तियाँ प्रदान करें। गाव में सरकार द्वारा मुहैया करायी जाने वाली सभी सेवाओं जैसे—कृषि, पशुपालन, स्वास्थ्य, शिक्षा का पर्यवेक्षण पचायत द्वारा ही कराया जाना चाहिए। ग्राम कर्मचारियों को वेतन भी पचायत द्वारा ही दिया जाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि इसमे जनता को प्रदान की जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार होगा।

पचायतें गाव के विकास कार्यों पर पैनी निगाह रखे—मुत्तेमवार

ग्रामीण क्षेत्र एव रोजगार राज्य मत्री श्री विलास मुत्तेमवार ने कहा "आठवीं योजना में गरीबी उन्मूलन पर विशेष जोर दिया गया है, जिसका उद्देश्य गाव के गरीब लोगों को स्व रोजगार, मजदूरी रोजगार तथा क्षेत्र विकास कार्यक्रमों के जरिए रोजगार तथा आय के साधन उपलब्ध कराना है। सरकार का यह प्रयत्न है कि इस सदी के अत तक सबको रोजगार मिले। इस लक्ष्य को पाने के लिए हमने ऐसे कई कार्यक्रम चलाये हैं जो विशेष रूप से समाज के उपेक्षित वर्गों और पिछडे क्षेत्रों को ध्यान में रखकर तैयार किए गए हैं। अनुसूचित जातियों, जनजातियों, महिलाओं और कमजोर वर्गों के हितों को इन कार्यक्रमों में विशेष सरक्षण दिया गया है।"

"स्व रोजगार कार्यक्रमों के तहत हमने एक समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम बनाया है जिसका लक्ष्य चयन किए गए ग्रामीण परिवारों की आमदनी को बढाकर गरीबी की रेखा

से उन्हें ऊपर उठाने में मदद करना है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वित्तीय संस्थाओं द्वारा सरकारी सहायता और ऋण के माध्यम से लक्षित समूह को लाभकारी सम्पदा और निवेशों के रूप में मदद दी जायेगी।"

अंत में श्री मुत्तेमवार ने पंचायत प्रतिनिधियों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि स्वरोजगार के इन सभी कार्यक्रमों में पंचायतों को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। उन्हें यह सुनिश्चित करना है कि योजनाओं से लाभ पाने वालों की सही सही पहचान की जाए। पंचायतें यह काम ग्राम सभाओं की खुली बैठकों में करें। वे यह भी सुनिश्चित करें कि ऐसे लोगों को जो कुछ भी दिया जा रहा हो वह अच्छी क्वालिटी का हो। पंचायतों को चाहिए कि वे समय-समय पर और हर स्तर पर कार्यक्रम की प्रगति की समीक्षा करें तथा उनके क्रियान्वयन पर पैनी नजर रखें। ऐसा करके ही वे जमीनी स्तर के विकास को सुनिश्चित कर सकती हैं।

सम्मेलन की सिफारिशें

चुनाव—जहां कहीं पंचायतों का गठन नहीं हुआ है वहां चुनाव तत्काल कराये जाने चाहिए।

सुपुर्दगी—पंचायतें गठित करने के बाद उन्हें कार्यशील बनाने के लिए पर्याप्त शक्तियां, कार्य और वित्तीय सुपुर्दगी के लिए कदम उठाये जाने चाहिए।

वित्तीय सहायता—केवल विषयों को हस्तांतरित कर देने से पंचायतें तब तक सक्षम नहीं बन सकतीं जब तक कि उन्हें पर्याप्त वित्तीय सहायता न दी जाए। इसलिए राज्य वित्त आयोग की सिफारिशें मिलने तक पंचायती राज संस्थाओं को पर्याप्त धनराशि दिए जाने की तत्काल आवश्यकता है।

साधनों को जुटाना—अपने स्वयं के संसाधन जुटाने के लिए पंचायतों को अधिकार दिए जाने चाहिए और उन्हें गतिशील बनाया जाना चाहिए।

प्रशासन को सुदृढ़ बनाना—पंचायतों को सौंपी गई जिम्मेदारियों और निधियों की अधिक मात्रा में प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि उन्हें प्रशासनिक और तकनीकी तौर पर सुदृढ़ बनाया जाए। कर्मचारियों के सभी पद भरे होने चाहिए। ग्राम पंचायत अधिकारियों एवं कर्मचारियों का एक अलग संवर्ग बनाया जाना चाहिए।

पंचायतों के चुने प्रतिनिधियों एवं अधिकारियों के बीच सौहार्दपूर्ण समन्वय— पंचायतों के चुने हुए प्रतिनिधियों एवं अधिकारियों को सौहार्दपूर्ण तरीके से काम करने की स्वस्थ परम्परा का विकास करना चाहिए तथा नई व्यवस्था को प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित करने के लिए एक-दूसरे की भूमिका के सम्मान करने की भावना होनी चाहिए।

प्रशिक्षण एवं जागरूकता सृजन—पंचायतों के नव निर्वाचित सदस्यों को अपनी भूमिका से पूर्ण परिचित कराने के लिए उन्हें सूचना एवं शिक्षा के माध्यम से अपनी नई

जिम्मेदारियों के प्रति सजग बनाया जाना चाहिए। इसके लिए समस्त सचार माध्यमों को प्रयोग किया जाना चाहिए। जागरूकता सृजन की यह प्रक्रिया निरतर चलती रहनी चाहिए। इस सबध में भी सुधार किए जाने की आवश्यकता है कि उन तक सभी सूचना पहुचे।

स्थायी समितिया—उपयोगी और शीघ्र निर्णय लेने तथा सामाजिक और आर्थिक विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन हेतु प्रभावी पर्यवेक्षण और निगरानी के लिए पचायतों को स्थायी समितिया गठित करनी चाहिए। इन समितियों में महिलाओं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों को शामिल किया जाना चाहिए।

जिला आयोजन—सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं और ससाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए जिले की योजना बनाने के लिए उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

ग्राम सभा—ग्राम सभा को एक प्रतिनिधि जनतत्र के मच के रूप में सुदृढ किए जाने की आवश्यकता है। इनकी बैठकें नियमित रूप से होनी चाहिए और उनमें विकास कार्यों से सबधित विभिन्न विषयों पर विचार होना चाहिए। ग्राम सभा में स्थानीय लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं पर चर्चा होनी चाहिए और इसे लोगों की आकाक्षाओं की पूर्ति हेतु कार्य करना चाहिए। ग्राम सभा को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लाभार्थियों का चयन करना चाहिए।

पारदर्शिता—पचायतों को स्वशासी सस्थाओं के कार्यों में लोगों के विश्वास को सुदृढ करने में अपनी जिम्मेदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

उपेक्षित समूहों के प्रति सकारात्मक कार्यवाही—पचायतों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि समाज के कमजोर वर्गों को मुख्य धारा से जोडने के लिए विकास कार्यों को तेज किया जाए और उन्हें इस प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भागीदार बनाया जाए। पचायतों को विशेष रूप से इन वर्गों के प्रति होने वाले सभी प्रकार के शोषण और भेदभाव को समाप्त करने तथा विकास के लाभों का समान वितरण करने के लिए कार्य करना चाहिए।

सामाजिक भागीदारी—पचायतों को सामाजिक विकास, विशेष रूप से साक्षरता, स्वास्थ्य, महिला एव बाल कल्याण कार्यक्रम आदि के लिए लोगों को सगठित करना चाहिए।

ग्रामीण विवादों का निपटान—ग्रामीण स्तर के विवादों के समाधान में पचायतों की भूमिका होनी चाहिए। यदि सभव हो तो ग्राम पचायतों को न्यायिक शक्तिया दी जाए। इससे लोगों का मनोबल बढेगा और गावों पर एक सामाजिक दायित्व भी आयेगा। ग्राम पचायतों को विगत में चल रही प्रणाली की गहन समीक्षा करने के बाद गावों में न्याय दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। इससे पचायती राज प्रणाली की प्रतिष्ठा

बढ़ेगी और गावों के दैनिक कार्यों में उनका महत्त्व बढेगा।

भूमि सुधार—पचायतें भूमि सुधार कार्यक्रम को सफल बनाने और सीमा से अधिक भूमि का उचित वितरण सुनिश्चित करने में प्रभावशाली भूमिका निभा सकती हैं।

जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों का जिला परिषदों के साथ समन्वय—जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों का जिला परिषदों के साथ समन्वय होना चाहिए। जिला परिषदों के अध्यक्ष जिला ग्रामीण विकास एजेंसी के पदेन अध्यक्ष होने चाहिए।

गरीबी उन्मूलन कार्य—ग्राम पचायत स्तर पर सचालित एव कार्यान्वित हो रहे सभी गरीबी उन्मूलन कार्य पचायतों के अधीन होने चाहिए।

लोकतंत्र की रक्षा के लिए पचास लाख सिपाही तैयार

सम्मेलन के महत्त्व को रेखांकित करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पी वी नरसिम्ह राव ने कहा यों तो ससद और विधान सभाओं में जनता के प्रतिनिधि एकत्र होते रहते हैं लेकिन सारे देश के प्रतिनिधियों का पचायती राज अध्यक्षों के सम्मेलन में एक साथ इकट्ठा होना बडा ही दुर्लभ अवसर है। इसे नये इतिहास की नींव बताते हुए उन्होंने कहा कि 1947 में देश की आजादी के बाद भारत की कोटि-कोटि जनता को सही अर्थों में स्वराज प्राप्त हो रहा है। उन्होंने कहा

"हमारे सासद 800 के करीब हैं, दिल्ली में, पार्लियामेंट में और सारे राज्यों की सरकारों में, राज्यों की विधान सभाओं में, विधान परिषदों में। कुल मिलाकर उनकी गिनती बनती है पाच हजार जिनके आधार पर लोकतंत्र इस देश में चल रहा है। आज पचायती राज के आने के बाद आप हिसाब लगाइये कि कहा पाच हजार, कहा पचास लाख। यानी पाच हजार पर पाच लाख हुए। तो सौ गुना हुए, पचास लाख हुए तो हजार गुना हुए। तो हजार गुना लोग आज तैयार हैं इस देश में, जिनकी दिलचस्पी लोकतंत्र में बन गयी है। आज पचास लाख लोग तैयार हो जाएगे, अपना सिर कटवाने के लिए, इस लोकतन्त्र को बचाने के लिए।"

लोकतंत्र की दिशा में महत्त्वपूर्ण शुरुआत

आजादी के बाद देश में पचायती राज प्रणाली की स्थिति का जिक्र करते हुए श्री नरसिम्ह राव ने कहा कि 1959 में जब यह प्रणाली लागू की गयी तो पचायत समितिया आदि बनीं। लेकिन उनका स्वरूप कुछ और था। उनके नियमित चुनाव की कोई व्यवस्था नहीं की गयी। कई राज्यों में तो 17-17 साल तक पचायतें बिना चुनाव के रहीं। स्वर्गीय राजीव गाधी ने इस कमजोरी को दूर करने के लिए पहल की और पचायती राज सस्थाओं के चुनाव नियमित रूप से कराने के लिए सविधान में सशोधन के लिए कदम उठाया। सच्चे अर्थों में लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण शुरुआत थी।

तत्कालीन प्रधानमंत्री ने कहा कि विकास कार्यक्रम तभी सफल हो सकते हैं जब लोग उनके बारे में जागरूक हों और उनमें दिलचस्पी लें। गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा, "आपके गावों में जो काम होता है वह आप जिस खूबी से कर सकते हैं, उस खूबी से मैं नहीं कर सकता। आपके गाव में किसी गरीब की रक्षा करनी हो, मदद करनी हो तो यह काम आप बखूबी कर सकते हैं, मैं नहीं।" तत्कालीन प्रधानमंत्री ने यह बात स्वीकार की कि गाव में कौन व्यक्ति गरीब, निराश्रित और सहायता का हकदार है, यह बात गाव के लोग बेहतर जानते हैं। इस बारे में सरकार के पास जो सूचनाएं सरकारी रिपोर्टों के रूप में आती हैं, उनमें गलती की गुजाइश रहती है। हो सकता है किसी नौजवान को गलती से वृद्धावस्था पेंशन मिलने लगे। लेकिन जब इस तरह के कार्यक्रमों की जिम्मेदारी पचायतों को सौंप दी जाएगी तो ऐसी गलती की कोई सभावना नहीं रहेगी। इस तरह लोगों को पूरा न्याय मिल सकेगा।

तत्कालीन प्रधानमंत्री ने कहा कि अरबों रुपया खर्च करने के बावजूद हम गरीबी दूर करने में पूरी तरह सफल नहीं हो पाए हैं। "इसका कारण यही है कि पैसा कहीं बीच में लीक होता चला जा रहा है। आज हमें मालूम हो गया है कि पचायती राज एक ऐसा माध्यम है जिसके जरिए हम पैसा सही तरीके से खर्च करा सकते हैं। जो इससे लाभान्वित होने वाले व्यक्ति हैं, गावों में उन तक पैसा पहुचाने के लिए हमें एक माध्यम मिला है। पैसा पहुचाना हमारा काम है। लेकिन जब सही आदमी को सही मदद मिलती है तो वह सफलता आपकी रहेगी और आप ही के जरिए यह काम होगा। यह आपका इम्तहान भी होगा और आपकी सफलता भी होगी।"

तत्कालीन प्रधानमंत्री ने कहा कि नयी पचायत राज प्रणाली के तहत केन्द्र सरकार पचायतों को धन उपलब्ध करायेगी। ऐसी व्यवस्था की जा रही है जिससे केन्द्र और राज्यों के बीच राजनीतिक मतभेदों के कारण पचायतों को धनराशि मिलने में कोई अडचन न आने पाये। उन्होंने इस मामले में दलगत मतभेदों को भुलाकर कार्य करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया।

नये पचायती राज कानून के तहत पचायतों को जहा अनेक अधिकार सौंपे गये हैं वहीं उनके दायित्व भी बहुत बढ गये हैं। गावों के विकास, सामाजिक सुधार और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी दूर करने का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व अब काफी हद तक पचायतों पर आ गया है। इस कार्य में पूरी आर्थिक सहायता देने का आश्वासन देते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री ने पचायत अध्यक्षों से यह सुनिश्चित करने का आग्रह किया कि केन्द्र द्वारा उपलब्ध करायी जा रही धनराशि सही लोगों तक पहुचे। उन्होंने कहा कि "पचायतों के जरिए समाज-सुधार का काम बहुत अच्छे तरीके से कराया जा सकता है। अब यदि कहीं किसी ने कोशिश नहीं कि तो मैं समझता हू कि यह कोशिश की जानी चाहिए। हमारे देश में एक ओर विकास हो रहा है, लेकिन विकास केवल सडक या उद्योग के कार्यक्रम तक नहीं रहा है। विकास बहुत बडी चीज है, जिसमें इसान का दिमाग भी आता है। यह

न हो तो देश के विकास का कुछ मतलब नहीं है।"

नयी पचायत राज प्रणाली को सफल बनाने में केन्द्र की ओर से हर सम्भव सहायता का आश्वासन देते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री ने पचायत अध्यक्षों से कहा कि वे पूरी लगन से इस लक्ष्य को प्राप्त करने में जुट जाएं। ☐

कागज उद्योग—समस्याएं और समाधान

प्रणय प्रसून वाजपेयी

पिछले चार वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था की काया पलट हो गई है। निलबित अर्थव्यवस्था की जगह उदारीकृत अर्थव्यवस्था और खुले बाजार की नीति ने देश की आर्थिक गतिविधियों को नई स्फूर्ति और जीवतता प्रदान की है। आर्थिक आकडे इस बात का सकेत दे रहे हैं कि आने वाला कल और अधिक चमकीला होगा। 1991-92 में 0 9 प्रतिशत की समग्र आर्थिक वृद्धि की तुलना में 1994-95 में 5.3 प्रतिशत की दर होने की सभावना है। विदेशी मुद्रा प्रारक्षित निधि जो जून, 1991 में मुश्किल से एक अरब डालर थी वह फरवरी 1995 के मध्य तक 19.5 अरब डालर हो गई। निर्यात के डालर मूल्य में 1991 92 में हुई वास्तविक गिरावट की तुलना में 1993-94 में 20 प्रतिशत की वृद्धि की गई। विदेश व्यापार में चालू खाते का घाटा 1990-91 के लगभग 10 अरब अमेरिकी डॉलर की तुलना में घटकर 3150 लाख अमेरिकी डॉलर रह गया। भुगतान सतुलन की स्थिति 1994-95 में और भी मजबूत हुई है। सकल घरेलू उत्पाद में 5 प्रतिशत से अधिक वृद्धि, औद्योगिक उत्पादन में 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि और विदेशी निवेश में तेजी से बढती वृद्धि खुद ही सारी कहानी कह डालते हैं।

इन सब स्थितियों की पृष्ठभूमि में कागज उद्योग राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी छवि बेहतर करने के लिए प्रयासरत है। सरकार द्वारा पिछले बजट में दी गई कर रियायतों (प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर समेत), पूजी बाजार में सुधार से ब्याज दर में कमी और अनेक कपनियों द्वारा समुद्र पार से वित्तीय ससाधनों को जुटाने जैसे प्रयास उद्योग की सेहत की दृष्टि से बेहतर सकेत हैं। इन सब प्रयासों व गतिविधियों से उद्योग को अल्पकालिक और दीर्घकालिक लाभ पहुचने की उम्मीद है। इन सब तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में हम कागज उद्योग की स्थिति पर नजर डालेंगे।

कागज उद्योग किसी देश का अत्यत महत्त्वपूर्ण एव आधारभूत उद्योग होता है। प्रति व्यक्ति कागज के उपभोग से औद्योगिक, सास्कृतिक और शैक्षिक गतिविधियों के क्षेत्र में प्रगति और विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। भारत में प्रति व्यक्ति कागज का उपभोग विश्व के अन्य देशों की तुलना में अत्यत कम है। भारत में 3 2 किग्रा कागज

को प्रति व्यक्ति खपत है जबकि अत्यधिक विकसित देशों में 200 किग्रा कागज की प्रति व्यक्ति खपत है।

देश में पहली मशीनी कागज मिल 1832 में पश्चिम बंगाल में सेरामपुर में लगाई गई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के शुरू में (1950-51) एक लाख 6 हजार टन कागज का उत्पादन होता था जबकि 90,000 टन कागज का आयात किया जाता था। कागज के उत्पादन में दूसरी पंचवर्षीय योजना से 1980 के प्रारंभ तक तेजी से बढ़ोतरी हुई, जब आयात कम होकर 60,000 टन रह गया और उत्पादन में भी 10 गुना वृद्धि हुई। दूसरे शब्दों में, वर्ष 1980 में कागज का उत्पादन 11.12 लाख टन तक पहुंच गया। वर्ष 1985 में 15.60 लाख टन, 1990 में 19.56 लाख टन, और वर्ष 1993 में 22.00 लाख टन और 1994 में 22.18 लाख टन तक कागज का उत्पादन पहुंच गया। लेकिन कागज उद्योग की स्थापित क्षमता और क्षमता के वास्तविक उपयोग के बीच का अंतर बढ़ता चला गया। दूसरे शब्दों में स्थापित क्षमता में तो लगातार वृद्धि होती गई जबकि क्षमता के उपयोग में गिरावट होती गई। तालिका 1 से हम कागज उद्योग की स्थापित क्षमता, उत्पादन और क्षमता उपयोग का अनुमान लगा सकते हैं—

तालिका 1

वर्ष	स्थापित क्षमता	उत्पादन (लाख टन में)	क्षमता का उपयोग (प्रतिशत में)
1970	8.68	7.58	78
1975	10.68	8.80	82
1980	15.18	11.12	73
1985	23.50	15.60	66
1990	30.49	19.56	64
1992	34.18	21.28	60
1993	35.51	22.00	-
1994 (अनुमानित)	37.86	22.18	60

उद्योग की मौजूदा स्थिति

इस समय देश में 380 कागज मिलें हैं जिनमें 21 बड़ी मिलें हैं जबकि 359 छोटी मिलें हैं। इन मिलों की कुल उत्पादन क्षमता 37.90 लाख टन है जबकि उत्पादन 22.68 लाख टन हो रहा है। कुल स्थापित क्षमता में बड़ी मिलों का हिस्सा 34 प्रतिशत है जबकि कुल उत्पादन का 44 प्रतिशत बड़ी मिलों से आता है। कुल मिलों में से 150 मिलों में उत्पादन 10.66 लाख टन हो रहा है जो कि उनकी स्थापित क्षमता का 29 प्रतिशत है। 359 छोटी मिलों में से 147 मिलें अर्थात् 41 प्रतिशत मिलें बंद पड़ी हैं अथवा उनमें उत्पादन नहीं हो रहा है। यह स्पष्ट है कि उन मिलों में जहां वार्षिक उत्पादन 33 हजार टन

मे अधिक है, वहा मिलों की रूगणता अधिक है।

कच्चे माल के आधार पर इकाइयो का वर्गीकरण

कच्चे माल के आधार पर कागज मिलों को मोटे तौर पर तीन भागों में बाटा जा सकता है। ये हैं—(1) लकड़ी पर आधारित मिलें (2) कृषि उत्पाद पर आधारित मिलें और बेकार (अपशिष्ट) कागज पर आधारित मिलें। कुल 380 कागज मिलों में से 111 मिलें (29 प्रतिशत) कृषि उत्पाद पर आधारित हैं, 241 मिलें (63 प्रतिशत) अपशिष्ट कागज पर आधारित हैं जबकि शेष 28 मिलें (8 प्रतिशत) लकड़ी (काष्ठ) पर आधारित हैं।

तालिका 2 में विभिन्न उत्पादों पर आधारित मिलों का वर्गीकरण किया गया है। तालिका में इनकी स्थापित क्षमता पर वास्तविक उत्पादन को दिखाया गया है—

तालिका 2

वर्गीकरण	क्षमता (लाख टन)	क्षमता (प्रतिशत में)	उत्पादन (लाख टन)	उत्पादन (प्रतिशत में)
कृषि आधारित	11.53	30 4	6.89	29 94
बेकार कागज पर आधारित	11 90	31.6	6.77	29.64
लकड़ी पर आधारित	19 49	38.0	8.83	40 42
	37 90	100 0	22 49	100 00

तालिका से दो बातें स्पष्ट हैं—प्रथम, कृषि और बेकार कागज पर आधारित मिल की कुल क्षमता 62 प्रतिशत है और उत्पादन 23 43 लाख टन है जो कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत है।

कागज मिलों का भौगोलिक विभाजन

सख्या की दृष्टि से कागज मिलों के भौगोलिक विभाजन में अत्यधिक असमानता नजर आती है लेकिन क्षमता और उत्पादन की दृष्टि से यह असमानता कम है। उत्तर में 143 मिलें, पश्चिम में 128 मिलें, दक्षिण में 65 मिलें और पूर्व में 44 मिलें हैं। स्थापित क्षमता की दृष्टि से उत्तर का 21.66 प्रतिशत, पश्चिम का 29 68 प्रतिशत, दक्षिण का 25 03 प्रतिशत और पूर्व का 23.63 प्रतिशत है। उत्पादन की दृष्टि से उत्तर का योगदान 22.60 प्रतिशत, पश्चिम का 26 48 प्रतिशत, दक्षिण का 29 72 प्रतिशत और पूर्व का 21.2 प्रतिशत है।

कागज उद्योग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें 33,000 टन प्रतिवर्ष से कम उत्पादन करने वाली छोटी कागज मिलों की काफी बड़ी संख्या मौजूद है। ये छोटी मिलें मुख्यत कृषि या फिर बेकार (अपशिष्ट) कागज पर आधारित हैं। कृषि

आधारित मिलें लाभ उत्पादन पैमाने के लाभ से तो वचित रहती ही हैं, साथ ही प्रौद्योगिकी और पर्यावरण समस्याओं के अलावा इनमें रूगणता का अनुपात भी ज्यादा रहता है।

मांग विश्लेषण

वर्ष 1993-94 में कागज व गत्ता तथा अखबारी कागज की कुल अनुमानित माग 29 10 लाख टन थी जिसमें कागज व गत्ते की माग 22 90 लाख टन थी जबकि अखबारी कागज की माग 6 20 लाख टन थी अखबारी कागज के 2 02 लाख टन आयात समेत कुल आयात 2.50 लाख टन हुआ। हालाकि माग में कुल वृद्धि 5 प्रतिशत वार्षिक रही लेकिन उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों में यह माग अलग-अलग थी। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के साथ ही कागज उद्योग के औद्योगिक क्षेत्र की माग ने सास्कृतिक क्षेत्र की माग को पीछे छोड दिया। अखबारी कागज के क्षेत्र में विकास की दर समान और स्थायी बनी रही।

सास्कृतिक क्षेत्र की माग 60 प्रतिशत से घटकर 45 प्रतिशत हो गई जबकि औद्योगिक क्षेत्र की माग 37 प्रतिशत से बढकर 50 प्रतिशत हो गई। औद्योगिक रूप से विकसित देशों में पैकिग क्षेत्र में कागज की सर्वाधिक माग रही, जैसाकि निम्न तालिका 3 में दर्शाया गया है

तालिका 3

वर्ष	सास्कृतिक	पैकिंग (प्रतिशत में)	विशिष्ट कार्य हेतु
1960-61	60	37	3
1970 71	56	41	3
1980-81	49	47	3
1990-91	46	50	4
1993 94	45	50	5

निर्यात एव आयात

कागज उद्योग ने पिछले पाच वर्षों में निर्यात के क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन (निष्पादन) किया है। 1989-90 की तुलना में 1993-94 में निर्यात में 7.5 गुणा वृद्धि दर्ज की गई है। हालाकि वर्ष 1993-94 में निर्यात में कमी आई। सभवत इसकी मुख्य वजह विश्व बाजार में मदी का होना था। पिछले पाच वर्षों के दौरान कागज उद्योग के निर्यात को तालिका 4 में दिखाया है।

उत्पादन में निरतर वृद्धि की वजह से देश विभिन्न किस्मों के कागज व गत्ते के उत्पादन में लगभग आत्मनिर्भरता के मुकाम पर पहुच चुका है। कुल घरेलू माग का सिर्फ 2 प्रतिशत ही आयात किया जा रहा है। यह आयात भी कुछ विशिष्ट प्रकार के कागज के लिए हो रहा है जैसे मार्टपेपर, फोटो पेपर अधिक मजबूती वाला क्राफ्ट पेपर

फिल्टर पेपर, केबल और कन्डेंसर पेपर आदि। तालिका 5 में पिछले चार वर्षों की आयात की स्थिति को दर्शाया गया है।

तालिका 4

वर्ष	मूल्य (करोड़ रुपये)
1989 90	7.8
1990-91	12.1
1991 92	32.7
1992 93	60 4
1993-94	53.3
(अनुमानित)	

तालिका 5

वर्ष	मात्रा	मूल्य (करोड़ रुपये)
1990-91	46 700	170.36
1991 92	34 421	147.25
1992 93	39 159	161.35
1993 94	46 817	236 07

मात्रा की दृष्टि से पिछले चार वर्षों में आयात लगभग स्थिर रहा है। आयात मुख्य रूप से चीन, जापान, सिंगापुर, आस्ट्रेलिया, फिनलैंड, जर्मनी, ब्रिटेन और सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश से हो रहा है।

जहा तक अखबारी कागज के आयात का प्रश्न है, वर्ष 1993-94 में 2 02 लाख टन अखबारी कागज का आयात किया गया। देश को इसके लिए 290 08 करोड रुपये की राशि अदा करनी पडी। चमकीले कागज की सपूर्ण जरूरत जो कि लगभग 40,000 टन है, का आयात करना पडा।

भारत विश्व उत्पादन का सिर्फ 1 19 प्रतिशत कागज का उत्पादन करता है और मूल्य की दृष्टि से भारत का योगदान सिर्फ 0 87 प्रतिशत है जबकि भारत में विश्व की कुल आबादी के 16 प्रतिशत लोग निवास करते हैं। यूरोप का, जो कि विश्व की कुल आबादी का 20 प्रतिशत है, विश्व उत्पाद में 67.5 प्रतिशत योगदान है। भारत में कागज मिलों की औसत क्षमता 10,000 टन उत्पादन की है जबकि एशिया-प्रशात क्षेत्र के देशों की मिलों की औसत क्षमता 85,000 टन और यूरोप/अमेरिका की 3 लाख टन तक है।

समस्याए

भारत का कागज उद्योग सिर्फ क्षमता के मामले में ही पिछडा हुआ नहीं है बल्कि यह प्रौद्योगिकी, कच्चे माल, गुणवत्ता और पर्यावरण जैसी समस्याओं से भी घिरा हुआ है। उत्पादन के दौरान प्राप्त आतरिक और बाहरी लाभ मिल की स्थापना और ससाधन की

प्रौद्योगिकी के निर्धारण और उपयुक्तता के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुछ इकाइयों को छोड़कर कागज उद्योग में पुराने संयत्र और अप्रचलित प्रौद्योगिकी कार्यरत है। आधुनिकीकरण और प्रौद्योगिक उन्नयन में बहुत ही कम पैसा निवेश किया गया। फलस्वरूप, अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारत कहीं ठहर नहीं पाता। घटिया उत्पादन और अत्यधिक मूल्य की वजह से भारतीय उत्पाद का कोई खरीददार नहीं होता।

मोटे तौर पर कागज उद्योग अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है। बड़ी कागज मिलों की निम्नलिखित समस्याएं हैं

(1) वनों से मिलने वाले कच्चे माल का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होना। कागज उद्योग 70 के दशक के मध्य तक वन उत्पादों विशेषकर बांस और बाद में लकड़ी पर निर्भर था। लेकिन 1975 के बाद से अपरंपरागत कच्चे माल जैसे खोई, जूट, पुआल और बेकार कागज का भी उपयोग होने लगा। लेकिन इन कच्चे मालों की उपलब्धता और लागत के मोर्चे पर कागज उद्योग मार खा रहा है।

(2) प्रौद्योगिकी की पुरानी खपत।

(3) ऊर्जा की अधिक खपत

(4) आधुनिकीकरण की अधिक पूंजीगत लागत

(5) निवेश की ऊंची लागत।

(6) प्रबंधकीय विसंगतियां और

(7) कुशल श्रमिकों का अभाव।

छोटी कागज मिलों की निम्नलिखित समस्याएं हैं

(1) अकुशल रसायन रिकवरी प्रणालियां—जिनकी वजह से उत्पादन लागत अधिक हो जाती है और पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। कागज उद्योग पर्यावरण के मामले में वायु, जल और भूमि के मामले में कोई खास चिंतित नजर नहीं आता। बड़ी मिलों की सोडा निकास व्यवस्था न होने से पर्यावरण को गंभीर खतरा उत्पन्न होने का अंदेशा है।

(2) पुराने उपकरण जिनकी उत्पादकता कम है और ऊर्जा की खपत अधिक है

(3) कच्चे माल की कमी।

(4) राष्ट्रीय वन नीति में औद्योगिक प्रयोग के लिए औद्योगिक वनों को अवैध घोषित कर दिया गया है। कागज और अन्य वन-आधारित उद्योगों के लिए यह आवश्यक कर दिया गया है कि वे अपना कच्चा माल प्राप्त करने के लिए वृक्ष उगाने वाले व्यक्तिगत उत्पादकों से सीधे संपर्क स्थापित करें। यद्यपि यह प्रबंध व्यावहारिक सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि पेड़ बनने में 7-8 वर्ष लग जाते हैं।

समाधान हेतु उपाय

उद्योग को कच्चा माल उपलब्ध कराने के लिए औद्योगिक वृक्षारोपण के लिए उद्योगों को घटिया और बेकार भूमि उपलब्ध कराने पर विचार किया जाए। निजी भूमि का वृक्षारोपण के लिए उपयोग करने की भी अनुमति दी जानी चाहिए। कागज उद्योग के लिए यह भी आवश्यक होगा कि वे अपनी मौजूदा क्षमता में जहा तक सभव हो, खोई और अन्य कृषि के अपशिष्ट पदार्थों का उपयोग करने के लिए परिवर्तन करें और उसकी आवश्यकता अनुरूप अपने उपकरणों का आधुनिकीकरण करें।

चीनी उत्पादन में लगातार वृद्धि से कच्चे माल के रूप में खोई का उपयोग करते हुए अग्रिम योजना बनाने और चीनी उत्पादन के साथ कागज उत्पादन को जोड़ने की आवश्यकता है। ऐसा एक सयत्र तमिलनाडु राज्य में चलाया जा रहा है। ऐसे और अधिक सयत्रों की योजना बनाने और उसे व्यवहार में लाने की आवश्यकता है। इसे चीनी मिलों के बायलरों में डालने और कागज के उत्पादन के वास्ते विद्युत का सह उत्पादन करने के लिए कोयले की पर्याप्त आपूर्ति अथवा किसी अन्य वैकल्पिक ईंधन की जरूरत है।

इसके अतिरिक्त, कागज उद्योग को अपने उत्पादन और वित्तीय स्थिति में सुधार में मदद करने के लिए हाल के वर्षों के दौरान विभिन्न नीति सबधी उपाय किए गए हैं

(1) प्रतियोगी लागत पर कच्चे माल की निरतर आपूर्ति।

(2) कच्चे माल के आयात के लिए उदारीकृत सुविधाए।

(3) गैर-पारपरिक कच्चा माल इस्तेमाल करने के लिए उत्पादन शुल्क में रियायतें।

(4) कागज और गत्ते की विभिन्न किस्मों की अलग-अलग पट्टी (बैंडिंग) बनाना।

(5) गन्ने की खोई, कृषि सबधी अवशेषों से न्यूनतम 75 प्रतिशत लुगदी पर आधारित कागज के विनिर्माण को लाइसेंसों से मुक्त करना।

(6) स्थापना स्थल सबधी नीति की शर्तों के आधार पर गैर पारपरिक कच्चा माल उपलब्ध कराना।

(7) प्रौद्योगिकी और उत्पादकता के जरिए उत्पाद व प्रक्रिया का उन्नयन।

(8) अनुकूलतम आकार के सयत्रों के जरिए लागत प्रतियोगी बनाना और

(9) पर्यावरण व प्रदूषण नियत्रण उपायों के जरिए उद्योग को नियत्रित करना।

कागज उद्योग की समस्याओं को दूर करने में सिर्फ सरकारी उपाय ही प्रभावी सिद्ध नहीं हो सकते बल्कि उद्योग को निजी प्रयास भी करने होंगे। चूकि खुले बाजार की नीति और आर्थिक उदारीकरण ने कागज उद्योग को जहा एक ओर अपनी स्थिति सुधारने का मौका दिया है वही दूसरी तरफ उन्हें अतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के मैदान में ला खड़ा किया

है। अत आवश्यक है कि वे समय रहते सरकारी और अपने निजी प्रयासों के जरिए उद्योग का पुनर्निर्माण और नया रूप प्रदान करें जो कि गुणवत्ता और लागत के स्तर पर अतर्राष्ट्रीय बाजार में ठहर सके। साथ ही पर्यावरण के पक्ष पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए उद्योग को उपयुक्त प्रौद्योगिकी भी तलाश करनी पडेगी। वित्तीय स्थिति में सुधार लाने का वेहतर मौका है।

आने वाला दशक कागज उद्योग के लिए न सिर्फ महत्त्वपूर्ण सावित होने वाला है बल्कि निर्णायक भी। विश्व बाजार से मदी के वादल छट चुके हैं। खुले बाजार की नीति, युरुग्वे दौर का महमतिपूर्ण समझौता, विश्व व्यापार समझौता और आर्थिक सुधार ने सिर्फ देश में ही नहीं बल्कि विश्व में आर्थिक गतिविधियों को गति प्रदान की है। देश के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 5 6 प्रतिशत, औद्योगिक उत्पादन में 8 प्रतिशत और साक्षरता दर में भी वृद्धि हुई है। देश की आर्थिक विकास की वृद्धि दर लगभग 2 प्रतिशत के आस पास अनुमानित है जबकि देश की जनसख्या इस सदी के अत तक एक अरव तक पहुच जाएगी। कागज का उपभोग मौजूदा 3.2 किग्रा प्रति व्यक्ति से बढकर 5 किग्रा होने की उम्मीद है। इस सदी के अत तक कागज की माग 50 लाख टन तक पहुचने की सभावना है। इसमें अखबारी कागज की माग भी शामिल है।

इस समय अखवारी कागज समेत कुल उत्पादन 20.8 लाख टन है। अत आगामी 6 वर्षों में कागज व गत्ता तथा अखबारी कागज की माग में 20.2 लाख टन की बढोतरी होने की उम्मीद है। वर्ष 2000 तक 50 9 लाख टन को स्थापित क्षमता की जरूरत पडेगी।

देश और विश्व में हो रहे आर्थिक सुधार, खुले बाजार की नीति, प्रशुल्क की टूटती दीवारों ने आर्थिक गतिविधियों को तेज कर दिया है, लोगों की उपभोग क्षमता को बढाया है। इसका सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव पडने की सभावना है। सकारात्मक प्रभाव के अतर्गत बढती माग उत्पादन में वृद्धि को प्रेरित करेगी। वहीं दूसरी तरफ नकारात्मक प्रभाव के अतर्गत घरेलू बाजार के उत्पादों के मर जाने की आशका है। अत विकास के इस विरोधाभास पर नजर रखना आवश्यक है। कागज उद्योग को इन सब जमीनी हकीकतों पर नजर रखते हुए सतुलित विकास की तरफ बढने के प्रयास करने चाहिए। निश्चित रूप से राजकीय सहायता के लिए उद्योग की अपेक्षाए जायज हैं लेकिन उद्योग को स्वय प्रयास भी करना होगा। अत उचित समन्वय और नीतियों के क्रियान्वयन से प्रौद्योगिकी उन्नयन, लागत को न्यूनतम करने, उत्पादन में वृद्धि, गुणवत्ता में सुधार, कीमतों में कमी के जरिए अतर्राष्ट्रीय बाजार में कागज उद्योग अपने को स्थापित कर सकता है।

अखवारी कागज

1981 तक नेशनल न्यूजप्रिंट एड पेपर मिल्स लिमिटेड (नेपा) देश में अखबारी

कागज का उत्पादन करने वाली एकमात्र इकाई थी। केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र की इस मिल ने 1955 में अपना उत्पादन शुरू किया था।

इस समय देश में अखबारी कागज की 21 मिलें (केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र में 4, राज्य सरकार के क्षेत्र में 2 और निजी क्षेत्र में 15 हैं जिन्हें अखबारी कागज नियत्रण आदेश 1962 की अनुसूची-1 के अनुसार अखबारी कागज उत्पादन मिलें घोषित किया गया है) उनकी कुल स्थापित क्षमता 5 40 लाख टन है।

वर्ष 1994-95 के दौरान अखबारी कागज का अनुमानित उत्पादन 4 00 लाख टन है जबकि 1993-94 के दौरान इसका कुल वास्तविक उत्पादन 3 61 लाख टन था।

देश मे अखबारी कागज की आवश्यकता को स्वदेशी उत्पादन और आयात दोनों प्रकार से पूरा किया जा रहा है। देश अखबारी कागज के आयात पर प्रतिवर्ष लगभग 300 करोड रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च कर रहा है। वर्ष 1993-94 में 2 02 लाख टन अखबारी कागज का आयात किया गया।

आठवीं योजना में अखबारी कागज को दो प्रमुख परियोजनाए कार्यान्वित की गईं—89,000 टन प्रतिवर्ष और 200 टन प्रतिदिन कम्पोजिट अखबारी कागज की क्षमता के साथ नेपा की "उत्तर प्रदेश व गैस बेस्ड न्यूजप्रिंट परियोजना" और पजाब एग्रो न्यूजप्रिंट लिमिटेड की "प्रिंटिंग एड राइटिंग पेपर परियोजना" इन दोनों परियोजनाओं का आठवीं योजना के अत तक यानि 1997 में पूरे होने की बात है।

अखबारी कागज के उत्पादन में अत्यधिक पूजी लगती है और उद्योग को स्थापित करने में काफी समय लगता है। यद्यपि, मूल्यों पर नियत्रण नहीं है लेकिन लाभप्रदता अपेक्षाकृत कम है और निजी क्षेत्र अखबारी कागज के उत्पादन कार्य में आगे नही आता है। नई चीनी क्षमता के साथ खोई पर आधारित अतिरिक्त क्षमता के सृजन को बढावा देने की आवश्यकता है। ऐसी समन्वित चीनी अखबारी कागज यूनिटों को कई प्रकार के बाहरी लाभ होंगे और दोनों उद्योगों की क्षमता में सुधार होगा।

दूसरी तरफ, सरकार ने अखबारी कागज के आयात को कम करने के उद्देश्य से औद्योगिक लाइसेंस/ आशयपत्रों द्वारा 6 90 लाख टन की अतिरिक्त क्षमता की स्वीकृति दी है। इसके अलावा 15 77 लाख टन की क्षमता के लिए अक्टूबर, 1994 तक 30 औद्योगिक उद्यमी ज्ञापन दाखिल किए जा चुके हैं। जो मिलें बी आई एस मानक के अनुरूप अखबारी कागज बना रही हैं और जो समाचार-पत्रों के लिए सतोषजनक गुणवत्ता वाला कागज मुहैया करा रही हैं, उन्हें अखबारी कागज नियत्रण आदेश 1962 की अनुसूची 1 में शामिल करने के लिए विचार किया जा रहा है।

अखबारी कागज मिलों के उत्पादन में सुधार करने और उनकी वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए विभिन्न नीति सबधी उपाय किए गए हैं जैसे कि खोई, कृषि, अवशिष्ट पदार्थ और अन्य गैर पारम्परिक किस्म का कच्चा माल प्रयोग करके बनाई गई 75

प्रतिशत लुगदी, अखबारी कागज को लाइसेंस मुक्त करना, अखबारी कागज के विनिर्माण के लिए लकड़ी, लुगदी का शुल्क मुक्त आयात और अखबारी कागज के उत्पाद शुल्क से छूट देना। □

12

भावी ऊर्जा संकट और उसका समाधान

धनंजय आचार्य

किसी भी देश का सामाजिक और आर्थिक विकास वहा के ऊर्जा ससाधनों के विकास से जुडा होता है। सच तो यह है कि सामाजिक-आर्थिक विकास और ऊर्जा का विकास तत्सम्बन्धित देश की उन्नति के सन्दर्भ में एक दूसरे के पर्याय हैं। आज हमारी 90 प्रतिशत ऊर्जा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कोयला, खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस जैसे परम्परागत ऊर्जा स्रोतों से हो रही है, किन्तु परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के भडार सीमित हैं। साथ ही ऊर्जा की खपत में भी प्रतिवर्ष 7.5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है। अत यदि वर्तमान दर से ही, परम्परागत ऊर्जा ससाधनों का उपयोग होता रहा तो आगामी 50 वर्षों में कोयला, 15 वर्षों में खनिज तेल, 20 वर्षों में प्राकृतिक गैस और 100 वर्षों में यूरेनियम तथा परमाणु ईंधन के भडार समाप्त हो जाएगे। स्पष्ट है, भविष्य में हमें गहन ऊर्जा सकट का सामना करना पडेगा। भावी ऊर्जा सकट से निपटने के लिए हमें अभी से सचेष्ट होकर निम्न तीन वातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

(1) नए परम्परागत ऊर्जा स्रोत भडारों का पता लगाना।

(2) *ऊर्जा का सरक्षण, तथा*

(3) ऊर्जा के नए विकल्पों की खोज।

नए परम्परागत ऊर्जा स्रोत भंडारों का पता लगाना

भावी ऊर्जा सकट के मद्देनजर, हमें पूरी तत्परता एव तन्मयता से अभी से ही नए परम्परागत ऊर्जा स्रोत भडारों की खोज प्रारम्भ कर देनी चाहिए। वर्तमान कोयले, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, यूरेनियम तथा थोरियम के ज्ञात भडारों के अतिरिक्त हमारे देश में इन खनिजों के पर्याप्त सचित भडार मिलने की प्रबल सभावनाए हैं। आवश्यकता है नवीन तकनीकों का प्रयोग कर उनकी खोज करने की। यहा जल विद्युत के विकास की भी पर्याप्त भौगोलिक दशाए मौजूद हैं, जिनका समुचित उपयोग अपेक्षित है।

ऊर्जा का संरक्षण

भारत में तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि के कारण ऊर्जा की बढ़ती मांग, ऊर्जा के परम्परागत स्रोतों के घटते भंडार एवं मात्र अपने सम्बन्ध में सोचने की प्रवृत्ति ने भावी ऊर्जा संकट की समस्या खड़ी कर दी है। अतः भावी ऊर्जा संकट से निपटने के लिये ऊर्जा का संरक्षण भी अत्यावश्यक है। ऊर्जा संरक्षण के क्रम में हमें सर्वप्रथम कोयला, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस तथा जल विद्युत पर ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि ये सब मूलभूत परम्परागत ऊर्जा स्रोत हैं। कोयले के संरक्षण के लिए निम्न तरीके कारगर सिद्ध हो सकते हैं—

खानों से खुदाई के समय कोयले की बर्बादी को रोका जाए, कोयले के शुद्धीकरण के लिए कोल-निरीरेशन प्लान्ट का उपयोग किया जाए। घटिया किस्म के कोयले को वैज्ञानिक अनुसंधानों के द्वारा उपयोगी बनाया जाए, कोयले के उपोत्पादन का समुचित उपयोग किया जाए। भट्टियों में स्वचालित स्टोकर्स प्रयुक्त किए जाए। कोयला खदानों में लगने वाली आग की रोकथाम की जाए।

हमारे देश में कोयले के बाद पेट्रोलियम दूसरा महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत है। खासकर सड़क तथा रेल परिवहन के क्षेत्र में तो इसका योगदान काफी महत्वपूर्ण है। हमारे देश में सड़कों द्वारा ढोये जाने वाले 80 प्रतिशत यात्री तथा 49 प्रतिशत माल डीजल या पेट्रोल चालित वाहनों से ही ढोये जा रहे हैं। वर्तमान में हमें अपनी मांग की पूर्ति के लिए विदेशों से तेल आयात करना पड़ रहा है, जिससे प्रतिवर्ष लगभग 16,000 करोड़ रुपये मूल्य के बराबर विदेशी मुद्रा व्यय करना पड़ रहा है। इतना ही नहीं तेल की खपत प्रतिवर्ष 8.5 प्रतिशत की दर से बढ़ भी रही है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए खनिज तेल के नए भंडारों का पता लगाने के साथ-साथ इसका संरक्षण करना भी अत्यावश्यक है। निम्नांकित उपाय अमल में लाकर हम खनिज तेल का संरक्षण कर सकते हैं—

- तेल की हर प्रकार की बर्बादी को रोका जाए।
- तेल निकालने के लिए उच्च तकनीकों, यंत्रों एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाए।
- तेल निकालने के क्रम में तेलकूपों से निकलने वाली गैसों का संचयन उचित तरीके से किया जाए।
- तेल उत्पादन पर नियंत्रण रखा जाए।

पर्वतीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्रोत लकड़ी है। लेकिन विगत दो दशकों से हमारे देश में इसका अत्यधिक दुरुपयोग प्रारंभ हो गया है। इसके दुरुपयोग से जहां पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई है, वहीं गरीब परिवारों के समक्ष ऊर्जा संकट भी उत्पन्न हो गया है। अत: ऊर्जा के इस स्रोत का संरक्षण

भी अत्यावश्यक है। इसके सरक्षण के लिए निम्न तरीके अपनाए जाने चाहिए—

- व्यापारिक विदोहन पर नियत्रण रखा जाए।
- उतने ही पेड काटे जाए जितने लगाए जाए।
- चारा व ईंधन के लिए उपयोगी, दीर्घकाल तक पुनर्जीवित होने की क्षमता रखने वाले वृक्ष लगाये जाए।
- वृक्षारोपण कार्यक्रम को पूरे देश में एक जन-आन्दोलन का स्वरूप देकर चलाया जाए।

जलविद्युत हमारे देश में ऊर्जा का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसके सरक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाकर अनावश्यक खपत एव बर्बादी को नियत्रित कर नए स्रोतों का पता लगाया जाना चाहिए। इसी प्रकार अणु शक्ति का भी समुचित उपयोग एव सरक्षण जरूरी है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि उपरोक्त सुझावों को ध्यान में रखकर हम परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का सरक्षण कर सकते हैं।

ऊर्जा के नए विकल्पो की खोज

औद्योगिक तथा घरेलू कार्यों के लिए ऊर्जा की दिनोंदिन बढती माग को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि परम्परागत ऊर्जा स्रोतों के विकल्प खोजे जाए क्योंकि वर्तमान ज्ञात परम्परागत ऊर्जा स्रोत तीव्रगति से समाप्त होते जा रहे हैं। साथ ही परम्परागत ऊर्जा, पर्यावरण प्रदूषण को भी जन्म दे रही है, जो आज जीव समुदाय के लिए गभीर समस्या बनी हुई है।

जब हम भावी ऊर्जा सकट के विकल्पों की बात सोचते हैं तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान गैर-परम्परागत ऊर्जा स्रोतों की ओर जाता है। इसमें पवन, सूर्य, जल, लकडी, गोबर आदि से प्राप्त होने वाली ऊर्जा को सम्मिलित किया जाता है। ये कभी न समाप्त होने वाले ऊर्जा स्रोत हैं। भारत में गैर पारम्परिक ऊर्जा की कुल सभावित क्षमता लगभग 2,00,000 मेगावाट के बराबर है, जिसमें 31 प्रतिशत सौर ऊर्जा मे, 31 प्रतिशत समुद्र जल से, 25 प्रतिशत बायोफ्यूल से, 12 प्रतिशत वायु से तथा 2 प्रतिशत अन्य तरीकों से प्राप्त की जा सकती है। गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों का विवरण निम्न प्रकार से है—

सौर ऊर्जा—आज सौर ऊर्जा, ऊर्जा के सबसे बडे स्रोत के रूप में उभर कर सामने आयी है। सूर्य एक विशाल परमाणु रिएक्टर है जिसमें हाइड्रोजन लगातार उच्च तापमान तथा दाब पर जल रहा है और ऊर्जा को उत्पन्न कर उत्सर्जित कर रहा है। स्पष्ट है, सूर्य ऊर्जा का अगाध भडार है, जो कभी न खत्म होने वाला है। सौर ऊर्जा का उपयोग समुद्र जल से ताजा जल तैयार करने, खाना पकाने, रोशनी करने, छोटे पम्प एव मोटर वाहन चलाने, कारखानों, होटलों और सरकारी भवनों में पानी गर्म करने आदि में सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

खासकर अतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में सौर ऊर्जा का महत्त्व तो और भी अधिक है क्योंकि इसके द्वारा वायुयानों, राकेटों तथा कृत्रिम उपग्रहों में ईंधन की समस्या का समाधान अतरिक्ष में ही सभव हो सकता है। अत इसके उपयोग से भारी मात्रा में कोयले, पेट्रोल, जल विद्युत एव लकडी की बचत होगी तथा पर्यावरणीय सतुलन भी कायम रहेगा।

हमारे देश में इस दिशा में केन्द्रीय भवन अनुसधान सस्थान, राष्ट्रीय भू भौतिक प्रयोगशाला तथा केन्द्रीय नमक व समुद्री रसायन सस्थान के वैज्ञानिक शोधरत हैं तथा इस दिशा में वैज्ञानिकों को आशिक सफलता मिल भी चुकी है। वर्तमान में हमारे देश में सौर ऊर्जा का उपयोग सोलर कुकर तथा आशिक रूप से जल को गर्म करने, ताजा जल तैयार करने आदि में हो रहा है। निसदेह भविष्य में सौर-ऊर्जा भावी ऊर्जा सकट का एक सशक्त विकल्प साबित होगा।

ज्वारीय ऊर्जा—भारत का समुद्री तट काफी विस्तृत है और हम जानते हैं कि समुद्री ज्वार में असीम शक्ति है। अत समुद्री ज्वार से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए यहा पर्याप्त भौगोलिक सुविधाए हैं। साथ ही इसके विकास के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान भी हमारे पास उपलब्ध है। इस तकनीकी ज्ञान के सहारे भौगोलिक सुविधाओं का उपयोग कर यहा वृहद पैमाने पर विद्युत उत्पादन की सभावनाए हैं। खुशी की बात है कि इस दिशा में हमारे वैज्ञानिक शोधरत हैं। अनेक परीक्षणोपरान्त अब तक चार समुद्री तटस्थलों का चुनाव किया गया है, जहा ज्वारीय विद्युत उत्पादन के सर्वाधिक अनुकूल भौगोलिक परिस्थितिया हैं। ये तट स्थल हैं—सुन्दरवन स्थित गगा डेल्टा का क्षेत्र, खम्भात की खाडी का क्षेत्र, कच्छ की खाडी का क्षेत्र तथा अण्डमान निकोबार द्वीप समूह के चारों ओर का क्षेत्र। समुद्री लहरों से विद्युत बनाने का भारत को पहला सयत्र की उत्पादन क्षमता 150 मेगावाट विद्युत उत्पादन की है। अभी कच्छ की खाडी में भी एक ज्वारीय विद्युत उत्पादन सयत्र निर्माणाधीन है। इस सयत्र की सस्थापित उत्पादन क्षमता 900 मेगावाट की है। परियोजना के पूर्ण हो जाने के उपरान्त यहा सस्थापित बिजली घरों में कुल 36 यूनिटें होंगी, जिसमें प्रत्येक की उत्पादन क्षमता 25 मेगावाट की होगी। इसका निर्माण कार्य नेशनल पावर कारपोरेशन द्वारा सम्पादित किया जा रहा है तथा दिसम्बर 1995 तक इसके पूर्ण हो जाने की सभावना है।

भारत में ज्वारीय विद्युत उत्पादन न केवल खर्च के हिसाब से व्यावहारिक है, बल्कि गैस और कचरे पर आधारित अन्य परियोजनाओं के मुकाबले उपयुक्त और सस्ती भी होगी। इसका सर्वप्रमुख लाभ यह होगा कि इससे प्राप्त होने वाली बिजली प्रदूषण मुक्त होगी तथा विद्युत उत्पादन के लिए मौसम पर भी निर्भर नहीं रहना पडेगा। पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार इससे पर्यावरण या जलवायविक दशाओं पर भी कोई बुरा प्रभाव नहीं पडेगा। समुद्री जीव-जन्तुओं, निकटस्थ जीव समुदायों अथवा वन्य प्राणियों पर भी इसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पडेगा। ज्वारीय विद्युत उत्पादन से, पारम्परिक ऊर्जा

स्रोतों के अधिक इस्तेमाल से उत्पन्न होने वाली पर्यावरणीय समस्याओं से भी छुटकारा मिल जाएगा। भूमि के धसने, वनों के विनाश होने तथा लोगों के विस्थापन की समस्याए जो मुख्य रूप से जल विद्युत परियोजनाओं के कारण उत्पन्न होती हैं, से भी हम लोग बच जाएगे। स्पष्ट है, कि भारत के लिए ज्वारीय विद्युत उत्पादन एक लाभकारी योजना है।

भू-तापीय ऊर्जा—भूपर्पटी के नीचे भूगर्भ तक तापमान में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। पृथ्वी के अदर यह उष्मा, रेडियो सक्रिय खनिजों के विखडन अथवा विविध प्रकार के चुम्बकीय, यांत्रिक या रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा उत्पन्न होती है। इस उष्मा का उपयोग भी ऊर्जा समाधन के रूप में किया जा सकता है। हमारे देश में भू-तापीय ऊर्जा प्राप्ति के विस्तृत सभावित क्षेत्र है, जिसमें हिमालय नागा सुशाई भू तापीय प्रदेश, पश्चिमी तटीय भू तापीय प्रदेश, पूर्वी भारत आर्कियन भू तापीय प्रदेश, अण्डमान निकोबार भू तापीय प्रदेश, उत्तर भारतीय प्री-केम्ब्रियन भू-तापीय प्रदेश, कैम्बे-ग्रेबर भू-तापीय प्रदेश आदि विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

यहा भू-तापीय ऊर्जा का उपयोग भवनों को उष्मित करने, फल सब्जी आदि के शीतलन भडारों को शीतल करने के लिए, हरित कृषि तथा अतरण, सुख साधनों और अप्रत्यक्ष उष्मा उपयोगों में करके वृहद् पैमाने पर परम्परागत ऊर्जा की बचत की जा सकती है। वर्तमान में भारत में इस प्रकार की परियोजनाए लद्दाख की पूगा घाटी तथा मणिकर्ण में क्रियाशील हैं।

परमाणु ऊर्जा—परमाणु ऊर्जा वह ऊर्जा है जो परमाणुओं के विखण्डन से प्राप्त होती है। परमाणु ऊर्जा के लिए यूरेनियम, थोरियम, लिथियम, बैरिलियम आदि खनिजों की आवश्यकता होती है। सौभाग्य से हमारे देश में इन खनिजों के पर्याप्त सचित भडार हैं। अत यहा वृहद् स्तर पर अणुशक्ति द्वारा विद्युत उत्पादन कर उद्योग-धधों एव अन्य प्रयोजनों में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। वर्तमान में अणुशक्ति का अत्यधिक महत्त्व है। यह टेक्नोलाजी की ऐसी नवीनतम कडी है, जिस पर 21वीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति निर्भर है। देश के सीमित ऊर्जा समाधनों को देखते हुए इसकी महत्ता और भी बढ गई है। इसका समुचित उपयोग किया जाना चाहिए।

गोबर गैस ऊर्जा—भारत में पर्याप्त सख्या में पशु पाले जाते हैं। इससे प्राप्त अधिकाश गोबर तथा मलमूत्र का उपयोग जलावन तथा फसलों में खाद के रूप में किया जाता है। गोबर से बहुत कम लागत पर गोबर गैस का उत्पादन होता है, जिसका उपयोग खाना पकाने, रोशनी करने तथा छोटे छोटे कुटीर उद्योगों में सफलतापूर्वक हो सकता है। भारत में राष्ट्रीय बायोगैस विकास परियोजना इस दिशा में क्रियाशील है। मार्च 1993 तक देश में 17 63 लाख बायोगेस सयत्र स्थापित किए जा चुके थे। 1993-94 में और 1.5 लाख बायोगैस प्लान्ट लगाए गए। एक अनुमान के अनुसार भारत में बायोगैस से 17 हजार मेगावाट ऊर्जा उत्पादन की सभावना है। गोबर गैस प्लान्ट का अपविष्ट उत्तम

खाद भी होता है। जिसका प्रयोग कर फसलोत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि सभव है।

पवन ऊर्जा—ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोतों में पवन शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। पवन में असीम शक्ति है, जिसका उपयोग पवन-चक्की सयत्र द्वारा विद्युत उत्पादन कर कूपों से जल निकालने, आटा-चक्की चलाने, फसलों की कटाई और उसे तैयार करने में किया जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार देश में पवन शक्ति से 30,000 मेगावाट बिजली उत्पादन की क्षमता है। इस क्षेत्र में सरकार सकारात्मक प्रयास कर रही है। दिसम्बर 1994 तक देश में कुल 802 पवन चक्की केन्द्र तथा लगभग 300 वायु सचालन केन्द्र स्थापित किए जा चुके थे। 1994 के अन्त तक पवन चक्कियों द्वारा कुल 62 मेगावाट विद्युत उत्पादन किया जाने लगा था।

अपविष्ट पदार्थों से प्राप्त ऊर्जा—भारत में विविध ऐसे अपविष्ट पदार्थ हैं, जिनका उपयोग नहीं होता है, वे यू ही बर्बाद होकर पर्यावरणीय असतुलन की अभिवृद्धि ही करते हैं इन अपविष्ट पदार्थों से ऊर्जा प्राप्त करने की तकनीक अब विकसित हो चुकी है। अत इनका समुचित उपयोग अपेक्षित है। कुछ प्रमुख अपविष्ट पदार्थ जिनसे विद्युत उत्पादन या ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है, निम्नलिखित हैं

लिग्नाइट कोयला से तेल निकालना—हमारे देश में लिग्नाइट कोयला प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। देश में ऊर्जा ससाधनों की कमी को देखते हुए इस प्रकार के कोयले से तेल तथा कृत्रिम पेट्रोल बनाया जा सकता है। जर्मनी और इग्लैंड में घटिया किस्म के कोयले से भारी मात्रा में तेल निकाला जा रहा है। अत भारत में भी लिग्नाइट कोयले का उपयोग तेल तथा पेट्रोल बनाने में किया जाना चाहिए।

पावर अल्कोहल बनाना—भारत में आलू, गन्ना, चुकन्दर तथा तिलहन का पर्याप्त उत्पादन होता है। इन पदार्थों की जड़ों तथा तने से अल्कोहल स्प्रिट बनाई जा सकती है, जिसका उपयोग पेट्रोल के साथ मिलाकर कई प्रकार की मशीनों एव इजनों में किया जा सकता है। यहा शक्कर तथा चीनी के कारखानों से प्राप्त करोड़ों टन शीरा से उत्तम किस्म का स्प्रिट बनाया जा सकता है। यद्यपि अब महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश एव बिहार में कुछ स्थानों पर शीरा से अल्कोहल स्प्रिट बनाने के कारखाने स्थापित किए गए हैं तथापि भविष्य में अन्य स्थानों पर भी इस प्रकार के कारखाने स्थापित किये जाने की आवश्यकता है, ताकि प्रतिवर्ष करोड़ों टन शीरा का उपयोग ऊर्जा प्राप्ति के लिए किया जा सके।

विभिन्न प्रकार के बुरादा से तेल प्राप्ति—वैज्ञानिक परीक्षणों के उपरान्त अब यह प्रमाणित हो गया है कि लकडी के बुरादों, व्यर्थ होने वाले पत्तों, विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों की जडों से भी तेल बनाया जा सकता है। हमारे देश में इन पदार्थों कमी नहीं है। अत इन पदार्थों का उपयोग तेल बनाने में किया जाना चाहिए।

धान की भूसी से विद्युत उत्पादन—विगत वर्षों में भारतीय प्रौद्योगिकी सस्थान, नई

दिल्ली के रसायन इजीनियरी विभाग के वैज्ञानिकों ने एक ऐसी प्रौद्योगिकी विकसित की है, जिसके द्वारा चावल की भूसी मे विजली पैदा की जा सकती है। अध्ययनों के अनुसार प्रतिघटा 250 किलोग्राम धान की भूसी समाधित करने वाले सयत्र से 122 किलोवाट विद्युत उत्पादित हो सकती है। यदि इस विद्युत उत्पादन का कुछ भाग चावल मिल को चलाने में भी प्रयुक्त किया जाए, तो भी अतिरिक्त विजली बचेगी, जिसका उपयोग अन्य कार्यों में किया जा सकता है। चावल की भूसी को हवा की अनुपस्थिति में 350 सेंटीग्रेड तापमान पर जलाने पर ज्वलनशील गैसें—हाइड्रोजन, कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड तथा मिथेन का मिश्रण होता है। इस गैस का उपयोग जेनेरेटरों में जिसमें ईंधन के रूप में डीजल व गैस दोनों प्रयुक्त होते हैं, किया जा सकता है।

ठोस कचरे से ऊर्जा—आज नगरीय जनसख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। जनसख्या वृद्धि से अनेक नई-नई समस्याओं का उद्‌भव भी होता जा रहा है। इसमें अब एक नई समस्या और जुड गई है—ठोस कचरे को ठिकाने लगाने की। कलकत्ता और बम्बई जैसे महानगरों में हर दिन सैकडों टन ठोस कचरा निकलता है। वैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर ठोस कचरे को इसीनरेटरों में जलाकर प्राप्त ऊष्मा को अन्य प्रकार की ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है।

साधारणत नगरीय कचरे में कार्वनिक पदार्थों की मात्रा अधिक रहती है, इसलिए इसे ईंधन गैसों में बदलना आर्थिक और तकनीकी रूप से सुविधाजनक होता है। कचरे में विद्यमान कार्वनिक पदार्थों को वायु की अनुपस्थिति में 530 से 600 सेन्टीग्रेड तापमान पर गर्म करने से कचरे की प्रकृति के अनुसार हल्के तेल, कार्वनिक एसिड, एल्कोहल तथा ईंधन गैसें प्राप्त होती हैं। ये सभी आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त लाभदायी होते हैं।

शुष्क एव कम आर्द्रता वाले कचरे को उच्च ताप एव दाव पर हाइड्रोजन गैस से उपचारित करने से मिथेन नायक अत्यधिक ज्वलनशील गैस प्राप्त होती है, जिसका उपयोग भिन्न भिन्न कार्यों में हो सकता है। इसी प्रकार गीले कचरे के छोटे छोटे टुकडों को बन्द कुन्दों में मिथेन उत्पन्न करने वाले वैक्टीरिया की उपस्थिति में सडाने पर ये वैक्टीरिया कचरे में उपस्थित जटिल कार्वनिक पदार्थों को मिथेन कार्वनडाईआक्साइड में वदल देते है। इन गैसों के मिश्रण का ईंधन मान भी काफी उच्च होता है।

निष्कर्ष—यदि हम अभी से उपरोक्त वातों के प्रति सचेष्ट होकर सकारात्मक प्रयास प्रारभ कर दें तो आने वाले वर्षों में हम न सिर्फ ऊर्जा के मामले में आत्मनिर्भर हो जाएँगे, भावी ऊर्जा के सकट की सभावना भी खत्म हो जाएगी। हमारे देश में ऊर्जा स्रोतों की कमी नहीं है। आवश्यकता है उन समस्त स्रोतों के सही एव सुनियोजित ढग से उत्पादन एव उपभोग करने की।

यह हर्ष की बात है कि भारत सरकार ऊर्जा के विकल्प की खोज में सतत् प्रयत्नशील है। सरकार ने ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोतों के अन्वेषण एव उनकी

कार्यशीलता के लिए 12 मार्च, 1981 को एक उच्चाधिकार प्राप्त आयोग गठित करके तथा सितम्बर 1982 को गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत विभाग का गठन कर इस क्षेत्र में तन्मयता से प्रयास प्रारंभ कर दिया है। जुलाई 1992 में इस विभाग को मंत्रालय को दर्जा प्रदान कर सरकार ने इसे और प्रभावी तथा महत्त्वपूर्ण बना दिया है। □

आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय

जी.एल. झारिया एवं आर.के. तिवारी

देश में समृद्धि लाने गरीबी दूर करने व सामाजिक न्याय स्थापित करने की बातें काफी हो चुकी हैं और कुछ हद तक सफलता भी मिली है लेकिन इस समृद्धि से उन लोगों को क्या हासिल हुआ जिनके परिश्रम के बल पर समृद्धि आई है। वे तो आज भी यथा स्थान हैं, वस्तुत उपभोक्तावादी संस्कृति ने केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया, परिणामस्वरूप विश्व के सर्वाधिक समृद्धशाली राष्ट्र अमरीका के पास विश्व के संसाधनों का 55 प्रतिशत भाग केन्द्रित है, जबकि विश्व की मात्र 5 प्रतिशत जनसख्या ही वहा निवास करती है। इतना ही नहीं बल्कि वे सभी विकसित राष्ट्र जिनकी जनसख्या मात्र 15.4 प्रतिशत है, विश्व के 78.2 प्रतिशत संसाधनों पर अधिकार जमाये बैठे हैं। ये राष्ट्र किसी न किसी प्रकार से विश्व के विकासशील एव अविकसित देशों को अपने मकड़जाल में फसा कर इस सीमा को बरकरार बनाये रखना चाहते हैं। इस स्थिति में विकास के साथ साथ सामाजिक न्याय में विसगतियों का होना स्वाभाविक है।

आर्थिक वृद्धि से आशय

वृद्धि एक सामान्य प्रक्रिया है जो स्वत सचालित होती रहती है। इसमें जनसख्या, बचत, आय में वृद्धि की गति प्राकृतिक होती है। अर्थात आय के साथ प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने से जीवन स्तर में वृद्धि हो जाती है तथा जीवन स्तर मुख्यत उपभोग के स्तर पर निर्भर करता है। अत उपभोग व जीवन स्तर में वृद्धि आर्थिक विकास का सही मापदण्ड है। आधुनिक अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का अच्छा मापदण्ड मानते हैं, बशर्ते न्यायोचित वितरण एव जीवन स्तर में वृद्धि होनी चाहिये। सयुक्त राष्ट्र सघ की रिपोर्ट के अनुसार—"विकास मानव की भौतिक आवश्यकताओं से नहीं अपितु उनके जीवन की सामाजिक दशाओं के सुधार से सम्बन्धित है। अत विकास न केवल आर्थिक वृद्धि ही है, अपितु आर्थिक वृद्धि और सामाजिक-सास्कृतिक सस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तनों का योग है।" इस प्रकार स्पष्ट कहा जा सकता है कि चन्द मुट्ठी भर लोगों के पास सम्पत्ति का केन्द्रीकरण हो जाने को आर्थिक विकास नहीं कहा जा सकता, अपितु सम्पत्ति में वृद्धि के साथ साथ उसके समान वितरण से जीवन स्तर में वृद्धि

को ही आर्थिक समृद्धि कहा जायेगा।

सामाजिक न्याय से आशय

वैदिक काल से ही सामाजिक न्याय व्यवस्था, भारत की विशेषता रही है। वेदों में इसका उल्लेख मिला है, "सर्वेभवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुख भाग भवेत्॥ अर्थात् सभी सुखी रहें, सभी निरोग रहें, सबका कल्याण हो, कोई भी दुख का भागीदार न बने। स्पष्ट है कि वैदिक दर्शन में सामाजिक न्याय की प्रधानता रही है। इसी धारणा को भारतीय सविधान में भी साकार रूप प्रदान करते हुए राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों के अन्तर्गत कहा गया है कि "राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी सस्थाओं को अनुप्रमाणित कर, भरसक कार्यसाधक रूप में स्थापना और सरक्षण करके लोक कल्याण की उन्नति का प्रयास करेगा।" इस प्रकार सामाजिक न्याय से आशय है कि, एक राष्ट्र के सभी नागरिकों को बगैर भेदभाव के जीवन-यापन हेतु यथेष्ठ तथा समान अवसर दिये जाए, समान कार्य के लिये समान मजदूरी दी जाए, आर्थिक उन्नति करने के लिये सबको रोजगार के समान अवसर दिये जाए, इसके साथ ही समाज के पिछडे कमजोर वर्गो को सरक्षण प्रदान किया जाए ताकि वे अन्य नागरिकों की भाति अपना विकास कर सकें।

भारत के सदर्भ में कहा जा सकता है कि स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् योजनाबद्ध विकास के साथ उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, किन्तु इसके साथ साथ आर्थिक एव सामाजिक सरचना के विविध घटकों में विषमता बढी है, परिणामस्वरूप देश में केन्द्रीकरण की स्थिति उत्पन्न हुई और समयानुसार बलवती होती गई। आर्थिक विषमता को जन्म देने वाले घटक निम्नानुसार हैं—

विनियोग नीति मे विसगति

वास्तविक भारत ग्रामों में निवास करता है। यहा की 80 प्रतिशत जनसख्या ग्रामीण है, किन्तु हमारे सारे विनियोजन 20 प्रतिशत जनसख्या के लिये है। स्वतत्र भारत में देश के सर्वांगीण विकास के लिए योजनाबद्ध विकास की रूपरेखा रखी गई है, उसमें काफी विसगतिया रही हैं। प्रथम पचवर्षीय योजना में ग्रामों को वरीयता देकर कृषि और ग्रामोद्योगों पर विशेष बल दिया गया और कृषि एव लघु ग्रामोद्योग, सगठित उद्योग, खदानें इन चारों मदों में कुल विनियोग का क्रमश 74 9 और 10 9 प्रतिशत कृषि एव लघु ग्रामीण उद्योग इन दो मदों पर विनियोजित किया गया। सगठित उद्योग एव खानों में मात्र 14 2 प्रतिशत धन लगाया गया। किन्तु द्वितीय पचवर्षीय योजना मे लेकर आठवीं पचवर्षीय योजना तक कृषि में विनियोग विपरीत हो गया। सातवीं पचवर्षीय योजना में इन चार मदों में से कृषि एव ग्रामीण उद्योगों पर कुल व्यय का क्रमश 34.8 तथा 4.5 प्रतिशत व्यय हुआ। जबकि खान एव सगठित उद्योगों में 60 7 प्रतिशत तक

धन लगाया गया।

आठवीं पचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष 1992 93 में ग्रामीण विकास के लिये 3,100 करोड रुपये व्यय करने का प्रावधान रखा गया है, जबकि 1991-92 में यह राशि 3508 करोड रुपये थी। इसी प्रकार कृषि हेतु 1049 करोड 75 लाख रुपये आवटित किये गये जो पूर्व वर्ष की तुलना में मात्र 3 प्रतिशत अधिक हैं, किन्तु विडम्बना यह है कि ग्रामीण विकास के लिये बजट का मात्र 20 प्रतिशत भाग रखा गया। उद्योग नियोजित तथा आश्रित जनसख्या अवलोकन से पता चलता है कि कृषि एव ग्रामीण उद्योगों में लगभग 86 प्रतिशत तथा 14 प्रतिशत जनसख्या विनिर्मित उद्योगों में लगी हुई है। जिन क्षेत्रों में 14 प्रतिशत जनसख्या लगी है, उसमें 60 प्रतिशत से अधिक, तथा जिनमें 86 प्रतिशत जनसख्या लगी है, उसमें 40 प्रतिशत से कम पूजी विनियोजित की गई है। विनियोजन नीति का अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पडा। जहा अधिक विनियोग हुआ वहा प्रगति की गति अधिक तेज हो गई, वह क्षेत्र विकास में आगे बढ गया। यही कारण है कि औद्योगिक क्षेत्र में 1950 51 की अपेक्षा 1990-91 में उत्पादन में 10 गुना वृद्धि हो गई है। कृषि क्षेत्र विभेद के कारण पीछे रह गया, कृषि क्षेत्र में तीन गुना वृद्धि हो पायी।

कृषि पर आश्रित जनसख्या के अनुपात में कृषि का विकास न होने के कारण राष्ट्रीय उत्पादन में कृषि का योगदान कम हो गया। औद्योगिक क्षेत्र का अश अपेक्षाकृत बढता चला गया, परिणामस्वरूप ग्रामीण एव शहरी क्षेत्रों में निरन्तर विषमता का विस्तार होता चला गया। हमारी आर्थिक विषमता का चित्र यह दर्शाता है कि आधी जनसख्या की आय 5 प्रतिशत सुविधा सम्पन्न लोगों के बराबर है। राष्ट्रीय सम्पत्ति के लगभग आधे के मालिक सम्पन्न वर्ग के 10 प्रतिशत लोग हैं जबकि सबसे गरीब 10 प्रतिशत लोगों के पास राष्ट्रीय सम्पत्ति का 0 1 प्रतिशत है। देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा केवल 6.8 प्रतिशत राष्ट्रीय सम्पत्ति का मालिक है, जबकि एक प्रतिशत सम्पन्न लोगों के पास राष्ट्रीय सम्पत्ति का 15 प्रतिशत भाग है। यह हमारी आर्थिक प्रगति एव सामाजिक न्याय का एक चित्र है जो यह बतलाता है कि योजनाबद्ध विकास ने गरीब को और अधिक गरीब तथा अमीर को और अधिक अमीर बनाया है। सरकारी आकडों के अनुसार देश की 37 प्रतिशत जनसख्या आज भी गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन कर रही है। अत विनियोग की इस विसगति को दूर कर समाज के 80 प्रतिशत लोगों को लक्षित कर विनियोजन किया जाना चाहिये। तभी सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक समृद्धि को प्राप्त किया जा सकता है।

आयातित तकनीक बनाम बेरोजगारी मे वृद्धि

स्वदेशी तकनीक को विकास आधार न मानकर विदेशी तकनीक पर निर्भरता बढ़ने से जहा एक ओर देश मे तकनीकी विकास अवरुद्ध हुआ है, वहीं दूसरी ओर विदेशों पर निर्भरता में वृद्धि होती जा रही है। वर्ष 1980 के बाद देश में उदारीकरण की नीति

अपनाई गई तथा विदेशी तकनीक को आयातित करने की छूट दी गई इससे प्राय सभी उद्योगपति स्वदेशी तकनीक का उपयोग छोड़कर विदेशी तकनीक अपनाने लगे, परिणामस्वरूप उनके लाभों में वृद्धि हुई किन्तु देश के मानवीय संसाधन की शक्ति व्यर्थ होने लगी। आज 10 अरब मानव श्रम दिन हर वर्ष बिना काम के नष्ट हो रहा है। आठवीं पंचवर्षीय योजना काल तक पहुचते-पहुचते देश की यह स्थिति हो गई कि देश में 40 करोड़ के लगभग लोग बेकार और अर्द्ध-बेरोजगार हो गए। साथ ही बाजार में विदेशी कम्पनियों का प्रभुत्व बढ़ता गया। देश में लगभग 1700 विदेशी कम्पनियों ने प्रवेश कर लिया जो गावों के घरों को उजाड रहे हैं। अत देश के श्रमजीवी, मानवीय अस्मिता से उखड़ी हुई जिंदगी जीने के लिये विवश हो गये हैं। श्रमशक्ति एवं प्रतिभा विवश, कुंठित तथा निरुपयोगी हो गई है। इसके साथ ही भारी मात्रा में देश की सम्पत्ति विदेशों को जाने लगी, तकनीक के आयात तथा विदेशी कम्पनियों की स्थापना से आर्थिक समृद्धि तो बढ़ी है किन्तु इसका बहुत बड़ा भाग विदेशों को चला जा रहा है, शेष जो भाग भारत में बच जाता है, वह कुछ गिने चुने औद्योगिक घरानों में केन्द्रित होता जा रहा है। आज देश जिस रास्ते पर बढ़ता जा रहा है, क्या यह देश के आम नागरिकों का रास्ता है ? अथवा 15 करोड़ लोगों का रास्ता है, इस प्रकार देश पूंजीवाद की गिरफ्त में आता जा रहा है, जो सामाजिक न्याय के विरुद्ध है। सामाजिक न्याय की स्थापना के लिये हमें देश में स्वदेशी श्रम प्रधान तकनीक के प्रयोग को बढ़ावा देना होगा।

विदेशी ऋण भार में वृद्धि

विदेशी ऋण की राशि तथा उनका स्वरूप हमारी अर्थव्यवस्था के लिये चिंता का विषय बना हुआ है। विकासशील देशों में भारत सबसे अधिक ऋणग्रस्त देशों में से एक है। भारत में विदेशी ऋण के आकड़े विवादास्पद हैं क्योंकि भारत सरकार और रिजर्व बैंक ऋण सम्बन्धी आकड़ों में काफी विषमताएं हैं। सरकारी आकड़ों के अनुसार गत 5 वर्षों में विदेशी ऋणों की बकाया राशि में ढाई गुना वृद्धि हो गई। वर्ष 1985-86 में जहा 40,311 करोड़ रुपये के विदेशी ऋण थे वहीं 1990-91 के अंत में इनकी राशि बढ़कर 1,00,425 करोड़ हो गई। जबकि आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन, पेरिस ने अपने सर्वेक्षण में भारत के विदेशी ऋणों को, 1989 के अत में देय राशि 71.3 अरब डालर घोषित की है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुसार 1991 में भारत पर 70,876 मिलियन डालर विदेशी कर्ज है। जो हमारे निर्यात के लगभग 4 गुना है तथा कुल ब्याज का भुगतान कुल व्ययों के 24 प्रतिशत तक पहुच गया है। विदेशों से जो ऋण लिया जाता है उसका लगभग 60 प्रतिशत तक पुराने ऋणों को चुकाने में खर्च हो जाता है। देश के प्रत्येक नागरिक पर लगभग 6 हजार रुपये का विदेशी कर्ज है। बढ़ते हुए ऋणों का दबाव सामाजिक न्याय के विपरीत है, क्योंकि अधिकतम ऋण औद्योगिक क्षेत्रों के लिये लिए गये हैं, जिनमें जनसख्या का अल्प भाग लगा है। हमारी आय का वह भाग जिसका उपयोग सामाजिक विकास कार्यों में किया जाना चाहिये था, ऋणों के भुगतान में चला

जाता है। इस प्रकार विदेशी ऋण जहा एक ओर आर्थिक विकास में अवरोधक सिद्ध हो रहा है व दूसरी ओर सामाजिक न्याय के विरुद्ध भी है।

बढता हुआ काला धन बनाम सामाजिक शोषण

काला धन, वह धन है जो समाज के जिस वर्ग को मिलना चाहिये उसे न मिलकर बीच के किन्हीं अन्य लोगों द्वारा छीन लिया जाता है। परिणाम स्वरूप यह धन समाज के आर्थिक एव सामाजिक स्वरूप को विकृत कर देता है। आज की अति उपभोक्तावादी सस्कृति, भौतिकवाद के कारण काले धन की समस्या निरन्तर बढती जा रही है। एक अध्ययन के अनुसार प्रति घंटे 5 7 करोड रुपया काला धन पैदा हो रहा है। सार्वजनिक वित्त एव नीति सस्थान के अनुसार प्रति वर्ष भारत में 90,000 करोड़ रुपये काले धन का निर्माण होता है, जिसमें से 50,000 करोड़ रुपये तस्करी के तथा 40,000 करोड रुपये अन्य अनुचित हथकण्डों के माध्यम से होता है। काले धन के कारण समाज में निरन्तर अमीरी एवं गरीबी की खाई बढती जा रही है। काले धन के कारण उत्पन्न मुद्रास्फीति के परिणामस्वरूप महगाई में वृद्धि हो रही है। रोजगार के अवसरों में कमी आ रही है, तथा समाज में विलासिता एव भ्रष्टाचार बढता जा रहा है। इस प्रकार काले धन के साथ सामाजिक न्याय की स्थापना करना असम्भव प्रतीत हो रहा है।

निजीकरण का बढा स्वरूप

किसी भी देश के सामाजिक-आर्थिक विकास में वहा की सरकार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। औद्योगिक प्रशिक्षण, अनुसधान तथा उद्योगों की स्थापना के लिये एव ससाधनों को जुटाने के लिये सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके साथ ही बचत विनियोग तथा पूजी निर्माण के लिये देश में उचित वातावरण भी सरकार बनाती है। निजी क्षेत्र केवल उन्हीं उद्योगों में पूजी लगाता है, जहा तत्काल लाभ की सभावनाए होती हैं, किन्तु जिनमें लाभ की प्रत्याशा कम होती है तथा जोखिम अधिक होती है। आर्थिक ससाधनों की दृष्टि से भी इसे महत्त्व दिया जाता है, आर्थिक असमानता में कमी, राष्ट्र के सतुलित विकास, आर्थिक स्थिरता, राष्ट्रीय आय में वृद्धि, वित्तीय क्रियाशीलता में समृद्धि आदि के कारण भी सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोग की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जिन्हें निजी क्षेत्रों में नहीं छोडा जा सकता, जैसे—यातायात एव दूरसचार, अस्त्र शस्त्र, उपभोक्ता सरक्षण, गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे लोगों के लिए विकास कार्यक्रम इत्यादि।

नवीन आर्थिक नीति 1991 के अनुसार उदारीकरण के साथ-साथ निजीकरण को भी बढ़ावा दिया गया है। इस नीति के तहत् औद्योगिक रुग्णता की आड में सार्वजनिक उपक्रमों को निजी क्षेत्र के हाथों में सौंप दिया गया। वर्तमान में सार्वजनिक उद्योगों की सख्या घटाकर मात्र आठ कर दी गई। परिणामस्वरूप गिने चुने पूजीवादियों को और अधिक पूजी सगृहीत करने के लिये अवसरों में वृद्धि हो गई है। अत आर्थिक विषमता

में और वृद्धि होगी जिनसे राष्ट्र में सम्पत्ति तो बढेगी किन्तु सामाजिक न्याय के बारे में सोचना बेमानी होगी।

वितरण की विसंगतियां

राष्ट्रीय आय के वितरण के सदर्भ में यह कहा जाता है कि एक निश्चित भाग स्वचालित रूप से समाज के प्रत्येक नागरिक तक पहुच जायेगा, किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। वितरण में इतनी विसगतिया हैं कि इसके द्वारा सामाजिक न्याय की बात सोची भी नहीं जा सकती, अनुत्पादक सेवा में लगे श्रमिकों तथा प्रत्यक्ष में उत्पादक सेवा में लगे श्रमिकों के पारिश्रमिक में विषमताए विद्यमान हैं। एक ओर वे अधिकारी हैं जिन पर हर वर्ष करोडों रुपये व्यय करके प्रशासक, इजीनियर, डॉक्टर तथा तकनीकी क्षेत्र के उच्च अधिकारी बनाए जाते हैं। जब वे सेवा क्षेत्र में आते हैं, उन्हें सर्वोच्च वेतनमान दिया जाता है। यही नहीं उन्हें मकान, चिकित्सा, वाहन, सचार साधन उपलब्ध कराया जाता है। फिर भी वे नकाबपोश हैं जो सर्वाधिक भ्रष्टाचार में लिप्त रहते हैं। अवैधानिक तरीके से इन्हें कितनी आय हो रही है, उनके बगलों एव अन्य सुविधाओं का अध्ययन कर ज्ञात किया जा सकता है। दूसरी ओर वे सामान्य श्रमिक हैं, जो नाम मात्र की शिक्षा, प्रशिक्षण लेकर अपने परिश्रम से पूर्ण मनोयोग से कार्य करते हैं, जिनकी कुशलता सवर्द्धन में देश का नाम मात्र का व्यय होता है, उनका वेतनमान बहुत कम होता है, साथ ही मानवीय सुविधाए जैसे—आवास, शिक्षा, चिकित्सा, आदि भी बहुत निम्नस्तरीय होती हैं। वास्तव में जो उत्पादन करते हैं जो देश की समृद्धि बढाते हैं, और निर्माण के ढाचे को खडा करने के लिये अपना खून पसीना एक कर देते हैं, उन्हें प्रथम वर्ग की तुलना में क्या हासिल होता है, ऐसी स्थिति में स्वचालित वितरण पद्धति द्वारा सामाजिक न्याय की स्थापना के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।

मूल्य नीति में विसगति

वर्तमान में भारत में तीन प्रकार की मूल्य नीति अपनाई जा रही है। सार्वजनिक उद्योगों के उत्पादों के लिये, निजी क्षेत्र के उद्योगों के लिये तथा कृषि क्षेत्र के लिये, अलग-अलग मूल्य नीतिया अपनाई जा रही हैं। सार्वजनिक क्षेत्र का मूल्य नीति का आधार, घाटे को कम करना अथवा लाभ में परिवर्तित करना होता है, अर्थात् कुल देनदारियों के आधार पर मूल्य का निर्धारण होता है। इसका स्पष्ट उदाहरण कोयला तथा लोहा उद्योग हैं। कोयला का उपयोग प्राय गरीब तबके के लोगों द्वारा भी किया जाता है। किन्तु 'कोयलों की कीमतों में इतनी वृद्धि हो गई है कि ईंधन उसमें पकाई जाने वाली रोटी से अधिक महगा हो गया, इसी प्रकार निजी क्षेत्र का मूल्य निर्धारण आधार उच्चतम लाभ की प्राप्ति होता है, इसका समर्थन सरकार द्वारा भी किया जाता है, क्योंकि साल में दो-तीन बार मूल्य में वृद्धि होना आम बात है। इस नीति के परिणामस्वरूप आम नागरिकों की जेब से पैसा निकलकर पूजीपतियों बडे व्यापारियों और उद्योगपतियों की

जेब में चला जाता है। आम नागरिकों के जीवनस्तर में गिरावट आना स्वाभाविक है। देश में तीसरा बडा कृषि क्षेत्र है जहा समर्थन मूल्य निर्धारण नीति अपनाई जाती है जो बाजार मूल्य से काफी नीचे रहती है। इसके साथ ही जब फसल आती है तब मूल्य काफी कम हो जाता है, अनाज जब व्यापारियों के पास पहुच जाता है, मूल्य में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार किसानों का निरन्तर शोषण होता है। वे बिचौलियों से बच नहीं पाते और सामाजिक न्याय की कल्पना धरी रह जाती है।

सातवीं पचवर्षीय योजना अवधि में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी स्कीम, भूमि सुधार कार्यक्रमों के बावजूद देश में निर्धनता की स्थिति चिन्ताजनक बनी हुई है। भारतीय योजनायें अभी तक अतिदीनता की अवस्था को दूर कर पाने में सक्षम नहीं हो पायी हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि पूर्व में ही यह मान लिया गया था कि विकास के साथ राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी और इसके साथ ही प्रगामी कराधान और सार्वजनिक कल्याण कार्यक्रमों द्वारा गरीबों का जीवनस्तर उन्नत हो जायेगा, इससे राष्ट्रीय आय में तो वृद्धि हुई किन्तु लाभ का अधिकाश भाग उद्योगपतियों द्वारा हडप लिया गया।

सारांश

यदि पहले से ही समता के साथ लोकतात्रिक मूल्यों की स्थापना की गई होती, व्यक्ति की गरिमा बढाकर उनमें मानवीय मूल्यों के प्रति निरतर प्रतिबद्धता का भाव जगाया गया होता, तथा भौतिकवादी केन्द्रीकरण नीति के स्थान पर पुरुषार्थवादी विकेन्द्रित समाज की स्थापना की गई होती तो आज भारत का विकास तो होता ही, साथ ही सामाजिक न्याय की समस्या उत्पन्न ही नहीं होती। इस सदर्भ में गाधी जी का कथन उल्लेखनीय है—"यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार ही वस्तुए लें तो दुनिया में न तो गरीबी रहेगी न कोई भूखा मरेगा।" नि सदेह आर्थिक व्यूह रचना में परिवर्तन के माध्यम से ही विकास दर में तेजी तथा सामाजिक न्याय स्थापित कर सकने में हम सफल हो सकेंगे। अत देशकाल एव परिस्थिति के अनुरूप आर्थिक सरचना के स्वरूप में परिवर्तन किया जाना चाहिये। आर्थिक सरचना में परिवर्तन के समय भारतीय अर्थ-व्यवस्था की विशेषताओं को ध्यान में रखकर नीतिया निर्धारित की जानी चाहिये। तभी भारत में विकास के साथ-साथ सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सकेगी। □

कल्याण की बागडोर लोगों के हाथों में

पंचायतों की भूमिका

के.डी. गंगराडे

> *लेखक का कहना है कि विकास तथा कल्याण कार्यों के लिए लोगों को संगठित, शिक्षित, जागृत तथा प्रेरित करने में पंचायती राज संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।*

73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायती राज प्रणाली समूचे देश में लागू हो गई है। इस कदम से गांवों में लाखों करोड़ों 'बेजुबान' लोगों को 'जुबान' मिल गई है। इसका मुख्य उद्देश्य सत्ता के विकेन्द्रीकरण, प्रसार तथा पुनर्वितरण के कार्य को आगे बढ़ाना। संशोधन में त्रि स्तरीय पंचायती राज संस्थाओं को जिम्मेदारियां सौंपने का प्रावधान है ताकि वे स्थानीय अधिकार ग्रहण करके सच्चे रूप में निर्णय लेने वाली संस्थाएं बन सकें। साथ ही सरकार जो अब तक सेवाओं की 'दाता' तथा लोगों के कल्याण कार्यों की 'संरक्षक' बनी रही है अब स्थानीय हितों तथा कल्याण कार्यों के प्रबंध एवं संचालन का अपना दायित्व इन संस्थाओं को सौंप देगी।

गरिमा—मनुष्य को उसकी गरिमा तथा जिम्मेदारी की उच्च भावना वापिस लौटाने वाली यह सामाजिक कार्यनीति निश्चित रूप से मानवीय आयाम की रक्षा करेगी। गांव का व्यक्ति अब निर्भरता की संस्कृति से मुक्त होकर आत्मनिर्भर बन सकेगा। विश्व संकट में उपजी सामाजिक समस्याएं ऐसी नहीं हैं जिन्हें हल न किया जा सकता हो। बेशक हमारे मार्ग में असीम बाधाएं हैं तथा हमारी तात्कालिक आवश्यकताओं को प्राथमिकता के सही क्रम में रख पाना कठिन है परंतु हमें इस बात का पूरा विश्वास है कि हमारे देश की जनता ने सच्चे हृदय से जो नई आर्थिक व्यवस्था अपनाई है उसे संवाद के अवसर की समानता तथा आपसी भाईचारे की भावना पर आधारित होना होगा। अतत विजय उसी मनुष्य की होगी जो केवल अपनी भावनाओं तथा संपत्ति में ही लिप्त न रहकर अपने साथियों और पड़ोसियों के हितों के प्रति भी जागरूक होगा।

लक्ष्य—समाज कल्याण का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है जिसमें सब तरह के प्रयासों और स्थितियों के लिए स्थान है। उसका अंतिम लक्ष्य आज भी ऐसे न्यायसंगत तथा संतुलित समाज की रचना करना है जिसमें राष्ट्रीय विकास के लाभ प्रत्येक व्यक्ति को मिलें।

को कल्याण गतिविधिया, विशेष रूप से 29 में से चार गतिविधिया सौंपी गई है, जो इस प्रकार है—(1) परिवार कल्याण (2) महिला एव बाल विकास (3) समाज कल्याण जिसमें विकलागों तथा मानसिक रूप से बाधित लोगों का कल्याण शामिल है, और (4) कमजोर वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और जनजातियों का कल्याण।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों को इन चार कल्याण क्षेत्रों की पूरी जिम्मेदारी सीधे पचायती राज सस्थाओं को सौंप देनी चाहिए। इन सस्थाओं में महिलाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य पिछडे वर्गों के लिए आरक्षण के फलस्वरूप इन वर्गों को अपने ही विकास एव कल्याण के लिए किए जाने वाले कामों में सक्रिय सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

कल्याण—भारत के प्रथम प्रधानमत्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा था—"हम कल्याणकारी राज्य की बात करते हैं और इस दिशा में कार्य भी कर रहे हैं। कल्याण देश के प्रत्येक व्यक्ति की साझी सपत्ति होनी चाहिए और आज की तरह उस पर केवल सपन्न वर्गों का हक नहीं होना चाहिए। विशेष रूप से उन वर्गों को जो इस समय उपेक्षित हैं और विकास व प्रगति के अवसरों से वचित हैं इसके घेरे में लाया जाना चाहिए।" उन्होंने आगे कहा—"समाज कल्याण का मुख्य बिन्दु मनुष्य की सब तरह से भलाई करना है तथा कल्याणकारी सरकार को अपने प्रत्येक नागरिक की भौतिक तथा सामाजिक भलाई के लिए न्यूनतम अवसर अवश्य उपलब्ध कराने चाहिये। इससे शोषण और विषमताए समाप्त होंगी और व्यक्ति के आत्मविकास के लिए प्रावधान होगा।" उन्होंने सामाजिक सेवाओं तथा समाजकल्याण कार्यों के बीच स्पष्ट अतर किया। सामाजिक सेवाए वे हैं जो समूचे समाज के लिए होती हैं, जबकि समाज कल्याण का उद्देश्य उन सेवाओं को बढावा देना है जो उन व्यक्तियों और समूहों की सामाजिक आवश्यकताए पूरी करें जो सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक या मानसिक कारणों से सामान्य समाज के लिए उपलब्ध कराई गई सेवाओं का लाभ नहीं उठा सकते। उनके अनुसार महिलाओं बच्चों तथा विकलागों के कल्याण को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

उद्देश्य—समाज कल्याण की अवधारणा के दो पहलू हैं—(1) परिवार को, जिसके माध्यम से आवश्यकताए पूरी होती हैं सामाजिक संस्था के रूप में सुदृढ एव समर्थ बनाने के लिए कल्याण उपायों का उपयोग करना, और (2) जीवन यापन की परिस्थितियों का सामना करने की व्यक्ति की क्षमता को बढाना। समाज कल्याण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य ऐसी बुनियादी परिस्थितियों का निर्माण करना है जिनमें समाज के सभी सदस्य उन्नति व पूर्णता प्राप्त करने की अपनी क्षमताओं का उपयोग कर सकें। यही सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका है जो पचायती राज सस्थाओं को निचले स्तर पर ग्राम पचायतों और ग्राम सभाओं के सहयोग से निभानी चाहिये। कल्याण के चार माडल हैं जिनमें से किसी भी माडल को ग्राम पचायतें अपनी स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अपना सकती हैं।

पक्की सडक बनेगी परतु उसके लिए खर्च उठाना सरकार के बूते से बाहर है। इसलिए हमें खुद सडक बनानी होगी जिसके लिए मैं पत्थर एकत्र कर रहा हू।" इस कहानी में पचायती राज सस्थाओं के लिए यही सदेश छिपा है कि सहायता के लिए बाहर देखने के बजाय लोगों के कल्याण का काम वे अपने हाथों में लें।

कल्याण का आत्मनिर्भर मॉडल ग्रामीण समुदाय के सक्रिय सहयोग तथा सहभागिता पर आधारित है। पचायतें अपने कार्यक्षेत्र में जिम्मेदारिया संभालने के लिए गैर सरकारी समितिया और उप समितिया बनाने की दिशा में पहल कर सकती हैं या सरकारी तथा अन्य बाहरी एजेंसियों के कामों में पूरक भूमिका निभा सकती हैं। धन का प्रबध अत्यत व्यवस्थित ढग से किया जाना चाहिए। कल्याण सेवाओं की जिन लोगों को जरूरत है उन तक पहुचने के लिए स्थानीय उपसमिति में उसके क्षेत्र में पडने वाले हर 25 परिवारों के लिए एक स्थानीय प्रतिनिधि होना चाहिए। इन प्रतिनिधियों को स्थानीय समस्याओं तथा आवश्यकताओं का पता लगाना चाहिए, योजनाए तैयार करनी चाहिए और गावों के लोगों तथा किसान सघ से उपलब्ध सगठनों के सहयोग से उन्हें क्रियान्वित करना चाहिए।

अध्ययनों के परिणाम—भारत के गावों में हुए विकास तथा कल्याण के तुलनात्मक मूल्याकन के लिए जो अध्ययन किए गए हैं उनक आधार पर पचायतों को दो वर्गों में बाटा जा सकता है। पहले वर्ग की पचायतों में विकास तथा कल्याण की आत्मनिर्भर विधि के अतर्गत समाज के सक्रिय सहयोग तथा उसके प्रभाव के बारे में एक-दूसरे से जानकारी लेने देने का तरीका अपनाया गया। इस वर्ग में सस्थाओं पर लोगों का अपना नियत्रण रहा।

विकास और कल्याण की योजना का खाका सस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराया गया परतु सबसे अधिक महत्त्व इस बात का है कि इन सस्थाओं ने औपचारिक समितियों या नियत्रण मडल के ही नहीं, आम कार्यकर्ताओं के सुझावों को भी माना।

केन्द्र, राज्य सरकारों और अन्य एजेंसियों से नेताओं ने सहायता उसी ढग से मागी जिस ढग से समितियों (पचायतों) और निकायों (ग्राम सभाओं) ने उन्हें लेने को कहा। नेता अधिक लोकतात्रिक थे और उनके फैसले आपसी सबधों तथा एक-दूसरे की राय पर आधारित थे।

दूसरे वर्ग की पचायतों में कुछ बाहरी लोग थे जिन्होंने पचायतों के कुछ नेताओं के माध्यम से काम किया । उनका पचायतों पर नियत्रण था। विकास एव कल्याण की विधि उन्होंने ही तय की। वित्तीय ससाधन राज्यों द्वारा उपलब्ध कराए गए। सरकार, नेता और सस्थाए एक-दूसरे से गहरे जुडे रहे तथा जिस प्रक्रिया से वे एकजुट रहे वह परस्पर निर्भरता से युक्त लोकतात्रिक प्रक्रिया नहीं थी। पहले वर्ग में विकास और कल्याण का केन्द्र स्थानीय सस्थाए थीं। योजनाए बनाने तथा उनके क्रियान्वयन का काम सस्थागत

ढग से हुआ हालांकि उनमें धीमापन रहा जिससे कल्याण कार्य तेजी से नहीं चलाए जा सके।

आत्म सहायता तथा स्वावलम्बन के दृष्टिकोण के कारण पहले वर्ग की पचायतें राज सरकार दूसरे वर्ग की संस्थाओं की तरह अनुदान का मुह ताकने वाली नहीं बनीं। आत्मनिर्भरता तथा कल्याण की भावना औपचारिक प्रशासन और समान कल्याण संस्थाओं तक ही सीमित नहीं रही। इसकी जडें अन्य क्षेत्रों में फैली और मनोरजन, शिक्षा आदि अनेक तरह के कल्याण कार्यक्रमों की रचना के साथ इस भावना का और विस्तार हुआ।

पहले वर्ग की पचायतों द्वारा किये गये परिवर्तन तथा कल्याण में भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति को प्रमुखता नहीं दी गयी। उनका उद्देश्य समुदाय के सदस्यों में निहित क्षमताओं का इस हद तक विकास करना रहा कि वे समाज कल्याण सबधी अपनी आवश्यकताओं तथा ससाधनों को पहचान लें और उसके बाद अपनी कोशिशों से परिवर्तन लाने के कार्यक्रम खुद तैयार कर सकें। इसके लिए समाज कल्याण व सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को सस्थागत रूप देना ही नहीं बल्कि उसका समाजीकरण करना भी जरूरी है। समाजीकरण की प्रक्रिया को ऊपर से नहीं थोपा जाना चाहिए। दूसरे वर्ग की सस्थाओं में काम की प्रक्रिया नेता-केन्द्रित और अनुदानोन्मुखी थी। इससे अधिक लोग प्रेरित नहीं हो सके, जबकि पहले वर्ग की प्रक्रिया जन-केन्द्रित तथा समुदायोन्मुखी थी।

महिला एव बाल कल्याण—भारत में महिलाओं की दशा का अनुमान पुरुषों की तुलना में महिलाओं की सख्या के कम अनुपात से लगाया जा सकता है जो 1981 में 935 प्रति हजार से घट कर 1991 में 929 प्रति हजार रह गया है, और 1971 के 932 के स्तर से भी कम है। इस भेदभावपूर्ण अनुपात का मुख्य कारण लडकियों के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण है।

सभी स्तरों की पचायत सस्थाओं के सदस्यों को महिलाओं की स्थिति सुधारने से सबधित विभिन्न कानूनों और कल्याणकारी उपायों की पूरी जानकारी दी जानी चाहिए। महिला सदस्यों को अपने अधिकारों के लिए सघर्ष करने की दृष्टि से इन उपायों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

पचायतों का हस्तक्षेप—पचायतों को महिलाओं तथा बालिकाओं के अधिकारों को बढावा देने के प्रयास करने चाहिये। आठवीं योजना में निर्धारित निम्नलिखित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सब तरह की कोशिशें की जानी चाहिए।

(1) अनुसूचित जाति/जनजाति के सभी बालकों और बालिकाओं की स्कूलों में व्यापक भरती।

(2) सभी बच्चों के लिए एक किलोमीटर की दूरी तक प्राथमिक विद्यालय खोलना तथा पढाई बीच में छोडने वाले बच्चों, कामकाजी बच्चों तथा स्कूल न जा सकने वाले

लड़कियों के लिए अनौपचारिक शिक्षा का प्रबध।

(3) उच्च शिक्षा के मुकाबले प्राथमिक शिक्षा का अनुपात वर्तमान 4 1 से बढाकर 2 1 करना जो प्राइमरी से ऊपर की कक्षाओं तथा अन्य क्षेत्रों में अधिक लडकियों को पढाई के अवसर देने के लिए आवश्यक है।

इन कार्यों को पूरा करने के लिए पचायतें सरकारी और स्वयसेवी सगठनों से वित्तीय तथा अन्य प्रकार की सहायता ले सकती हैं।

परिवार नीति एव बाल कल्याण—बालिकाओं की उपेक्षा का शिकार होने से बचाने के लिए पचायतों को आतरिक व बाहरी ससाधनों की सहायता से निम्नलिखित उपाय करने चाहिए—

(1) बालघर, शिशुकेन्द्र तथा इस प्रकार की अन्य सेवाओं को सस्थागत रूप दिया जाए।

(2) कामकाजी महिलाओं के काम का स्वरूप तथा समय इस तरह तय किया जाए कि वे बच्चों की आवश्यकताए पूरी कर सकें।

(3) काम करने वाले मा बाप, विशेषकर भूमिहीन मजदूरों के लिए आराम का समय बढाया जाए।

पचायतों को सरकार की ओर से सहायता तथा विभिन्न परिवार कल्याण कार्यक्रमों के माध्यम से सरकार द्वारा बच्चों की सुरक्षा निम्नलिखित रूपों में उपलब्ध होनी चाहिए. (क) टीकाकरण, (ख) परिवार नियोजन तथा गर्भनिरोधक उपायों की जानकारी, (ग) व्यावसायिक चिकित्सा सेवाओं की व्यवस्था, (घ) पोषाहार, स्वास्थ्य रक्षा एव रोगों के बारे में जानकारी, (च) प्रसव पूर्व तथा प्रसवोत्तर देखभाल के लिए सस्थागत सहायता एव सुविधाए।

महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए सुझाई गई अन्य नीतियां इस प्रकार हैं—कामकाजी महिलाओं के लिए. (1) पुरुषों के समान वेतन/दिहाडी, (2) वेतन सहित मातृत्व अवकाश का कानूनी अधिकार, (3) घर के निकट काम का स्थान (4) स्त्री पुरुष में किए जाने वाले भेदभाव का मुकाबला करने के सस्थागत उपाय।

सामान्य (1) विधवाओं, विकलागों, वृद्धजनों आदि को सहायता, (2) दहेज, हिंसा तथा बहुविवाह की रोकथाम से सबधित कानूनों के बारे में जागृति लाना और जानकारी देना, (3) महिलाओं के प्रति सम्मान एव गरिमा के जीवनमूल्य विकसित करना, (4) परिवारों के लिए परामर्श तथा परिवार कल्याण एजेंसी की व्यवस्था करना, (5) समन्वित बाल विकास योजना का प्रबध पचायतों के हाथ में देना।

समन्वित बाल विकास योजना—भारत में 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की सख्या करीब 15 करोड है। इनकी बहुत साधारण किन्तु अलग अलग तरह की आवश्यकताए

है—प्यार, देखभाल, सीखने तथा खेलने के अवसर, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाए और पोषाहार। इसके बावजूद अधिकतर बच्चे ऐसे आर्थिक व सामाजिक वातावरण में रहते हैं जो उनके शारीरिक एव मानसिक विकास में बाधक हैं। उनकी आवश्यकताए पूरी करने तथा क्षमताओं का पूर्ण विकास करने के उद्देश्य से 2 अक्तूबर, 1975 को समन्वित बाल विकास योजना प्रारम्भ की गई। पहले पहल 33 विकसित खडों में लागू की गई यह योजना अब देश के 70 प्रतिशत विकास खडों तथा 260 शहरी स्लम क्षेत्रों में चल रही है।

इस योजना की जिम्मेदारी पूरी तरह से पचायतों को सौंप दिए जाने से दोपहर का भोजन देने की इस परियोजना को पूरे साल चलाने के लिए धन आसानी से उपलब्ध हो सकेगा। गावों के लोग इसमें सक्रिय रूप से दिलचस्पी लेंगें तथा वे इसे सरकार की सहायता से चलने वाली अपनी योजना मानकर चलेंगे। इससे योजना की लागत में भी कमी आयेगी। सक्षेप में कहा जाए तो प्राथमिक स्तर पर परिवार ही सबसे स्वाभाविक सगठन और समाज की बुनियादी स्वाभाविक इकाई है और इसके सदस्य साझे आर्थिक और सामाजिक हितों के कारण एक-दूसरे से जुडे हुए हैं। यह अस्तित्व एव सुरक्षा के लिए एक सुदृढ केन्द्र है जिसमें सभी सदस्य अभिभावकों की सामाजिक सत्ता के अधीन साझा मोर्चा बना कर रहते हैं। मा बाप पैतृक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर बच्चों की तब तक देखरेख करते हैं जब तक वे अपने बलबूते पर काम करने लायक नहीं हो जाते। इसी प्रकार बच्चे भी अपने मा-बाप की जरूरतों का ध्यान रखते हैं और वृद्धावस्था में उनकी देखभाल करते हैं। यद्यपि सयुक्त परिवार प्रथा बिखर रही है फिर भी किसी सकट की स्थिति में परिवार के सभी सदस्य सहयोग करने को एक साथ आ जाते हैं। परस्पर सहयोग और सहायता की इस व्यवस्था को अवश्य ही पुष्ट किया जाना चाहिए ताकि किसी बाहरी कल्याण सस्था या एजेंसी की आवश्यकता ही न पडे।

अनुसूचित जातियों और जनजातियो का कल्याण—इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि अनुसूचित जातियों व जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए सविधान में किए गए अनेक प्रावधानों तथा उनकी भलाई के लिए चलाए गए विशेष कार्यक्रमों के बावजूद इन वर्गों की स्थिति अभी तक शोचनीय बनी हुई है। अस्पृश्यता पर रोक तथा नौकरियों के लिए आरक्षण उपायों से भी दलितों की हालत में खास सुधार नहीं हो पाया है। देश में, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में छुआछूत किसी न किसी रूप में मौजूद है।

पचायतों के सदस्यों को चाहिए कि वे इस बात की शपथ लें कि वे छुआछूत नहीं करेंगे और साथ ही विशेष अभियान चलाकर और दलितों के अधिकारों की रक्षा करके लोगों को अस्पृश्यता निवारण के बारे में जागरूक बनाएगे। सामूहिक भोजन तथा अतर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। पचायतों को यह भी देखना चाहिए कि अनुसूचित जातियों की दशा बेहतर बनाने के लिए चलाई जाने वाली विकास एव कल्याण परियोजनाओं के फलस्वरूप शेष समाज से उनकी दूरी न बढने पाये।

उदाहरण के लिए विभिन्न योजनाओं के अतर्गत उन्हें दिए जाने वाले मकान या प्लाट आमतौर पर मुख्य गाव से दूर होते हैं जिससे अन्य जातियों के लोगों के साथ उनके घुल-मिल कर रहने में बाधा आती है। इसी प्रकार अनुसूचित जातियों के लिए विशेष रूप से खोले जाने वाले स्कूलों और छात्रावासों के कारण इन जातियों के छात्रों का दूसरी जातियों के साथ ज्यादा मेलजोल नहीं बढ पाता। इस तरह के अलगाव वाले काम नहीं किए जाने चाहिए।

पचायतों को यह ध्यान रखना चाहिए कि अनुसूचित जातियों व जनजातियों के आर्थिक उत्थान के कार्यक्रम और परियोजनाए इस प्रकार क्रियान्वित की जाए कि धीरे धीरे वे समाज की मुख्य धारा का अग बन जाए।

पचायतों को अनुसूचित जातियों व जनजातियों के कल्याण की दिशा में कारगर कदम उठाने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए—

(1) अनुसूचित जातियों/जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए बनाए गए कानूनों को लागू करने में मदद करना।

(2) अनुसूचित जातियों/जनजातियों के भूमिहीन लोगों को जमीन देने और कृषि के लिए आवश्यक वस्तुए उपलब्ध कराने के तरीके ढूढना।

(3) इन वर्गों को दिए जाने वाले लाभों में चोरी या हेराफेरी को रोकना।

(4) जनजातीय इलाकों में प्रशासन में सुधार लाने के उद्देश्य से पाचवी अनुसूची के अतर्गत नियम कानून बनाना।

(5) छठीं अनुसूची के तहत उपलब्ध आत्मप्रबध से सबधित प्रावधानों को पाचवीं अनुसूची के क्षेत्रों पर भी उपयुक्त ढग से लागू करना।

(6) जनजातीय आबादी की बहुलता वाले क्षेत्रों में, चाहे वे अनुसूचित क्षेत्र घोषित हों या नहीं, देसी शराब की दुकानें बद करने के लिए हर तरह के प्रयास करना।

पचायतों को अस्पृश्यता समाप्त करने तथा उपेक्षित वर्गों को समाज के सभी लोगों को बराबर सम्मान एव गरिमा दिलाने के लिए निचले स्तर पर कार्यक्रम चलाकर कमजोर वर्गों के उत्थान में सच्ची दिलचस्पी दिखानी चाहिए। लोगों को इस प्रकार जागृत तथा सगठित किया जाना चाहिए कि वे प्रशासन पर उन नीतियों को बदलने के लिए दबाव डाल सकें जो अनुसूचित जातियों व जनजातियों के कल्याण के अनुरूप नहीं हैं।

विकलागों का कल्याण—विकलागों तथा अक्षम लोगों का कल्याण एक अत्यत जटिल एव चुनौतीपूर्ण कार्य है। यह काम तभी पूरा हो सकता है जब सभी नागरिक, स्वयसेवी सगठन, सरकार तथा पचायतें इस बारे में सामूहिक रूप से अपनी जिम्मेदारी महसूस करें।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण सगठन के अनुसार भारत में एक करोड 12 लाख लोग अर्थात् कुल आबादी का लगभग 1.9 प्रतिशत हिस्सा कम से कम एक विकलागता से पीडित है। 10 प्रतिशत से अधिक विकलाग ऐसे हैं जिनमें एक से अधिक तरह की शारीरिक अपगता है। एक से 14 साल की आयु के करीब 3 प्रतिशत बच्चे बढने में देरी के विकार से पीडित हैं। अब अधिक से अधिक लोग यह मानने लगे हैं कि विकलागों को भी वही अवसर और अधिकार मिलने चाहिए जो समाज के अन्य लोगों को उपलब्ध हैं। ऐसा करने के लिए विकलागों को समाज से जोडने की दृष्टि अपनाना सबसे महत्त्वपूर्ण है। विकलागों को शारीरिक चिकित्सा, विशेष शिक्षा या व्यावसायिक प्रशिक्षण की सुविधाए देना ही पर्याप्त नहीं है। उन्हें अन्य लोगों से जोडने के लिए समाज में अलगाव पैदा करने वाले दृष्टिकोण को बदल कर नया सकल्प लेना बहुत जरूरी है। इसके लिए इन लोगों का इलाज तथा पुनर्वास करना ही काफी नहीं है बल्कि समर्थ लोगों की सोच को बदलना भी आवश्यक है ताकि विकलागों को शेष समाज के साथ पूर्णरूप से जोडा जा सके।

सर्वोदय और विकलाग—सर्वोदय का उद्देश्य सामान्य लोगों का ही नहीं, बल्कि विकलागों का भी कल्याण करना है। सर्वोदय से विकलाग एव सामान्य लोगों के बीच की दूरी समाप्त हो जाएगी। गाधीजी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति एक चलता फिरता मदिर है। किसी भी अक्षम व्यक्ति का अपमान नही किया जाना चाहिए और किसी को भी अपने हाथों अपनी जान नहीं लेने देना चाहिए। समाज के विकलाग भी ईश्वर को उतने ही प्रिय हैं जितने सामान्य लोग। विकलाग लोगों के काम का भी उतना ही महत्त्व है जितना साधारण लोगों के काम का। अत उन्हें भी अपने काम से आजीविका अर्जित करने का समान अधिकार है।

उपसहार—स्वतत्रता के बाद से, विशेषकर पिछले कुछ वर्षों में अनेक कल्याण योजनाए तथा कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए हैं परतु निचले स्तर पर उनका क्रियान्वयन असतोपजनक रहा है। इसलिए अब पचायतों तथा विभिन्न स्तरों पर क्रियान्वयन के क्षेत्र को मजबूत बनाने पर ध्यान दिया जा रहा है।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों का पहला काम है—पचायतों के निर्वाचित सदस्यों को प्रशिक्षण शिविर लगाकर और स्थानीय भाषाओं में साहित्य उपलब्ध कराकर आवश्यक जानकारी देना। पचायतों के सदस्यों को अपना दायित्व कारगर तथा उचित ढग से निभाने लायक बनाने में स्वयसेवी सगठनों को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। सभी पचायतों के लिए यह अनिवार्य होना चाहिए कि उनके क्षेत्र में एक भी ग्रामवासी भूखा न रहे और कोई भी किसी का शोषण न कर सके। इस मामले में कमजोर वर्गों के लोगों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

सदस्यों को कल्याण से सबधित कानूनों और विभिन्न स्रोतों से मिलने वाली तकनीकी और वित्तीय सहायता के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। पचायतों

को कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा मूल्याकन के लिए 'निगरानी सस्था' के रूप में काम करना चाहिए। समूचे काम का आदर्श वाक्य 'आत्मनिर्भर' बनना होना चाहिए तथा दूसरों की ओर ताकने की प्रवृत्ति से छुटकारा पाना चाहिए। अन्य पचायती राज सस्थाओं से सपर्क मे वित्तीय तथा तकनीकी सहायता के रूप में ससाधन प्राप्त करने में मदद मिल सकती है। इसके अलावा सरकारी तथा गैर सरकारी सगठनों से तालमेल बनाकर चलने से सहयोग प्राप्त करने और विभिन्न स्तरों पर कल्याण कार्यक्रमों को समन्वित करने में मदद मिल सकती है। इससे पचायतें अपने सदस्यों में इस बात के लिए गौरव का भाव पैदा कर सकेंगी कि वे अपने लोगों की कल्याण सबधी आवश्यकताए स्वय पूरी करने में समर्थ हैं। □

भारत में आर्थिक सुधार—एक समीक्षा

एस.आर. मदान

लेखक ने नई आर्थिक नीति के सन्दर्भ में लोगों के सदेह को निराधार बताया है। लेखक के विचार में भारतीय उद्योगों में विदेशी विनियोग पर नियत्रणों में ढील तथा विदेशी इक्विटी पार्टीसिपेशन में उदारीकरण देश में अधिक विदेशी इक्विटी पूजी को प्रोत्साहित करेगा। विदेशी पूजी आतरिक पूजी की कमी को पूरा करेगी तथा तकनीकी हस्तातरण एव आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीकी ज्ञान के हस्तातरण से आधुनिक तकनीक का लाभ देश को मिलेगा।

जब किसी भी प्रकार के सुधार का विचार हमारे मस्तिष्क में आता है तो उसस पूर्व कुछ खराबिया अवश्य ही हमें दिखाई देती हैं। जब आर्थिक सुधारों की बात इस देश में चली तो उसमे पूर्व हमारा देश नियोजन, उत्पादन एव वितरण के सबध में समाजवाद के लुभावने आदर्श पर चल रहा था। देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था थी। सार्वजनिक क्षेत्र में लगभग 112 खरब, 50 अरब, 65 करोड का विनियोग था। सार्वजनिक क्षेत्र एक सफेद हाथी की तरह बन चुका था और हमारे विदेशी विनिमय भडार को निगल रहा था तथा अपनी अकुशलता के कारण उपभोक्ताओं को घटिया वस्तुए ऊचे मूल्यों पर उपलब्ध करा रहा था। हमारे आयात, निर्यातों मे अधिक थे। सरकारी खर्च बढ रहा था। सरकार पर आतरिक एव बाह्य ऋणों का बोझ बढ रहा था। इस कारण से बजट के घाटे में वृद्धि हो रही थी जिससे विपरीत भुगतान सतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई थी तथा हम कीमतों की वृद्धि की समस्या मे त्रस्त थे। मुद्रास्फीति की दर 17% थी और हमारा विदेशी विनिमय कोष घट कर मात्र एक अरब डालर रह गया था। यह कुल आयातों के लिए 2 सप्ताह के भुगतान के बराबर था। इस प्रकार देश की साख दाव पर लगी हुई थी। ऐसे बुरे समय में देश को सौभाग्य से डॉ मनमोहन सिह जैसा वित्त मत्री मिला। उन्होंने डूबती हुई अर्थव्यवस्था को बचाने के लिये तथा अल्पकालीन एव दीर्घकालीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आर्थिक सुधारों की घोषणा की।

विपरीत भुगतान सतुलन तथा मुद्रास्फीति जैसे राजकोषीय सकटों की प्रकृति के अल्पकालीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उन्होंने भारतीय रुपये के अवमूल्यन की घोषणा

की। डालर के साथ रुपये के मूल्य में 23% तथा अन्य दुर्लभ मुद्राओं के साथ 20% अवमूल्यन की घोषणा की गई। व्यापार नीति सबधी कुछ सुधारों की घोषणा की गई। जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा हुई और सरकार ने 1991-92 का बजट प्रस्तुत किया।

दीर्घकालीन उद्देश्य था "ढाचागत समायोजन"। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार ने उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त किया, पूजी बाजार का उदारीकरण किया, विदेशी व्यापार को नियत्रण मुक्त किया तथा विदेशी पूजी को भारत में आमत्रित किया। इन कदमों के पीछे निर्यात में वृद्धि तथा भुगतान सतुलन को ठीक करने का विचार काम कर रहा था। इस समस्या से निपटने के लिये भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आई एम एफ) से $ 2.3 अरब का ऋण लिया। सरकार ने विश्व बैंक से भी ढाचागत समायोजन ऋण $ 500 मिलियन का लिया जिसके साथ शर्त यह थी कि राजकोषीय घाटे को 6.5 प्रतिशत तक नीचे लाया जाए। क्षेत्रानुसार आर्थिक सुधारों को चार श्रेणियों में बाटा गया—

(I) औद्योगिक सुधार—औद्योगिक क्षेत्र में सुधार लाये जाने हेतु जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गई जिसकी प्रमुख विशेषताए इस प्रकार हैं—(1) उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों में विदेशी पूजी विनियोग 40 प्रतिशत से बढाकर 51 प्रतिशत तक किया जा सकता है। (2) विदेशी तकनीकी समझौतों के लिए सरकार की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है।(3) निर्यात मूलक इकाइयों को विदेशी पूजी निवेश में अतिरिक्त छूट दी गई है और आयात में भी काफी छूटें दी गई हैं। (4) सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के अशों को निजी क्षेत्र को भी बेचा जा सकता है। (5) नये कारखाने लगाने के लिये डायरेक्टर जनरल ऑफ टेक्निकल डवलपमेन्ट के यहा पजीकरण कराना अब आवश्यक नहीं है। (6) दूसरी अनुसूची में दिये गये उद्योगों, जिनकी सख्या घटाकर आठ कर दी गई है, को छोडकर किसी भी उद्योग को बिना लाइसेंस लिये स्थापित किया जा सकता है। (7) नये उद्योगों को अब उत्पादन कार्यक्रम बताना आवश्यक नहीं है। और पुरानी इकाइयों को विस्तार के लिये सरकार से अनुमति लेना भी अनिवार्य नहीं है।

(II) बाह्य क्षेत्र—इस क्षेत्र में भी सरकार ने कई महत्त्वपूर्ण सुधार किये हैं। आयात निर्यात को लाइसेंस मुक्त कर दिया गया है। चैलियाह समिति की सिफारिशों के आधार पर उत्पादन एव तटकरों में कमी की गई है। विदेशी विनिमयों की दरों में भी परिवर्तन किया गया है जिससे श्रम प्रधान कृषि क्षेत्र, लघु उद्योगों तथा सेवा उद्योगों को प्रोत्साहन मिल सके।

एक मार्च, 1992 से देश में विदेशी विनिमय दर नीति के अतर्गत (लिबरलाइज्ड एक्सचेंज रेट मैनेजमेंट सिस्टम) लागू किया गया था जिसके अन्तर्गत रुपये को अशत परिवर्तनीय बना दिया गया था। 1993-94 से रुपये को पूर्णत परिवर्तनीय बना दिया गया है। इस नीति के अन्तर्गत वर्तमान खाते पर सभी विदेशी विनिमय प्राप्तियों जैसे

निर्यातों, सेवाओं और रेमीटेन्सेज को बाजार में प्रचलित विनिमय दरों पर परिवर्तित किया जा सकता है। जब यह व्यवस्था प्रारम्भ की गई थी, व्याप्त स्थिति में विदेशी विनिमय की माग उसकी पूर्ति से अधिक थी। अत विदेशी विनिमय की बाजार दर सरकारी विनिमय दर से अधिक थी। निर्यातकों को इस व्यवस्था से पूर्व बहुत लाभ था। इस पद्धति से विदेशों से विनिमय प्राप्तियों को सरकारी माध्यम से प्राप्त करने की प्रेरणा मिली है। उससे विदेशी विनिमय, गैरकानूनी सौदों तथा चोर बाजारी से हट कर सरकारी रास्ते से देश में आना प्रारम्भ हो गया है और उन लोगों को उपलब्ध होने लगा है जो कि वस्तुओं और सेवाओं का आयात करना चाहते हैं, तथा विदेशों में यात्रा करना चाहते हैं। अब वे इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अधिकृत विक्रेताओं से विदेशी विनिमय प्राप्त कर सकते हैं। इस पद्धति से यह लाभ हुआ है कि विदेशी विनिमय की सरकारी तथा बाजार दर में बहुत मामूली अतर रह गया है। प्राप्तियों की मात्रा में कई गुणा वृद्धि हुई है। चालू खाते का घाटा 1990 91 में 3 प्रतिशत से घट कर 1994-95 में 0.5 प्रतिशत से भी कम हो गया है। हमारी आर्थिक योग्यता में भी विदेशी विनियोजकों का विश्वास बढा है और बाह्य क्षेत्र का भी आकार अब बहुत बडा हो गया है।

(III) वित्तीय एव बैंकिंग क्षेत्र—इस क्षेत्र में लाये गये सुधार नरसिंहम समिति की सिफारिशों के आधार पर किये गये हैं। वैधानिक तरलता अनुपात (एस एल आर) तथा नकदी सचय अनुपात (सी आर आर) में कमी इन सबमें से अधिक महत्त्वपूर्ण सुधार है। यदि ये अनुपात अधिक ऊचे होते हैं तो बैंकों की लाभदायकता पर इसका बुरा प्रभाव पडता है। बैंकों को अब यह भी अधिकार दे दिया गया है कि ग्रामीण शाखाओं को छोडकर अपनी शाखाओं को कही भी खोल अथवा बद कर सकते हैं। उन्हें प्राथमिकता क्षेत्र में दिये जाने वाले ऋणों के सबध में पूर्ण स्वतत्रता दे दी गई है। ब्याज दर का विनियत्रण करने में भी वे स्वतत्र हैं। रिजर्व बैंक द्वारा अब व्यापारिक बैंकों को अपनी अपनी ब्याज दरें निर्धारित करने की आज्ञा देना भी एक प्रशसनीय कदम है जिससे बैंकों में आपसी प्रतिस्पर्द्धा बढेगी। बैंकों द्वारा ग्राहकों को अधिक ग्राहक सुविधायें कम खर्च पर उपलब्ध कराई जा सकें, इस उद्देश्य से सरकार ने मार्च 1995 में 5 नये विदेशी बैंकों को भारत में बैंकिंग कार्य सम्पन्न कराने की सुविधा प्रदान कर दी है जो कि शीघ्र ही अपना काम प्रारम्भ कर देंगे। रिजर्व बैंक ने ऐसे विदेशी बैंकों के भारत में प्रवेश की शर्तों को भी उदार बना दिया है। इनमें से तीन प्रमुख बैंक हैं—बैंक ऑफ सीलोन (श्रीलका), स्याम कर्मशियल बैंक (थाइलैंड) तथा अरब बगला देश बैंक (बगला देश)।

बैंकों द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र और निर्यात साख को भी बढाया जा रहा है। प्राइवेट बैंकों को खोलने की अनुमति हो जाने से प्राइवेट बैंक भी राष्ट्रीयकृत बैंकों से प्रतिस्पर्द्धा करेंगे और उससे ग्राहकों को अच्छी सेवा सस्ती दर पर मिलेगी। राष्ट्रीयकृत बैंक अब निजी पूजी भी आमत्रित कर सकते हैं। अत उनमें अधिक कुशल प्रबध

नियत्रण एव उत्तरदायित्व की भावना जागृत होगी। भारतीय स्टेट बैंक तथा ओरियेन्टल बैंक ऑफ कॉमर्स के इश्यूज तो आ भी चुके हैं। राष्ट्रीयकृत बैंकों को भी व्यक्तिगत लाभदायकता बढाने के लिये कहा गया है। बैंकों को आत्मनिर्भर बनाने तथा उनकी कार्यप्रणाली को सुचारू रूप से चलाने के लिए उन की कार्यप्रणाली का पुनर्गठन किया जा रहा है ताकि वे अतिरेक उत्पन्न कर सकें और डूबते ऋणों की अधिक वसूली कर सकें।

(IV) प्राथमिक क्षेत्र—देश के आर्थिक विकास में बहुत बडी बाधा है कृषि ग्रामीण क्षेत्र में आधारभूत सरचना का अभाव। यह कठिनाई आर्थिक सुधार कार्यक्रमों को लागू करने के पश्चात् और अधिक मुखर होकर सामने आई है। शक्ति, सचार, रेल, सडक, सिचाई, भूमि-सरक्षण एव बैंकिग आदि ऐसे क्षेत्र हैं जहा पर अब भी भारी विनियोग की आवश्यकता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए 1995-96 के बजट में यह व्यवस्था की गई है कि निजी क्षेत्र को इन सरचनात्मक सुविधा की कमियों वाले क्षेत्रों में विनियोग आकर्षित करने के लिये प्रोत्साहित किया जाए। इसके लिये भारत सरकार नाबार्ड सहयोग से एक नया ग्रामीण सरचनात्मक विकास अनुदान लगभग 2,000 करोड रुपये की राशि से स्थापित करने जा रही है जो कि राज्य सरकारों एव राज्यों द्वारा स्थापित निगमों को इन क्षेत्रों में चल रही ऐसी योजनाओं के लिये बैंकों के माध्यम से वित्तीय सहायता उपलब्ध करायेगा। वास्तव में भारत जैसे कृषि प्रधान देश में प्राथमिक क्षेत्र में, जहा जनसख्या में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों का बहुमत है, उन क्षेत्रों में नाबार्ड ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों तथा साख सहकारिताओं के माध्यम से ऋण सुविधायें उपलब्ध करायेंगे। नाबार्ड इस उद्देश्य के लिये 400 करोड रुपये की व्यवस्था करेगा।

वर्तमान स्थिति

भारत में आर्थिक सुधार लागू होने के पश्चात् अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में अच्छे परिणाम सामने आने लगे हैं। देश में जब ये सुधार प्रारम्भ हुए थे मुद्रा स्फीति की दर 17 प्रतिशत थी। जिसमें पहले दो-तीन वर्षों में काफी गिरावट आई। 1993 के मध्य में स्फीति दर घट कर 7 प्रतिशत रह गई। किन्तु 1994-95 में इस दर में फिर काफी वृद्धि हुई। 18 जनवरी, 1995 को समाप्त हुए सप्ताह में वह बढ कर 11.55 प्रतिशत हो गई। इस वर्ष में विभिन्न महीनों में इसमें उतार-चढाव होते रहे। फरवरी, 1995 में वह थोडी घटकर 11.37 प्रतिशत रह गई। भारत सरकार की सजगता तथा रिजर्व बैंक द्वारा उठाये गये कदमों से एक अप्रैल, 1995 को समाप्त होने वाले सप्ताह में वह पुन घट कर एक इकाई में (9.38 प्रतिशत) पर आ गई। रिजर्व बैंक ने मौद्रिक नीति को सख्त किया है। अत्यधिक तरलता पर रिजर्व बैंक ने कई दिशाओं से वार किया है। सावधि जमाओं से ब्याज की दर में एक प्रतिशत की वृद्धि की गई है। व्यापारिक बैंकों को निर्देश दिया है कि वे गैर खाद्यान्न ऋण देने में सावधानी बरतें क्योंकि रिजर्व बैंक का यह मत है कि उत्पादन माग की उपेक्षा साख के विकास में अधिक वृद्धि हुई है। बैंकों द्वारा दी जाने

वाली साख की ब्याज दर में भी एक प्रतिशत वृद्धि की गई है इससे भी तरलता में सिकुडन आयेगी। अत यदि उद्योग अपनी कुशलता का स्तर बढा लेते हैं तो बैंकों की 65,000 करोड रुपये की जमाराशि इसके लिये पर्याप्त होगी और उद्योगपतियों द्वारा लागत में वृद्धि करने का कोई औचित्य नही होगा। रिजर्व बैंक का अनुमान है कि इन उपायों मे मुद्रास्फीति की दर को 8 प्रतिशत तक बनाया जा सकेगा।

जहा तक राजकोषीय घाटे का सबध है 1994-95 के बजट में उसे छह प्रतिशत तक लाने का लक्ष्य था किन्तु वास्तव में वह 6 7 प्रतिशत रहा। 1995 96 के बजट में उसे 5.5 प्रतिशत तक रखने का लक्ष्य रखा गया है। स्पष्ट है हमने जो वायदा विश्व बैंक को किया था हमारा राजकोषीय घाटा लगभग इस सीमा के निकट ही है।

हमारी विकास दर सुधारों को लागू करने से पूर्व एक प्रतिशत से भी कम थी। 1992 93 तथा 1993 94 में हम इसे बढाकर 4.3 प्रतिशत तक ले आये थे। 1994-95 में यह 5 3 प्रतिशत थी और 1995 96 तक इसके छह प्रतिशत तक बढ जाने की सभावना है।

जहा तक देश में खाद्यान्न का सबध है 1991 92 में यह 168 मिलियन टन होगा। इसका लाभ यह हुआ है कि हमारे खाद्यान्न भडार जो 1991 में 13 9 मि.टन थे वे अब बढकर 30 मि.टन हो गये हैं।

नई आर्थिक नीति ने रोजगार के क्षेत्र में अपने उत्तम परिणाम दिखाने प्रारम्भ कर दिये हैं। वर्ष 1991 92 में तीन मिलियन लोगों को रोजगार दिया गया था जो कि 1994-95 में बढकर छह मिलियन हो गया है।

आर्थिक नीति की आलोचना का एक और कारण यह भी बताया जाता था कि इससे आयातों की बाढ आ जायेगी और निर्यात कम हो जायेंगे। किन्तु वस्तुस्थिति इसके विपरीत हैं। इस नीति ने हमारी आत्मनिर्भरता को बढाया है और हमारे निर्यात अब 90 प्रतिशत आयातों की वित्तीय व्यवस्था करते हैं जबकि नई आर्थिक नीति से पूर्व निर्यात 60 प्रतिशत आयातों की वित्तीय व्यवस्था करते थे।

एक बात और भी उल्लेखनीय है कि योजना काल के प्रथम 40 वर्षों में कुल मिलाकर जितना प्रत्यक्ष विदेशी निवेश भारत को स्वीकृत हुआ था उससे कई गुणा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 1991 94 की अल्प अवधि में स्वीकृत हो चुका है।

आर्थिक सुधारों को अधिक उपयोगी बनाने के लिये सुझाव

(1) प्रत्यक्ष कर की दरों में विवेकीकरण—यद्यपि वित्त मत्री डॉ मनमोहन सिंह ने चैलियाह कमेटी के सुझावों के आधार पर प्रत्यक्ष करों में काफी छूटें दी हैं और उसे विवेकीकृत करने का प्रयास किया है किन्तु इस दिशा में और बहुत कुछ किया जाना शेष है। उन्होंने इस बार भी आयकर की अधिकतम दर में कोई कटौती नहीं की है। यदि इसे

घटाकर तीस प्रतिशत तक ला दिया जाए तो यह उत्तम होगा। हमें टेक्स स्लेब्स में भी कमी करनी चाहिये। हमें कर आधार का विस्तार करना चाहिये न कि वर्तमान करदाताओं के उत्पीडन में वृद्धि। हर्ष का विषय है कि वित्तमंत्री ने व्यापारियों एवं छोटे दुकानदारों पर अनुमानित कर लगा कर कर-आधार का विस्तार करने की दिशा में सही कदम उठाया है।

(2) विदेशी विनिमय संचयों की मानीटरिंग करना—भारत में बढ रहे विदेशी पूंजी आयात से हमारा विदेशी विनिमय भडार निरंतर बढ रहा है जो 1993-94 में 15.07 अरब डालर था वह 1994-95 में बढकर 19.6 अरब डालर हो गया है। इससे डालर की तुलना में रुपये का मूल्य बढ जाने से हमारे निर्यातों में कमी हो सकती है। अब रिजर्व बैंक ने डालर खरीदना भी प्रारम्भ कर दिया है जिससे मुद्रा की मात्रा में वृद्धि हो रही है। यदि समय रहते इस प्रवृत्ति को नियंत्रित नहीं किया और विदेशी विनिमय भडार की उपयुक्त मानीटरिंग नहीं की गई तो इससे पुन मुद्रा प्रसार का खतरा पैदा हो सकता है और कीमतों में वृद्धि हो सकती है।

(3) आर्थिक सुधारों का मानवीय आधार—नई आर्थिक नीति के आलोचकों का मत है कि आर्थिक सुधारों को लागू करते समय गरीब जनता के हितों का ध्यान नहीं रखा जा रहा है। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। सरकार ने तो इन सुधारों के साथ गरीबी दूर करने तथा आर्थिक असमानता को कम करने के परम्परागत उद्देश्यों का भी पूरा पूरा ध्यान रखा है। 1995-96 का बजट तो इसके प्रति पूर्णत सजग रहा है। बजट में शामिल किये गये ऐसे कार्यक्रमों में इंदिरा विकास योजना में 10 लाख लोगों के लिए 1995-96 में रहने के लिये मकान उपलब्ध कराने की व्यवस्था है। एक राष्ट्रीय सेवा सहायता योजना बना कर 65 वर्ष से ऊपर के लोगों को वृद्धावस्था पेंशन 75 रुपये प्रति माह देने का प्रावधान है। ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिये एक बीमा योजना बनाई गयी है जिसके अन्तर्गत 70 रुपये वार्षिक प्रीमियम देकर 5,000 रुपए का जोखिम कवर करने के लिये एक सामाजिक बीमा पॉलिसी दी जायेगी और इस 70 रुपए की प्रीमियम राशि में से भी आधा हिस्सा ही बीमाकृत व्यक्ति को देना होगा शेष केन्द्र एव राज्य सरकारें वहन करेंगी। इसी प्रकार दोपहर के खाने के सबध में देहात के बच्चों के वास्ते एक बच्चा पौष्टिक योजना भी बनाई गई है। पिछले दो वर्षों के बजटों में भी सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिये काफी बडी धनराशि का आवटन किया था और शिक्षा, स्वास्थ्य, साक्षरता तथा जल प्रदाय जैसे कार्यक्रमों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया था ताकि जनसाधारण के जीवन स्तर की गुणवत्ता में सुधार लाया जा सके।

(4) आयातों पर से लाइसेंस हटाना—आयातों के काफी बडे भाग पर अब भी लाइसेंस प्रणाली का प्रभुत्व है। लाइसेंस तथा कोटाराज भ्रष्टाचार एव अकुशलता को जन्म देता है। अत लाइसेंस के प्रतिबंध यथाशीघ्र हटाये जाने चाहिये क्योंकि आयात वस्तुओं पर लगे प्रतिबंध ऐसे उद्योगों को सरक्षण प्रदान करके उपभोक्ताओं को घटिया

किस्म की वस्तुओं को महगे मूल्यों पर खरीदने के लिए विवश करते हैं और पूजी प्रवाह को भी लाभकारी उद्योगों में प्रवाहित होने से रोकते हैं।

(5) तटकरों का विवेकीकरण—इस समय स्थिति यह है कि निर्मित उत्पादों पर कम्पोनेन्ट्स की अपेक्षा अधिक दर से कर लगता है। अत जब कई दरें होती हैं तो ऐसा हो सकता है कि उत्पादन में प्रयुक्त होने वाली कच्ची वस्तु पर अंतिम उत्पाद की अपेक्षा अधिक दर से कर लग जाए। अत सभी तटकरों को एक ही दर से लगाया जाना चाहिए चाहे उत्पाद की प्रकृति कैसी भी हो। इसका एक और भी लाभ होगा कि इससे वस्तुओं के सभी प्रकार का वर्गीकरण समाप्त हो जायेगा और वर्गीकरण के कारण होने वाली मुकदमेबाजी भी कम हो जाएगी।

(6) आर्थिक सुधारों को अत्यधिक स्वीकार्य बनाना—भारत में इस समय जनसख्या का लगभग 30 प्रतिशत भाग गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहा है। उसे आर्थिक सुधारों के लिये तब तक उत्साहित नहीं किया जा सकता है जब तक कि ये सुधार महगाई को रोकने में सफल नहीं हो पाते और 6 करोड बेरोजगार लोगों को रोजगार दिलाने की दिशा में ठोस प्रयास साबित नहीं हो जाते। अत आर्थिक सुधार कार्यक्रम इस प्रकार चलाया जाना चाहिये कि इसका लाभ धनी लोगों को कम तथा निर्धनों को अधिक हो। इतना ही नहीं आर्थिक सुधारों की गति इतनी तेज भी नहीं होनी चाहिए जैसा कि लेटिन अमेरिका तथा पूर्वी यूरोपीय देशों में हुआ है। वहा पर अति मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा हो गई है। भारत जैसे देश में तो इस सबध में और भी सावधानी बरती जानी चाहिये क्योंकि हमारा आय का ग्राफ अत्यधिक विषम है।

(7) बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हौआ निराधार—आर्थिक सुधारों के आलोचक यह कह कर इनकी आलोचना करते हैं कि भारत में एक 'ईस्ट इडिया' कम्पनी व्यापार करने आई थी जो 150 वर्षों तक हमारे ऊपर शासन करने में सफल हो गई थी। अब यदि उससे बडे आकार की बहुत अधिक सख्या में कम्पनिया आ गई तो देश की प्रभुसत्ता खतरे में पड जाएगी। विदेशी पूजी के निर्बाध आयात से तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की स्थापना से देश के उद्योग बरबाद हो जायेंगे क्योंकि देशी कम्पनिया उनकी प्रतिस्पर्द्धा का मुकाबला नहीं कर पायेंगी। इस सबध में तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि "केवल बच्चे को ही सरक्षण दो"। जब वह बडा हो जाए तो उसमें प्रतिस्पर्द्धा में खडे होने की क्षमता होनी चाहिये। देशी अक्षम उद्योगपतियों की अक्षमता का बोझ बेचारा उपभोक्ता क्यों उठाये। वैसे यदि हमारे देश का उद्योगपति ईमानदारी, लग्न, निष्ठा एव नैतिकता से कार्य करे तो वह विश्व के किसी भी उद्योगपति से कम कुशल नहीं है। फिर विदेशी पूजी को भी भारतीय पूजी की बराबरी पर ही रखा गया है। एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि भारत में स्थापित होने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रबध एव नियत्रण (कुछ अपवादों को छोडकर) भारतीयों के ही हाथ में होगा। उन कम्पनियों पर यह भी दायित्व डाला गया है कि भारतीय प्रबधकों और तकनीकी विशेषज्ञों को उत्पादन प्रक्रियाओं में

प्रशिक्षण देंगे ताकि भारतीय विशेषज्ञ कालान्तर में विदेशी विशेषज्ञों के प्रतिस्थापन बन सकें।

निष्कर्ष

यद्यपि देश में अब भी मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रचलित है और आगे आने वाले समय में कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य प्रचलित रहेगी किन्तु भारतीय उद्योगों में विदेशी विनियोग पर नियन्त्रणों में ढील तथा विदेशी इक्विटी पार्टीसिपेशन में उदारीकरण देश में अधिक विदेशी इक्विटी पूजी को प्रोत्साहित करेगा। विदेशी पूजी आन्तरिक पूजी की कमी की पूर्ति करेगी। तकनीकी हस्तातरणों एव आधुनिक प्रबधकीय तकनीकी ज्ञान के हस्तातरणों से आधुनिक तकनीकों का लाभ देश को मिलेगा। इस प्रकार नई आर्थिक नीति द्वारा विदेशी पूजी को मिलने वाले प्रोत्साहन से हमारी आतरिक बचत दूरी (गैप) तथा विदेशी विनिमय दूरी भी भरेगा जिससे देश में आर्थिक एव औद्योगिक विकास की गति तीव्र होगी।

कुछ लोगों को सदेह है कि आर्थिक सुधारों के लागू होने का वही परिणाम यहा भी होगा जो कि मैक्सिको का हुआ है। किन्तु, ऐसे लोग निराशावादी हैं और उन्हें भारत एव मैक्सिको की परिस्थितियों में अन्तर का ज्ञान नहीं है। मैक्सिको में आर्थिक सुधारों की असफलता का कारण वहा राष्ट्रीय आय की धीमी विकास दर एव प्रतिवर्ष 45 प्रतिशत मुद्रास्फीति की दर रहे हैं। यहा पर आर्थिक सुधारों को अत्यधिक तीव्र गति से अचानक ही अल्पावधि में लागू किया गया। किन्तु भारतीय परिस्थितिया वहा से पूर्णत भिन्न हैं। हमने अपने आर्थिक सुधार लागू करने की गति धीमी रखी है। यहा पर मुद्रा प्रसार की दर भी नियत्रण से बाहर नहीं है। हमारे वित्तमत्री भी अधिक सुलझे हुए एव अनुभवी अर्थशास्त्री हैं। फिर भी हमें मैक्सिको के दुखद अनुभव का फायदा उठाना चाहिये किंतु दूध में जल को देखकर पूरा दूध ही गदी नाली में नहीं फेंक देना चाहिये। □

16

बाल श्रम निवारण की चुनौतियां और समाधान

उमेश चन्द्र अग्रवाल

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही बच्चों को सरक्षण देने, उन्हें राष्ट्रीय निधि के रूप में पल्लवित होने देने और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए पर्याप्त अवसर देने के अनेक प्रयास किए गए। सरकार द्वारा देश के 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करना हमारे सविधान की धारा 45 में उल्लिखित है। सविधान में ही नागरिकों के मूलभूत अधिकारों में मुख्यत धारा 15(3) के द्वारा सरकार को बच्चों के लिए अलग से कानून बनाने का अधिकार है और सरकार ने इस प्रकार के कई कानून बनाये भी हैं। धारा 23 के द्वारा बच्चों के क्रय विक्रय एव उनके द्वारा गैर कानूनी तथा अनैतिक कार्य कराने पर रोक है। साथ ही बच्चों को भय दिखाकर या बिना पारिश्रमिक के काम कराना भी प्रतिबन्धित है। इसी प्रकार धारा 24 के द्वारा 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों, खदानों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों में काम पर लगाने पर रोक लगी हुई है। इसके अतिरिक्त सविधान के नीति-निर्देशक तत्वों में धारा 39 के द्वारा बच्चों के स्वास्थ्य और उनके शारीरिक विकास हेतु पर्याप्त सुविधाए उपलब्ध कराने हेतु सरकार को निर्देश दिये गये हैं। धारा 39 (ई) में सरकार को बच्चों के बचपन की रक्षा करने और यह सुनिश्चित करने के निर्देश हैं कि उन्हें ऐसे कार्यों में न लगाया जाए जो उनकी उम्र और स्वास्थ्य के लिए घातक हों।

कानूनो द्वारा सुरक्षा

बच्चों के लिए सविधान में प्रदत्त अधिकारों के सुनिश्चितीकरण और उनको शोषण से मुक्त कराने हेतु सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न कानून भी बनाये गये हैं। जैसे 1949 में राजकीय विभागों एव अन्य क्षेत्रों में श्रमिकों के नियोजन हेतु न्यूनतम आयु 14 वर्ष निर्धारित की गई। कुछ अन्य कानूनों द्वारा भी विभिन्न क्षेत्रों में बाल श्रमिकों को शोषण और पीडा से बचाने के लिए उनकी भर्ती हेतु न्यूनतम आयु और सेवा शर्तें निर्धारित की गई हैं। इसमें बागान श्रमिक अधिनियम 1951, व्यापारिक जहाजरानी अधिनियम 1958, मोटर परिवहन अधिनियम 1961, बीडी सिगरेट सेवा शर्त नियोजन अधिनियम आदि प्रमुख हैं। 1974 में 'राष्ट्रीय बाल नीति प्रस्ताव' भी पारित किया गया

जिसमें बच्चों को पर्याप्त शिक्षा, पोषण और स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाए उपलब्ध करा के साथ-साथ शोषण के विरुद्ध उन्हें सरक्षण प्रदान करने हेतु पर्याप्त उपाय करने पर जो दिया गया। बाल श्रमिकों के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करने हेतु 1979 में गठि 'गुरुपदास्वामी समिति' ने भी बाल श्रमिकों की समस्या को गभीर बताते हुए शीघ्र ह पर्याप्त एव आवश्यक कदम उठाने हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए। इन सुझावों के कार्यान्वयन हेतु प्रयास भी किए गए हैं।

बाल श्रम प्रथा के उन्मूलन हेतु सरकार द्वारा एक महत्वपूर्ण प्रयास एक विस्तृ अधिनियम बनाकर किया गया है जिसे 'बाल श्रम निषेध एव नियमन, अधिनियम 1986 कहा जाता है। इस अधिनियम के अतर्गत 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को 18 हानिकारक उद्योगों जैसे कालीन बुनाई, निर्माण कार्य, साबुन निर्माण और पत्थर काटने आदि में कार्य करने पर रोक लगा दी गई है। 1987 में 'राष्ट्रीय बाल-श्रम नीति' की घोषणा और इसके क्रियान्वयन हेतु प्रभावी कदम भी उठाये गये हैं। अतर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सहयोग से इस हेतु दो परियोजनाए—आई पी ई सी अर्थात् बाल श्रम की समाप्ति हेतु 'अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम' और सी एल एएस पी अर्थात् 'बाल श्रम कार्य तथा सहयोग कार्यक्रम'—भी प्रारम्भ की गई है। सितम्बर 1990 में 'राष्ट्रीय श्रमिक सस्थान' मे श्रम मत्रालय और यूनिसेफ के सहयोग से बाल श्रमिकों के सम्बन्ध में अध्ययन, शिक्षण और प्रशिक्षण, शोध परियोजनाए आदि चलाने हेतु बाल श्रमिक कक्ष की स्थापना की गई है। इस कक्ष के प्रमुख उद्देश्य हैं—

1 भारत में विभिन्न उद्योगों तथा क्षेत्रों में कार्यरत बाल श्रमिकों की स्थिति और दशा के बारे में प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध कार्य का विवरण प्रकाशित करना।

2 बाल श्रमिकों से सम्बन्धित विभिन्न कर्मियों के शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए विभिन्न सचार सामग्री जैसे श्रव्य व दृश्य, वीडियो, मुद्रित सामग्री आदि तैयार करना।

3 बाल श्रमिकों से सम्बन्धित मौजूदा कानूनों तथा उनके कार्यान्वयन का पुनरावलोकन करना।

4 कार्यशालाओं, सम्मेलनों, गोष्ठियों द्वारा, जिनमें विशेषज्ञों, कार्यकर्ताओं योजनाकारों, प्रशासकों और बाल श्रमिकों के क्षेत्र में कार्य कर रहो गैर सरकारी समितियों का सहयोग लिया गया हो, लोगों को जागरूक तथा शिक्षित करने में सहायता करना।

5 बाल श्रम पर विभिन्न स्वयसेवी सगठनों, विश्वविद्यालयी विभागों तथा मत्रालयों के बीच राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क विकसित करना।

6 बाल श्रमिकों के क्षेत्र में कार्यरत प्रशासकीय कर्मचारियों और गैर सरकारी सगठनों को प्रशिक्षण प्रदान करना।

7 अनुसधान और अल्पावधि फेलोशिप, अनुसधान परियोजनाओं आदि द्वारा प्रशिक्षण के लिए सुविधाए प्रदान करना ताकि इस क्षेत्र में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सके।

इस कक्ष द्वारा विभिन्न उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों का पता लगाकर चुनी हुई ग्रन्थ सूची प्रकाशित की गई है।

अनेक परियोजनाए

सडकों पर घूमकर जीविका कमाने वाले बच्चों के कल्याण हेतु केन्द्र सरकार द्वारा आठवीं पचवर्षीय योजना में 8 करोड रुपये का प्रावधान किया गया है। इस योजना को देश के 11 बडे नगरों में लागू किया जा चुका है। गत वर्ष प्रधानमत्री द्वारा स्वतत्रता दिवस के अवसर पर घोषित बाल श्रमिकों की समस्याओं के निराकरण हेतु 850 करोड रुपये की पाच वर्षों की व्यापक योजना के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम लागू किये गये हैं। केन्द्रीय श्रम मत्री ने इस शताब्दी के अन्त तक देश के 20 लाख बाल श्रमिकों को घातक उद्योगों से हटा लेने का सकल्प व्यक्त किया है और इस सम्बन्ध में कारगर कदम भी उठाये जा रहे हैं। 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' द्वारा भी विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत बाल श्रमिकों की समस्याओं का अध्ययन करके सम्बन्धित राज्य सरकारों के माध्यम से इनकी समस्याओं के निराकरण और बाल श्रम उन्मूलन हेतु विभिन्न प्रभावी कदम उठाने हेतु प्रयास किया जाना प्रशसनीय कदम है।

केन्द्र सरकार द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की सहायता से राज्य सरकारों, गैर सरकारी सगठनों और श्रम सगठनों के सहयोग से बाल श्रम निवारण हेतु देश में कई परियोजनाए प्रारम्भ की गई हैं। इन परियोजनाओं का उद्देश्य परियोजना क्षेत्रों से धीरे धीरे बाल-श्रमिकों को हटाना है और बाल श्रमिकों के परिवारों के लिए प्रौढ शिक्षा की व्यवस्था करके सम्बन्धित कानून के उचित पोषण की व्यवस्था करना है। घातक उद्योगों से बाल श्रमिकों को हटाने की योजना के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु केन्द्र सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय बाल श्रम उन्मूलन प्राधिकरण' का गठन भी किया जा रहा है। सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं और प्रयासों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में कुछ गैर सरकारी सगठनों, मजदूर सघों और श्रमिक-परिषदों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस समय देश में 100 से अधिक गैर सरकारी सगठन बाल श्रमिकों के लिए कल्याण की योजनाए चला रहे हैं। यद्यपि इन सगठनों की पहुच केवल बडे बडे नगरों तक और बाल श्रमिकों की लगभग एक प्रतिशत आबादी तक ही है लेकिन जिस प्रकार अब सरकार की नीति इस प्रकार के सगठनों को भरपूर सहयोग प्रदान करने की है, उससे आशा बधती है कि शीघ्र ही बाल श्रमिकों के उन्मूलन में इन सगठनों की और भी अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका हो जाएगी।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि देश को बाल श्रमिकों से मुक्त कराने और इस समस्या

के निराकरण हेतु अनेक प्रावधान, नियम, कानून, योजनाएं और परियोजनाएं परिचालित हैं। सरकारी, गैर सरकारी और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सहयोग से अनेकानेक ठोस प्रयास भी किए जा रहे हैं। लेकिन विडम्बना यह है जितने बच्चों को इन प्रयासों के माध्यम से श्रम बाजार से मुक्त कराया जाता है उससे अधिक बच्चे श्रमिक के रूप में बाजार में पहुंच जाते हैं और उनकी संख्या में कमी के स्थान पर बढ़ोत्तरी होती जा रही है। 1971 की जनगणना के अनुसार यह संख्या एक करोड़ 7 लाख और 1981 में एक करोड़ 11 लाख थी। 1986 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा किए गये सर्वेक्षण के अनुसार यह संख्या 1 करोड़ 73 लाख बताई गई है। वर्तमान में इस संख्या के दो करोड़ तक पहुंचने का अनुमान लगाया गया है। राष्ट्रीय श्रम संस्थान के सौजन्य से किए गये नवीनतम नमूना सर्वेक्षण के अध्ययन से विदित होता है कि महानगरों में बाल श्रम की समस्या और गंभीर है। अकेले दिल्ली में बाल मजदूरों की संख्या चार लाख बताई गई है जिनमें से लगभग एक लाख बच्चे विभिन्न घरों में मजदूर के रूप में कार्य करते हैं। शेष चाय की दुकानों, ढाबों, स्कूटर और कार मरम्मत की दुकानों, भवन निर्माण और कुलीगिरी आदि के कार्यों में लगे हुए हैं।

विभिन्न उद्योगों में लगे बाल श्रमिकों की संख्या पर यदि नजर डालें तो पता चलता है कि इनके ऊपर कई उद्योग काफी सीमा तक निर्भर करते हैं। जैसे कालीन उद्योग में मिर्जापुर, भदोही (उ.प्र.), कश्मीर और जयपुर में लगभग ढाई लाख बच्चे कार्यरत हैं। बीड़ी उद्योग में भी ढाई लाख, पीतल और कांच उद्योग में लगभग एक लाख, दियासलाई और आतिशबाजी में 50 हजार, वृक्षारोपण में लगभग 70 हजार, दरी की कढ़ाई में लगभग 45 हजार बच्चे श्रमिकों के रूप में कार्य करते हैं। इनके अतिरिक्त हीरे जवाहरात पर पालिश, चीनी मिट्टी, हस्तशिल्प, हौजरी, हैण्डलूम, लकड़ी की नक्काशी, स्लेट, पत्थर की खुदाई आदि उद्योगों में भी काफी बड़ी संख्या में बाल श्रमिक लगे हुए हैं।

समस्या को सुलझाने में चुनौतियां

देश को बाल श्रमिकों के कलंक से मुक्ति दिलाने हेतु अभी तक किए गये प्रयासों और उनसे मिले परिणामों के अनुभवों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस महत्वपूर्ण अभियान के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं जिनके विषय में गहन अध्ययन किया जाना चाहिए और उनके निराकरण हेतु व्यावहारिक समाधान खोजे जाने चाहिए। सामान्य तौर पर इस सम्बन्ध में पहली चुनौती इनके बारे में सही आंकड़ों की उपलब्धता की है। श्रमिकों के सम्बन्ध में सरकारी संगठनों, स्वैच्छिक संस्थाओं, औद्योगिक प्रतिष्ठानों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों आदि द्वारा प्रकाशित आंकड़ों में बहुत कुछ भिन्नता मिलती है। अतः समस्या के निराकरण की योजना बनाने से पूर्व आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में सही सही आंकड़े एकत्र किए जायें। इस कार्य के लिए सरकार को यदि आवश्यक हो तो केवल कुछ प्रतिष्ठित एवं विश्वसनीय स्वयंसेवी संस्थाओं की सहायता लेनी चाहिए तथा इस ओर विशेष ध्यान देकर विभिन्न प्रकार के

कार्यों में लगे बाल श्रमिकों की ठीक-ठीक सख्या, उनकी ठीक ठीक आयु, पारिवारिक स्थिति, शैक्षिक स्तर, कार्य के घटे, कार्य की दशाए, वेतन अथवा पारिश्रमिक की दरें आदि की ठीक-ठीक सूचनाए सकलित की जानी आवश्यक हैं तभी उनके पुनर्वास और कल्याण की योजनाओं को मूर्त रूप दिया जाना सम्भव हो सकेगा।

बाल श्रमिकों की समस्या को सुलझाने में दूसरी प्रमुख चुनौती आर्थिक विपन्नता अथवा बेरोजगारी से सम्बन्धित है। देश में अधिकाश बाल श्रमिक पारिवारिक गरीबी अथवा पारिवारिक बेरोजगारी के शिकार हैं। परिवार के सदस्यों को दो जून की रोटी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अभिभावकों द्वारा उन्हें असमय ही परिवार के बोझ को उठाने के लिए विवश किया जाता है। कुछ परिवार ऐसे भी हैं जिनमें कोई प्रौढ सदस्य नही है और मजबूरी में उन परिवारों के बच्चों को श्रम बाजार की शरण लेनी पड रही है। हालाकि युवकों को रोजगार के अवसर बढाने हेतु, सरकार द्वारा अनेक योजनाए और सुविधाए प्रदत्त कराई जा रही हैं लेकिन जनसख्या के बढते प्रकोप के कारण उनका असर आशिक तौर पर ही हो पा रहा है। इस समस्या के निराकरण के लिए प्रत्येक परिवार के कम से कम एक प्रौढ सदस्य को रोजगार के अवसरों की गारटी प्रदान करने के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नही है। इसके लिए सरकार को अधिक प्रभावी योजनाए बनाकर उनको ठीक से क्रियान्वित करना होगा तथा ऐसे परिवारों को जिनमें कोई प्रौढ अथवा रोजगार युक्त सदस्य नही है, उनको नियमित आय के साधन जुटाने हेतु आवश्यक कदम उठाने होंगे।

इस समस्या के लिए उत्तरदायी तीसरी प्रमुख चुनौती इन्हें रोजगार देने वालों की लोभी अथवा शोषण की प्रवृत्ति है। ये चाहे ढाबों और चाय की दुकानों के मालिक हों घरेलू नौकरों के रूप में कार्य कराने वाले सेठ, साहूकार अथवा अफसर हों अथवा काच, जरी, कालीन, आतिशबाजी, माचिस आदि उद्योगों को परिचालित करने वाले उद्योगपति हों, सभी का उद्देश्य अधिक से अधिक श्रम कराकर कम से कम पारिश्रमिक भुगतान कर उनका शोषण करने का रहता है। इसके लिए यदि उन्हें कानून की परिधि से बचने लिए झूठे सच्चे आकडे प्रस्तुत करने पडें तो उन्हें कोई सकोच नहीं होता है। इस चुनौती का मुकाबला सरकार को अपने निगरानी तत्र को मजबूत करके तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि की सहायता से दृढतापूर्वक करना होगा।

इस क्षेत्र में चौथी प्रमुख चुनौती इस समस्या के समाधान हेतु बनाये गये नियमों और कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। यद्यपि बच्चों को श्रमिकों की दुनिया में प्रवेश से रोकने हेतु अथवा उनके शोषण को प्रतिबन्धित करने हेतु सरकार ने अनेक कानूनी प्रावधान किए हैं लेकिन कडवी सच्चाई यह है कि इन कानूनों और प्रावधानों का न तो कडाई से पालन सम्भव हुआ है और न ही इनके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु उपयुक्त वातावरण बनाया जा मका है। यद्यपि पिछले कई वर्षों से इस दिशा में सरकार ने कुछ कडे और प्रभावी कदम भी उठाये हैं और कहीं कहीं अच्छी सफलता भी

अर्जित की है लेकिन उपलब्ध कानूनों में खामियों का लाभ उठाकर अधिकांश दोषी लोगों को दंडित कर पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है। इस चुनौती का सामना करने हेतु सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया है कि सम्बन्धित अधिनियम में संशोधन कर 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को किसी भी उद्योग अथवा प्रक्रिया में रोजगार देने पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाये और बाल श्रम शोषण को गैर जमानती अपराध घोषित कर कड़ी-से-कड़ी सजा की व्यवस्था करे। इसके साथ-साथ कानूनी प्रावधानों को इतना सशक्त और प्रभावी बनाया जाये जिससे कि अपराधी को बच निकल जाने हेतु कोई रास्ता नहीं मिल सके।

बाल श्रम निवारण के क्षेत्र में पांचवीं प्रमुख चुनौती इन्हें श्रम क्षेत्र से हटाकर इनके पुनर्वास अथवा शिक्षा की व्यवस्था से सम्बन्धित है। कानूनी प्रावधानों का दृढतापूर्वक उपयोग कर इन्हें इनके कार्यक्षेत्र से हटा कर इनके उचित पुनर्वास एवं शिक्षा की समुचित व्यवस्था तुरन्त उपलब्ध कराना आवश्यक होगा। साथ ही साथ अब आवश्यक हो गया है कि 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निश्चित रूप से संविधान में शामिल निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाये। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से विद्यालय जाने वाले इस आयु वर्ग के बच्चों की संख्या 2 करोड़ से बढ़कर 15 करोड़ से भी अधिक हो गई है लेकिन अभी तक लगभग 1.5 करोड़ बच्चे विद्यालयों में नहीं जा पाते हैं। इन बच्चों के माता पिता को प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से जागरूक और उत्तरदायित्वपूर्ण बनाया जाना भी आवश्यक है। पर्याप्त प्रचार द्वारा जन भावनाओं को प्रेरित कर जनमानस को इस बुराई के प्रति संवेदनशील बनाया जा सकता है। कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन के साथ साथ जन सहयोग और जन चेतना द्वारा भी इस बुराई को समाप्त करने में सहायता प्राप्त की जा सकती है। बाल अधिकारों के समर्थक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की अभी हाल ही में बाल श्रमिकों के हाथों से बने सामान की सम्पूर्ण विश्व में बहिष्कार की धमकी जैसे ठोस कदम भी अपने देश के नागरिकों द्वारा उठाये जा सकते हैं।

उक्त वर्णित सभी प्रयासों से निश्चित ही हमारा समाज बाल श्रमिकों से मुक्त हो सकेगा और देश के सभी बच्चों को उनके अधिकार प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। पिछले 5-6 वर्षों से विशेष रूप से इस मुद्दे की ओर अंतर्राष्ट्रीय झुकाव, देश के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री द्वारा इस ममले पर दिए गए वक्तव्य और योजनाओं की घोषणा, संसद और कुछ राज्यों के विधान मंडलों में इस मामले में छिड़ी बहस और उठाये गये ठोस कदम, सन् 2000 तक सभी को शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं को उपलब्ध कराने हेतु सरकार का दृढ़ निश्चय, गैर सरकारी संगठनों और श्रमिक संघों की भागीदारी और जन संचार माध्यमों द्वारा जन चेतना के प्रयासों से जो अनुकूल वातावरण बना है, उससे विश्वास हुआ है कि निश्चित ही अब इस दिशा में आशातीत सफलता प्राप्त होगी और लाखों-करोड़ों बच्चों को अपने अधिकारों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हो सकेगी ☐

17

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड की कार्यप्रणाली का आलोचनात्मक मूल्यांकन

एस.सी. गुप्ता

निगम की स्थापना (Establishment of IFCI)

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरत पश्चात 1948 में संसद में एक विशेष अधिनियम "भारतीय औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम 1948" पारित करके की गयी थी। इसका प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में है। यह भारत का सबसे पुराना व पहला विकास बैंक है। यह औद्योगिक विकास के लिए दीर्घकालीन एव मध्यमकालीन वित्तीय सुविधायें प्रदान करता है। यह निगम परियोजना वित्त पोषण, वित्तीय सेवायें तथा प्रवर्तन सेवायें प्रदान करता है। परियोजना वित्त-पोषण (Project Financing) के अधीन निगमित और सहकारी क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों को उनके नये सिरे से स्थापित करने के लिए, विस्तार, विविधीकरण तथा आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय सुविधायें उपलब्ध करवाता है। वित्तीय सेवाओं (Financial Services) में मर्चेन्ट बैंकिंग और समवर्गीय सेवायें, उपस्कर वित्त पोषण, उपस्कर लीजिंग, उपस्कर उपार्जन तथा पूर्तिकार उधार योजना सम्मिलित हैं। प्रवर्तन सेवाओं (Promoter's Services) में तकनीकी सलाहकार सहायता, जोखिम पूजी, उद्यम पूजी, प्रौद्योगिकी विकास, पर्यटन तथा पर्यटन से सम्बन्धित कार्य-कलाप, आवास, प्रतिभूति बाजार का विकास, निवेशकर्त्ताओं की सुरक्षा, अनुसधान, प्रबन्धकीय दक्षता का विकास, उद्यमियों का विकास इत्यादि सम्मिलित है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) ये सभी सेवायें तथा सुविधायें औद्योगिक विकास के लिए प्रदान करता है। आईएफसी (उपक्रम का अतरण एव निरसन) अधिनियम 1993 के अनुसार आईएफसी अधिनियम 1948 के अधीन गठित आईएफसीआई उपक्रम का कार्य 1 जुलाई, 1993 से इण्डस्ट्रियल फाइनेंस कॉर्पोरेशन ऑफ इण्डिया लिमिटेड नाम की एक नवीन कम्पनी को सौंपा गया है। गत वर्षों में निगम के कार्यक्षेत्र में इसकी भूमिका की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए काफी विस्तार किया गया है।

निगम के वित्तीय स्रोत (Financial Resources of IFCI)

निगम अपने वित्तीय ससाधन अशपूजी, कोष एव अधिशेष, दीर्घकालीन ऋण, चालू दायित्व एव प्रावधान इत्यादि से जुटाता है। यह दीर्घकालीन ऋण बौन्ड्स निर्गमित करके, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम व इसकी सहायक इकाइयों, भारत सरकार, क्रदितास्तल्त-फर- वाइडरफवऊ (KFW), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के द्वारा निर्गमित किये गये विदेशी बौन्डस से प्राप्त राशि में से विदेशी मुद्रा ऋण तथा विदेशी ऋण सस्थानों से विदेशी मुद्रा में ऋन ले सकता है।

31 मार्च, 1994 को निगम की प्राधिकृत पूजी (Authorised Capital) 1000 करोड रुपये थी, जो दस रुपये वाले अशपत्रों में विभक्त हैं। इसी तिथि को निगम की निर्गमित और अभिदत्त पूजी (Issued & Subscribed Capital) 353 62 करोड रुपये थी तथा चुकता अशपूजी (Paid up Share Capital) भी 353 62 करोड रुपये थी। इसमें सार्वजनिक निर्गम के माध्यम से जुटायी गयी रकम 136 6 करोड रुपये सम्मिलित है। इनके रिजर्व एव निधिया 998.5 करोड रुपये की थी। भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक से उधार 16 9 करोड रुपये और बौन्डस तथा ऋणपत्रों के रूप में उधार की रकम 4145.5 करोड रुपये भी सम्मिलित थे। इसी तिथि को निगम की कुल परिसम्पत्तिया 10255 करोड रुपये की थी जिसमें 412 करोड रुपये के विनियोग और 8412 करोड रुपये के ऋण एव अग्रिम सम्मिलित थे।[1]

निगम का प्रबन्ध एव सगठन (Management and Organisation of IFCI)

निगम का प्रबन्ध एक सचालक मण्डल के द्वारा किया जाता है जिसमें एक पूर्णकालिक अध्यक्ष क अलावा 12 अन्य सचालक होवे है। पूर्णकालिक अध्यक्ष की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार के द्वारा की जाती है तथा शेष 12 सचालकों में 4 सचालक भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) के द्वारा, 2 सचालक केन्द्रीय सरकार के द्वारा, 2 सचालक अनुसूचित बैंकों के द्वारा, 2 सचालक बीमा एव वित्तीय सस्थाओं के द्वारा तथा शेष सचालक सहकारी बैंकों द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। सचालक मण्डल निगम के कार्यों का सचालन व्यवसाय, उद्योग तथा जन साधारण के हितों को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक सिद्धान्तों एव नीतियों के आधार पर करता है। इसकी सहायता के लिए एक केन्द्रीय समिति भी बनायी गयी है जिसमें पाच सदस्य होते हैं। निगम को समय-समय पर परामर्श देने के लिए पाच सलाहकार समितिया और गठित की गयी हैं जो सूती वस्त्र, चीनी, इजीनियरिंग, रासायनिक उद्योग व विविध उद्योगों से सम्बन्धित हैं। निगम केन्द्रीय सरकार के द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन करने के लिए पूर्णरूप से बाध्य है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि निगम का प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में है।

1 भारत में विकास बैंकिग की रिपोर्ट 1993-94 पेज 26

इसके अलावा इसके 8 क्षेत्रीय कार्यालय—बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, चण्डीगढ, हैदराबाद, गौहाटी तथा नई दिल्ली में हैं और 12 शाखा कार्यालय—अहमदाबाद, बंगलौर, भोपाल, भुवनेश्वर, कानपुर, कोचीन, जयपुर, पणजी, पटना, पुणे, शिलाग व शिमला में हैं। इस प्रकार भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड के कार्यालय सम्पूर्ण राष्ट्र में फैले हुए हैं।

निगम के कार्य (Functions of IFCI)

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम प्रमुख रूप से निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करता है—

(1) निगम सम्पूर्ण देश में औद्योगिक विकास के लिए मुख्य रूप से दो कार्यों के लिए ऋण देता है—(A) परियोजना वित्त-पोषण (Project Financing) तथा (B) प्रवर्तन सम्बन्धी क्रियायें (Promotional Activities)।

(2) परियोजना वित्त पोषण सम्बन्धी क्रियाओं (Project Financing Operations) में निगम प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता निगमित एव सहकारी क्षेत्रों में स्थापित होने वाली नवीन इकाइयों, उनके विकास एव विस्तार, विविधीकरण तथा आधुनिकीकरण के लिए कई रूपों में देता है। यह सहायता भारतीय रुपया, विदेशी मुद्रा ऋण, अभिगोपन, प्रत्यक्ष अंशपत्रों एव ऋणपत्रों का क्रय, स्थागित भुगतानों की गारण्टी तथा विदेशी ऋण के रूप में होती है।

(3) निगम की प्रवर्तन सम्बन्धी क्रियाओं में ग्रामीण और पिछडे हुए क्षेत्रों में उद्योगों का उद्भव एव विकास सम्मिलित है। इसके साथ ही निगम ग्रामीण और पिछडे हुए क्षेत्रों में, अपने द्वारा स्थापित तकनीकी सलाहकार सगठन के सहयोग से साहसियों का भी विकास करता है। इसकी प्रवर्तन सम्बन्धी सेवायें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और शारीरिक रूप से अस्वस्थ (Handicapped) लोगों के लिए भी उपलब्ध हैं।

(4) वर्तमान में निगम डच मार्क लाइन साख, जो कि इसे जर्मन सघीय गणराज्य (Federal Republic of Germany) क्रेदितान्स्टल्ट फर-वाइडरफवऊ (Kreditanstal Fur Wiederaufbau, KFW) से प्राप्त है, में व्यवसाय करता है। अभी हाल ही में, निगम को यह अनुमति मिली है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय पूजी बाजार में अपने कोष बढा सकता है।

(5) निगम ने नई दिल्ली में एक जोखिम पूजी प्रतिष्ठान (Risk Capital Foundation, RCF) की स्थापना, अभी कुछ वर्ष पूर्व की है, जो साहसियों को प्रवर्तन सम्बन्धी कोषों में अपना हिस्सा बढाने को प्रेरित करता है।

(6) उद्योगों के प्रबन्ध में पेशेवर व्यक्तियों को बढाने तथा उनकी कार्य-कुशलता में

वृद्धि करने के लिए निगम ने प्रबन्ध विकास संस्थान (Management Development Institute, MDI) की स्थापना की है तथा इसकी एक विस्तार शाखा के रूप में विकास बैंकिंग केन्द्र (Development Banking Centre, DBC) भी स्थापित किया है।

(7) निगम ने अन्य अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाओं के साथ मिलकर भारतीय साहसी विकास प्रतिष्ठान (EDII) की स्थापना की है जिसका प्रमुख उद्देश्य साहसी विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देना तथा साहसी विकास कार्यक्रमों में प्रशिक्षण देने वालों को प्रशिक्षित करना है।

(8) निगम, भारत सरकार द्वारा स्थापित "शक्कर विकास कोष" तथा "जूट आधुनिकीकरण कोष" के प्रशासन के लिए एक जिम्मेदार संस्था के रूप में भी कार्य कर रहा है।

(9) निगम मर्चेन्ट बैंकिंग सेवायें भी प्रदान करता है।

(10) निगम ने अनुसंधान सम्बन्धी कार्यों को प्रोत्साहन देने के लिए देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों और प्रबन्ध संस्थानों से सम्पर्क जोड़े हैं। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, गौहाटी और मद्रास विश्वविद्यालयों में तथा भारतीय प्रबंध संस्थान, अहमदाबाद (IIMA) में अपनी एक-एक कुर्सी (Chair) स्थापित की है।

निगम की उपलब्धियां (Achievements of IFCI)

निगम के द्वारा किये गये कार्यों की प्रगति का ब्यौरा निम्न प्रकार है—

(1) कुल स्वीकृत एवं वितरित सहायता (Total Sanctioned and Disbursed Assistance) 31 मार्च, 1994 को निगम अपनी स्थापना के लगभग 47 वर्ष पूरे कर चुका है। इस अवधि के दौरान निगम ने अपने उद्देश्यों के अनुसार देश में औद्योगिक विकास के लिए दीर्घकालीन एवं मध्यमकालीन वित्तीय सहायता प्रदान की है। 31 मार्च, 1994 तक निगम ने देश में औद्योगिक विकास के लिए कुल 19293 7 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता स्वीकृत की है तथा जिसमें से 12545 1 करोड़ रुपये की सहायता वितरित की है। इसे तालिका 1 द्वारा बताया गया है।

तालिका 1 के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड के द्वारा अपने अब तक के सम्पूर्ण जीवनकाल में स्वीकृत एवं वितरित वित्तीय सहायता में कुछ वर्षों को छोड़कर अच्छी वृद्धि हुई है तथा कुल स्वीकृत वित्तीय सहायता में कुल वितरित सहायता का प्रतिशत भी सदैव लगभग दो तिहाई रहा है। वर्ष 1971-72, 1973-74, 1982-83 तथा 1985-86 में यह प्रतिशत 75 से भी अधिक रहा है और वर्ष 1974-75 में यह प्रतिशत 127.58 रहा है। निगम ने अपने द्वारा स्वीकृत कुल वित्तीय सहायता में से 65.02 प्रतिशत वितरित की है जो लगभग दो तिहाई है।

तालिका 1

कुल स्वीकृत एवं वितरित वित्तीय सहायता

(राशि करोड़ रुपयों में)

वर्ष	कुल स्वीकृत सहायता	कुल वितरित सहायता	कुल स्वीकृत सहायता का वितरित सहायता में प्रतिशत
1970-71	32.3	17.4	53.86
1971-72	28.7	23.3	81.18
1972-73	45 7	28.0	61.26
1973-74	41 9	31 9	76.13
1974-75	29.2	37.0	127.58
1975-76	51.3	34 7	67.64
1976-77	76.6	54 9	71.67
1977 78	113.4	57.5	50 70
1978-79	138.5	73.5	53.06
1979-80	137 9	91.0	65 98
1980-81	206.6	108 9	52.71
1981-82	218 1	169 4	77.67
1982-83	230 2	196 1	85 18
1983-84	321 9	224.5	69 14
1984-85	415.4	272.9	65 69
1985-86	499.2	403 9	80 90
1986-87	798 1	451.6	56.58
1987-88	922.6	657 1	71.22
1988-89	1635.5	997.5	60 99
1989-90	1817.0	1121.8	61 73
1990-91	2491 9	1574 1	63 16
1991 92	2372 9	1604.8	67.06
1992 93	2471.8	1732.5	70 09
1993-94	3980 7	2163 1	54.33
1948-94	19293 7	12545 1	65 02

स्रोत भारत में विकास बैंकिंग की रिपोर्ट 1993-94, पेज 23

(2) **योजनावार स्वीकृत एव संवितरित विनीय सहायता (Plan-wise Sanctioned and Disbursed Financial Assistance)** निगम देश के औद्योगिक विकास के लिए दीर्घकालीन एव मध्यमकालीन वित्तीय सुविधायें परियोजना वित्त (Project Financing) तथा वित्तीय सेवायें (Financial Services) के रूप में प्रदान करता है। निगम परियोजना वित्त-रुपया वित, विदेशी मुद्रा ऋण, हामीदारी-साधारण एव पूर्वाधिकार अशपत्र, ऋणपत्र एव बौन्ड्स, प्रत्यक्ष अभिदान, गारण्टिया इत्यादि के रूप में प्रदान करता है तथा वित्तीय सेवायें—उपकरण लीजिंग, उपकरण खरीद, उपकरण ऋण,

आपूर्तिकर्ता ऋण, क्रेता ऋण, किस्त ऋण, लीजिंग और किराया खरीद संस्थाओं को वित्त इत्यादि के रूप में प्रदान करता है। निगम के द्वारा योजना वार स्वीकृत, संवितरित सहायता तथा बकाया राशि का 31 मार्च, 1994 तक का ब्यौरा तालिका 2 में दिया गया है—

तालिका 2

योजनावार स्वीकृत, संवितरित सहायता तथा बकाया राशि 31 मार्च, 1994 को

(राशि करोड़ रुपयों में)

योजना	स्वीकृत सहायता	संवितरित सहायता	बकाया राशि
1 परियोजना वित्त :			
(क) रुपया वित्त	11418.7	8544.0	5586.3
(ख) विदेशी मुद्रा ऋण	2669.3	1836.3	2103.2
(ग) हामीदारी :			
(i) इक्विटी/अधिमान शेयर	727.1	99.4	62.9
(ii) डिबेंचर एवं बौन्ड्स	430.3	43.1	29.3
(घ) प्रत्यक्ष अभिदान :			
(i) इक्विटी/अधिमान शेयर	129.0	86.5	149.4
(ii) डिबेंचर एवं बौन्ड्स	358.5	169.2	97.2
(ङ) गारंटियां	976.1	495.0	413.0
उपजोड़	16709.0	11273.5	8441.3
2 वित्तीय सेवाएं			
(क) उपकरण लीजिंग	584.4	291.8	169.4
(ख) उपकरण खरीद	35.8	26.7	16.9
(ग) उपकरण ऋण	677.4	505.7	333.3
(घ) आपूर्तिकर्ता ऋण	260.1	33.3	18.2
(ङ) क्रेता ऋण	637.6	120.6	65.6
(च) किस्त ऋण	10.5	7.8	-
(छ) लीजिंग और किराया खरीद संस्थाओं को वित्त	378.9	285.7	157.3
उपजोड़	2584.7	1271.6	760.7
कुल जोड़	19293.7	12545.1	9202.0

स्रोत : भारत में विकास बैंकिंग की रिपोर्ट 1993-94, पेज 141

यदि हम तालिका 2 का विश्लेषण करें तो पता लगता है कि भारतीय औद्योगिक वित्त निगम लिमिटेड ने 31 मार्च, 1994 तक कुल स्वीकृत सहायता में से 16709 करोड़ रुपये की सहायता परियोजना वित्त के लिए स्वीकृत की गयी है जो कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 85 प्रतिशत है तथा 2584.7 करोड़ रुपये की सहायता वित्तीय सेवाओं के लिए स्वीकृत की गयी है जो कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 15 प्रतिशत

है। इसी प्रकार निगम ने अपने आर्थिक जीवन काल में कुल वितरित सहायता में से 11273.5 करोड़ रुपये की सहायता परियोजना वित्त को वितरित की है जो कुल वितरित सहायता का लगभग 89.86 प्रतिशत है तथा शेष लगभग 10 प्रतिशत वितरित सहायता वित्तीय सेवाओं को गयी है। 31 मार्च, 1994 को निगम की कुल बकाया धनराशि 9202 करोड़ रुपये थी जिसमें 8441.3 करोड़ रुपये परियोजना वित्त के तथा 760.7 करोड़ रुपये वित्तीय सेवाओं के सम्मिलित थे।

(3) उद्योग वार स्वीकृत सहायता (Industry wise Sanctioned Assistance) निगम देश में सभी बड़े उद्योगों के विकास के लिए दीर्घकालीन एवं मध्यकालीन वित्तीय सहायता स्वीकृत एवं वितरित करता है। निगम ने अपने आर्थिक जीवनकाल के 46 वर्षों में जो विभिन्न उद्योगों को आर्थिक सहायता स्वीकृत की है उसका ब्यौरा निम्न तालिका 3 में दिया गया है—

तालिका 3

31 मार्च, 1994 को उद्योग वार स्वीकृत सहायता

(राशि करोड़ रुपयों में)

उद्योग	राशि	कुल स्वीकृत सहायता का प्रतिशत
1 खाद्य उत्पाद	1281.7	6.65
2 वस्त्र	2166.8	11.24
3 कागज	617.0	3.19
4 रबड़	279.7	1.45
5 उर्वरक	750.3	3.88
6 रसायन एवं रसायन उत्पाद	2317.5	12.02
7 सीमेन्ट	1218.1	6.32
8 मूल धातुयें		
(अ) लोहा एवं इस्पात	2659.0	13.78
(ब) अलौह	149.3	0.78
9 धातु उत्पाद	192.6	0.99
10 मशीनरी	594.3	3.08
11 बिजली और इलेक्ट्रॉनिक उपकरण	1398.2	7.25
12 परिवहन उपकरण	677.8	3.52
13 बिजली उत्पादन	1031.6	5.34
14 सेवाएं	921.4	4.77
15 अन्य	3038.4	15.74
कुल योग	19293.7	100.0

स्रोत भारत में विकास बैंकिंग की रिपोर्ट 1993-94, पेज 145

यदि हम तालिका 3 का विश्लेषण करें तो पता लगता है कि निगम ने देश के विभिन्न उद्योगों को अपने कार्यिक जीवनकाल में जो विशेष सहायता स्वीकृत की है उसका अधिकांश, आधारभूत धातु उद्योग, रसायन एवं रसायन उत्पाद, वस्त्र उद्योग, बिजली और इलेक्ट्रानिक उपकरण, खाद्य उत्पाद इत्यादि को गया है जो कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 51 प्रतिशत है तथा शेष लगभग आधी स्वीकृत सहायता अन्य उद्योगों को गयी है।

(4) राज्यवार स्वीकृत सहायता (Statewise Sanctioned Assistance) : निगम देश के समस्त राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों को औद्योगिक विकास के लिए विशेष सहायता आरम्भ से ही स्वीकृत करता है। निगम के द्वारा स्वीकृत सहायता का राज्यवार ब्यौरा तालिका 4 में दिया गया है—

तालिका 4

राज्यवार स्वीकृत सहायता (31 मार्च 1994 को)

(करोड़ रुपये में)

राज्य	रकम	कुल स्वीकृत सहायता का प्रतिशत
1. आन्ध्र प्रदेश	1547.5	8.03
2. अरुणाचल प्रदेश	0.2	0.01
3. असम	116.1	0.60
4. बिहार	237.7	1.23
5. गोवा	86.0	0.45
6. गुजरात	3054.6	15.85
7. हरियाणा	692.1	3.59
8. हिमाचल प्रदेश	361.1	1.87
9. जम्मू एवं कश्मीर	29.8	0.15
10. कर्नाटक	953.2	4.94
11. केरल	215.9	1.12
12. मध्य प्रदेश	1368.5	7.09
13. महाराष्ट्र	3137.2	16.12
14. मणिपुर	2.4	0.01
15. मेघालय	8.0	0.04
16. नागालैण्ड	2.6	0.01
17. उड़ीसा	453.6	2.36
18. पंजाब	1025.7	5.33
19. राजस्थान	1013.1	5.25
20. सिक्किम	3.0	0.01

तालिका 4 लगातार

21. तमिलनाडु	1311.5	6.80
22. त्रिपुरा	4.4	0.02
23. उत्तरप्रदेश	2059.6	10.67
24. पश्चिमी बंगाल	1002.9	5.21
25. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र-दिल्ली	511.0	2.65
26. संघ शासित प्रदेश:	122.7	0.65
(क) अण्डमान और निकोबार	2.7	0.01
(ख) दमन और दीव	6.0	0.03
(ग) दादरा और नगर हवेली	19.1	0.10
(घ) चण्डीगढ़	17.2	0.09
(ङ) पाण्डिचेरी	77.7	0.40
कुल योग	19293.7	100.0

स्रोत . भारत में विकास बैंकिंग की रिपोर्ट 1993-94, पेज 142.

तालिका 4 के विश्लेषण से पता लगता है कि निगम ने सम्पूर्ण भारत में सबसे अधिक वित्तीय सहायता की स्वीकृति महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश तथा मध्यप्रदेश को दी है जो इसकी कुल स्वीकृति सहायता का लगभग 58 प्रतिशत है जो आधी से भी अधिक है तथा शेष स्वीकृत सहायता अन्य राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों को गयी है जो कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 42 प्रतिशत भाग है।

(5) **पिछड़े हुए क्षेत्रों को स्वीकृत सहायता (Assistance Sanctioned to Backward Areas)** निगम देश में औद्योगिक सहायता प्रदान करते समय पिछड़े हुए एवं कमजोर क्षेत्रों के विकास पर विशेष रूप से ध्यान देता है। निगम के द्वारा 31 मार्च, 1994 तक जो कुल सहायता देश में औद्योगिक विकास के लिए 19293.7 करोड़ रुपये की स्वीकृत की गयी है उसमें से 9086.7 करोड़ रुपये पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के लिए है जो कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 47 प्रतिशत है। निगम के द्वारा पिछड़े हुए एवं कमजोर क्षेत्रों के विकास के लिए स्वीकृत सहायता का राज्यवार ब्यौरा तालिका 5 में दिया गया है—

तालिका 5

निगम द्वारा पिछड़े हुए क्षेत्रों को राज्यवार स्वीकृत वित्तीय सहायता का ब्यौरा 31 मार्च 1994 तक

(राशि करोड़ रुपये में)

राज्य	पिछड़े क्षेत्र को स्वीकृत सहायता	कुल पिछड़े क्षेत्रों को स्वीकृत सहायता का प्रतिशत
1. आन्ध्रप्रदेश	711.4	7.83
2. अरुणाचल प्रदेश	0.2	0.01
3. असम	116.1	1.27
4. बिहार	46.4	0.52
5. गोवा	86.0	0.94
6. गुजरात	958.9	10.55
7. हरियाणा	221.3	2.44
8. हिमाचल प्रदेश	361.1	3.97
9. जम्मू एवं कश्मीर	29.8	0.33
10. कर्नाटक	460.7	5.07
11. केरल	92.8	1.02
12. मध्यप्रदेश	1285.8	14.15
13. महाराष्ट्र	1311.6	14.45
14. मणिपुर	2.4	0.02
15. मेघालय	8.0	0.09
16. नागालैण्ड	2.6	0.02
17. उड़ीसा	201.3	2.22
18. पंजाब	483.8	5.32
19. राजस्थान	555.7	6.12
20. सिक्किम	3.0	0.03
21. तमिलनाडु	499.8	5.50
22. त्रिपुरा	4.4	0.05
23. उत्तरप्रदेश	1095.2	12.05
24. पश्चिमी बंगाल	412.9	4.55
25. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र-दिल्ली		
26. संघ शासित क्षेत्र	105.5	1.16
(क) अण्डमान और निकोबार	2.7	0.03
(ख) दमन और द्वीव	6.0	0.06
(ग) दादरा और नगर हवेली	19.1	0.21
(घ) चंडीगढ़		
(ङ) पाण्डिचेरी	77.7	0.86
कुल योग	9086.7	100.0

स्रोत : भारत में विकास बैंकिंग की रिपोर्ट 1993-94, पेज 142

तालिका 5 के गहन अध्ययन से पता लगता है कि निगम ने अपने आर्थिक जीवनकाल में देश में पिछडे हुए क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिए सबसे अधिक सहायता महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, गुजरात व आध्रप्रदेश को स्वीकृत की है जो पिछडे क्षेत्रों को कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 60 प्रतिशत है तथा शेष स्वीकृत सहायता पिछडे क्षेत्रों के विकास के लिए लगभग 40 प्रतिशत देश के अन्य राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों को गयी है।

(6) क्षेत्रवार स्वीकृत एव वितरित सहायता (**Region wise Sanctioned and Disbursed Assistance**)· निगम देश में औद्योगिक विकास के लिए सभी क्षेत्रों को वित्तीय सहायता स्वीकृत एव वितरित करता है जिससे देश में सतुलित औद्योगिक विकास संभव हो। यह सार्वजनिक, सयुक्त, सहकारी और निजी क्षेत्रों को वित्तीय सहायता स्वीकृत एव वितरित करता है। निगम के द्वारा अपने 46 वर्ष के आर्थिक जीवनकाल में विभिन्न क्षेत्रों को जो वित्तीय सहायता स्वीकृत एव वितरित की गयी है उसका ब्यौरा तालिका 6 में दिया गया है—

तालिका 6

निगम द्वारा क्षेत्रवार स्वीकृत एव वितरित सहायता 31 मार्च, 1994 तक

(राशि करोड रुपयों में)

क्षेत्र	स्वीकृत सहायता	कुल स्वीकृत सहायता का प्रतिशत	वितरित सहायता	कुल वितरित सहायता का प्रतिशत
1 सार्वजनिक	1778.3	9.22	812.6	6.47
2. सयुक्त	1871.8	9 71	1306 7	10 42
3. सहकारी	847.8	4.39	683.5	5 45
4 निजी	14795.8	76.68	9742 3	77 66
कुल योग	19293 7	100 00	12545 1	100 00

स्रोत भारत में विकास बैंकिंग की रिपोर्ट 1993-94, पेज 146

तालिका 6 के विश्लेषण से पता लगता है कि निगम के द्वारा सबसे अधिक वित्तीय सहायता निजी क्षेत्र को स्वीकृत एव वितरित की है। 31 मार्च, 1994 तक निगम ने अपने सम्पूर्ण आर्थिक जीवनकाल में कुल 19293 7 करोड रुपये की सहायता स्वीकृत की, जिसमें से 14795.8 करोड रुपये की सहायता मात्र निजी क्षेत्र के लिए स्वीकृत की गयी जो कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 76 68 प्रतिशत है तथा शेष 24.32 प्रतिशत सहायता अन्य तीनों क्षेत्रों को क्रमश सार्वजनिक, सयुक्त और सहकारी क्षेत्रों को स्वीकृत हुई है। ठीक यही स्थिति क्षेत्रवार वितरित सहायता की है। निगम ने अपने सम्पूर्ण आर्थिक जीवनकाल में कुल 12545 1 करोड रुपये की सहायता वितरित की है जिसमें से सार्वजनिक, सयुक्त, सहकारी व निजी क्षेत्र को क्रमश 812.6 करोड रुपये, 1306 7 करोड

रुपये, 683.5 करोड रुपये व 9742.3 करोड रुपये गयी है। निजी क्षेत्र को कुल वित्तीय सहायता का लगभग 77.66 प्रतिशत भाग गया है व शेष सहायता 22.34 प्रतिशत शेष तीनों क्षेत्रों को वितरित हुई है। सारांश के रूप में हम यह कह सकते हैं कि निगम ने निजी क्षेत्र के विकास पर विशेष ध्यान दिया है।

(7) उद्देश्यवार स्वीकृत सहायता (Purpose-wise Sanctioned Assistance)- निगम राष्ट्र में औद्योगिक विकास के लिए दीर्घकालीन तथा मध्यमकालीन वित्तीय सुविधायें नवीन औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के लिए, विस्तार/विशाखन, आधुनिकीकरण, पुनर्वास तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रदान करता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निगम ने अपने 46 वर्ष के आर्थिक जीवन काल में जो वित्तीय सहायता स्वीकृत की है उसका ब्यौरा तालिका 7 में दिया गया है—

तालिका 7

निगम द्वारा उद्देश्यवार स्वीकृत सहायता 31 मार्च, 1994 तक

(राशि करोड रुपयों में)

उद्देश्य	कुल स्वीकृत सहायता	कुल स्वीकृत सहायता में उद्देश्य वार प्रतिशत
1 नवीन परियोजनायें	10755.9	55.74
2 विस्तार/विशाखन	4382.6	22.72
3 आधुनिकीकरण/सन्तुलन उपकरण	3854.7	19.98
4 पुनर्वास	159.8	0.82
5 अन्य	140.7	0.74
कुल योग	19293.7	100.00

स्रोत भारत में विकास बैंकिंग की रिपोर्ट 1993-84, पेज 146.

यदि हम उपरोक्त तालिका 7 का अध्ययन करें तो पता लगता है कि निगम के द्वारा अभी तक जितनी कुल सहायता स्वीकृत की गयी है उसका लगभग 55 74 प्रतिशत भाग नवीन परियोजनाओं की स्थापना के लिए गया है तथा शेष 44.26 प्रतिशत भाग विस्तार/विशाखन, आधुनिकीकरण/सन्तुलन उपकरण, पुनर्वास तथा अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वीकृत हुआ है।

निगम की कार्यप्रणाली की आलोचनायें (Criticisms of Working of IFCI)

उपरोक्त विवेचन से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) ने देश के औद्योगिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यह भारत का सबसे पुराना व पहला विकास बैंक है। पिछडे व कमजोर क्षेत्रों (Backward Areas) के विकास पर अपनी कुल स्वीकृत राशि का लगभग आधा भाग आवंटित किया है। देश के आधारभूत उद्योगों के विकास को पूरी तरह प्रोत्साहित किया है। इसके

साथ ही प्रवर्तन सम्बन्धी क्रियायें (Promotional Activities) भी बड़ी मात्रा में औद्योगिक विकास के लिए प्रोत्साहित की हैं, लेकिन फिर भी निगम की कार्यप्रणाली की निम्नलिखित आधारों पर आलोचना की जाती है—

(1) कुछ उद्योगों पर विशेष ध्यान—निगम की कार्यप्रणाली के आलोचकों का यह कहना है कि निगम ने अपने जीवनकाल में कुछ ही उद्योगों (आधारभूत) पर अधिक ध्यान दिया है जैसे रसायन व रसायन उत्पाद, सूती वस्त्र, धातु व धातु उत्पाद, बिजली और बिजली के उपकरण, खाद्यान्न उद्योग इत्यादि। जबकि शेष उद्योगों को पर्याप्त वित्तीय सहायता नहीं मिली है।

(2) अपर्याप्त स्वीकृत एवं वितरित सहायता—ऐसा कहा जाता है कि निगम ने 31 मार्च, 1994 तक अपने 46 वर्ष के जीवनकाल में जो वित्तीय सहायता स्वीकृत एवं वितरित की है, वह काफी कम है। यह सहायता भारतीय वित्तीय संस्थाओं के कुल योगदान में मात्र लगभग 10 प्रतिशत के बराबर है।

(3) असंतुलित विकास—जैसा कि पहले बताया गया है कि निगम ने सम्पूर्ण भारत में केवल 4 राज्यों—महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्रप्रदेश व उत्तरप्रदेश को कुल स्वीकृत सहायता का 50 प्रतिशत से अधिक सहायता दी है और बाकी की सहायता शेष सभी राज्यों में वितरित हुई है। यह स्थिति देश में असंतुलित विकास को बढ़ावा देगी।

(4) पिछड़े हुए क्षेत्रों पर कम ध्यान—यद्यपि निगम की कुल स्वीकृत सहायता का लगभग 50 प्रतिशत भाग पिछड़े व कमजोर क्षेत्रों को गया है, लेकिन यह कम है तथा इस ओर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

(5) निजी क्षेत्र पर अधिक ध्यान—यदि हम निगम द्वारा स्वीकृत कुल वित्तीय सहायता का क्षेत्रवार अध्ययन करें तो पता लगता है कि लगभग दो तिहाई सहायता निजी क्षेत्र को गयी है और शेष मात्र एक तिहाई सहायता क्रमश संयुक्त, सार्वजनिक व सहकारी क्षेत्र को गयी है जो काफी कम है।

(6) उद्देश्यवार सहायता का अनुचित वितरण—यदि हम निगम द्वारा स्वीकृत कुल वित्तीय सहायता का उद्देश्यवार अध्ययन करें तो पता लगता है कि कुल स्वीकृत सहायता का लगभग दो तिहाई भाग नवीन इकाइयों की स्थापना के लिए ही है और शेष मात्र एक तिहाई आधुनिकीकरण एवं पुनर्निर्माण व विस्तार एवं विविधीकरण को गया है, जो काफी कम है।

(7) ऋण देने में विलम्ब—निगम की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में यह आलोचना की जाती है कि निगम ऋण स्वीकृत करने में काफी देरी करता है और फिर आसानी से उसका वितरण (Disbursement) भी नहीं होता है।

(8) ब्याज की ऊची दर—वर्तमान में निगम के द्वारा वसूल की जाने वाली ब्याज की दर काफी ऊची है जो औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल नहीं है।

(9) कुशल एव योग्य कर्मचारियो का अभाव—निगम में कार्यरत अधिकारी एव कर्मचारी पूर्ण रूप से योग्य एव कुशल नहीं हैं तथा इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था का भी अभाव है।

(10) अनुवर्ती कार्यवाही असन्तोषजनक—निगम की ऋण वितरित करने के बाद अनुवर्ती कार्यवाही (Follow-up Action) सन्तोषजनक नहीं है जिससे ऋण के दुरुपयोग होने का डर रहता है।

(11) ऊची प्रबध लागत—इस सम्बन्ध में आलोचकों का यह कहना है कि निगम की प्रबध लागत काफी अधिक आती है जिससे इसके शुद्ध लाभों पर बुरा प्रभाव पडता है।

निगम की कार्यप्रणाली की उपरोक्त समस्त आलोचनायें नाममात्र की हैं इनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। निगम के कार्य काफी सन्तोषजनक चल रहे हैं जिनसे देश में तीव्र औद्योगिक विकास सभव हुआ है। निगम भारत का सबसे पुराना, पहला और महत्त्वपूर्ण विकास बैंक है जिसकी ख्याति दूसरे देशों में भी है। □

जमीन से रिश्ते ही भविष्य का नक्शा बनाएंगे

जितेन्द्र गुप्त

जात पात पर आधारित ग्रामीण समाज को सामंती प्रवृतियों से मुक्त करने और लोकतंत्र की खुली हवा में लाने के लिए मतदान का अधिकार ही काफी नहीं था, जोत की अधिकतम सीमा भी जल्दी बांधी जाती और उस पर अमल होता तो इस कार्य में बड़ी मदद मिलती। यह मत व्यक्त करते हुए लेखक ने बताया है कि भूमि सुधार के 1972 से पहले और बाद बने कानूनों की गिरफ्त स बचने के लिए भूमि स्वामियों को बहुतेरा समय मिला और उन्होंने बेनामी हस्तांतरण तथा अन्य उपायों से कानून को धता बता दी। लेखक का कहना है कि देश में बेरोजगारी और बढ़ती जरूरतों के अनुसार पैदावार बढ़ाने के लिए भूमि सुधारों को गति देना आवश्यक है क्योंकि 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम के अंतर्गत किए अन्य सभी उपाय अपर्याप्त सिद्ध हुए हैं।

कोई तीन सौ साल पहले तक खेती ही राजनैतिक और आर्थिक सत्ता का सबसे भरोसेमंद आधार था—भारत में भी और सात समंदर पार भी। उद्योग थे मगर धुआ उगलने वाली चिमनियां नहीं थीं। एक ही छत के नीचे बड़े पैमाने पर माल तैयार करने वाले कारखाने या मजदूर नहीं थे। इंग्लैंड में, फिर जर्मनी और फ्रांस में आया मशीन युग, जिसने इन देशों में खेतिहर समाज के मूल्यों और जीवन शैली को दफनाकर औद्योगिक समाज की नींव रखी। अब इस शती के आखिरी चरण में कम्प्यूटर आधारित संचार क्रांति एक बार फिर दूरगामी परिवर्तन का संदेश दे रही है। आल्विन टाफ्लर के शब्दों में कृषि क्रांति, औद्योगिक क्रांति के बाद यह संचार क्रांति विकास यात्रा की तीसरी लहर है जिसमें बुद्धि-बल सत्ता का स्रोत होगा।

भारत में कमोबेश तीनों लहरें एक साथ चल रही हैं। सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी एक-तिहाई से अधिक नहीं बची है जबकि उद्योग और सेवा क्षेत्रों का योग दो-तिहाई तक पहुंच गया है। उपग्रह, टी वी, टेलीफोन, फैक्स, इंटरनेट द्वारा तमाम विषयों की अधुनातन जानकारी घर बैठे प्राप्त की जा सकती है। तीसरी लहर भारत और अन्य विकासशील देशों को अपनी लपेट में लेने जा रही है।

राष्ट्रीय उत्पाद, राजस्व और व्यावसायिक लाभकारिता की दृष्टि से कृषि क्षेत्र का

वर्चस्व भले ही घट गया हो, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आजीविका प्रदान करने में वह पहले नंबर पर है। इसलिए भारत में कृषि भूमि का दर्जा सर्वोपरि है और आगे भी यही स्थिति रहेगी। पश्चिमी देशों के तर्ज पर अकेले औद्योगीकरण द्वारा अर्थव्यवस्था का कायाकल्प भारत और चीन सरीखे अधिक आबादी वाले देशों में नहीं हो सकेगा क्योंकि बुनियादी परिस्थितियों में जमीन-आसमान का अंतर है। पश्चिम की टेक्नालाजी का भरपूर फायदा अलबत्ता हम उठा सकते हैं—कुछ नकल करके, कुछ अपने अनुरूप ढालकर और काफी कुछ स्वय नई विधियां ईजाद करके। नई और पारंपरिक प्रणालियों में सामंजस्य बिठा कर बढ़त हासिल की जा सकती है।

अंतर्राष्ट्रीय परिवर्तन की आंधी ने कृषि भूमि से हमारे और काश्तकारों के रिश्ते कैसे बदले, फिर कैसे उन्हें सुधारने की कोशिश हुई और अब हो रही है, यह समझने और समझाने के लिए पीछे मुड़कर देखना जरूरी है।

प्लासी की लड़ाई (सन् 1757) के अंग्रेज विजेताओं ने बंगाल में लगान वसूलने का अधिकार हथिया लिया। कुछ ही वर्षों बाद बिहार और उड़ीसा के इलाके ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार में आ गए। लगान की दरें ड्योढ़ी से भी अधिक हो गईं। लगान और व्यापारिक लूट का ही परिणाम था 1770 का दुर्भिक्ष जिसमें बंगाल में लाखों लोग भुखमरी के शिकार हुए।

अंग्रेजों ने इन क्षेत्रों में लगान वसूली के लिए जमींदार नियुक्त किए और जमीन के मालिकाना अधिकार उनको सौंप दिए। भूमि पर काश्तकार का आनुवंशिक अधिकार समाप्त हो गया। जमींदार वसूली के बाद निर्धारित भाग सरकारी खजाने में जमा करके शेष राशि अपने ऐशो आराम के लिए रख लेता। हलवाहों से खुदकाश्त वाली जमीन पर खेती कराता। प्राकृतिक विपदा आने पर भी लगान में छूट न मिलने पर काश्तकार कर्ज लेता और उसे चुका न पाने पर बेदखल कर दिया जाता। लगान भी इतना कि किसान के पास अपने गुजारे लायक मुश्किल से कुछ बचता। इस तरह साहूकारी का धंधा चमका। जमींदार, साहूकार और सरकार तीनों काश्तकार को कंगाली की ओर धकेलते रहे। रैयतवाड़ी क्षेत्रों में जमीन सरकार की हो गई जिस पर काश्तकार बटाईदार जैसी हैसियत से खेती करता और पेट काट कर भी लगान अदा करता।

> *राष्ट्रीय उत्पाद, रोजगार और व्यावसायिक लाभकारिता की दृष्टि से कृषि क्षेत्र का वर्चस्व भले ही घट गया हो, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आजीविका प्रदान करने में वह पहले नंबर पर है।*

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से काश्तकार पर दूसरी जबर्दस्त मार पड़न लगी। विलायती कारखानों का माल भारत में आने और निर्यात के रास्ते बंद किए जाने से भारतीय उद्योग चौपट होने लगे। उनमें लगे लोग भुखमरी के शिकार होने लगे। बहुत से लोगों ने गांवों में आश्रय लिया, क्योंकि वहां जमीन थी और मजदूरी करने की गुंजाइश भी। इस तरह खेतिहर मजदूरों की जमात वर्ग विशेष के रूप में पहचानी जाने

लगी। कृषि भूमि पर आबादी का दबाव बढता गया।

अंग्रेजों की कृषि और काश्तकार नीति के अनेक कुपरिणाम निकले जिनमें से कुछ का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा -

- सन् 1770 से 1942 तक कई इलाकों में कई बार गंभीर दुर्भिक्ष पडे जिनमें लगभग तीन करोड भारतीय भुखमरी के शिकार हुए।
- 1911 से 1941 के बीच अनाज के उत्पादन में 29 प्रतिशत कमी आई। नकदी फसलों का क्षेत्रफल तो बढ गया था, मगर वास्तविक कारण यह था कि कृषि क्षेत्र में जमींदार और काश्तकार पूजी निवेश नहीं कर रहे थे। आम काश्तकार की कमर लगान के बोझ से टूट चुकी थी। अधिकतर किसान कर्ज के बोझ से कराह रहे थे। कहा जाने लगा था कि भारतीय किसान कर्ज में पैदा होता है और कर्जदार ही मरता है।
- उन्नीसवीं शताब्दी में जमींदारी और सूदखोरी के खिलाफ कई जगह किसानों ने विद्रोह किया जैसे कि मलाबार क्षेत्र में मोपला विद्रोह, छोटा नागपुर क्षेत्र में कोल विद्रोह आदि।

स्वाधीनता संघर्ष के अंतिम चरण में स्वाधीन भारत की अर्थव्यवस्था के बारे में देखे गए सपनों में कृषि क्षेत्र को परोपजीवी बिचौलियों के चंगुल से मुक्त कराने का संकल्प शामिल था। राष्ट्रीय आयोजन समिति ने सभी बिचौलियों को समाप्त करने, काश्तकारों को भू-स्वामित्व सौंपने, बटाईदारी प्रथा खत्म करने और उपज का समुचित मूल्य दिलाने की सिफारिश की। अंततः कांग्रेस कार्यकारिणी ने 1945 में जोतने वाले को जमीन दिलाने, लगान में कमी करने, खेतिहर मजदूरों को जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी दिलाने का प्रस्ताव पारित किया।

सन् 1947 में अंग्रेजों की वापसी के बाद राज्य सरकारों ने जमींदारी उन्मूलन कानून बनाए। जमींदारी प्रथा की समाप्ति निश्चय ही एक क्रांतिकारी कदम था बावजूद इसके कि जमींदार कानून बनने और लागू होने की लंबी प्रक्रिया का लाभ उठाने में सफल रहे। बडे पैमाने पर बेदखलियां हुई और जमींदारों ने खुदकाश्त के नाम पर बहुत-सी जमीन अपने कब्जे में कर ली।

जमींदारी और जागीरदारी चली गई। उनकी जगह लेली बड़े भूस्वामियों ने जिनके पास पैसे, लाठी और बुद्धि का बल था। अशिक्षा, गरीबी और कर्ज के बोझ से दबी ग्रामीण आबादी में केवल उन लोगों को लाभ मिला जिन्हें जमीन पर मालिकाना हक मिले। भूमिहीन खेतिहर मजदूर, जिनमें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जाति के लोगों की संख्या अधिक है, लगभग कोरे रह गए।

जात पात और जमीन पर आधारित ग्रामीण समाज को सामंती प्रवृत्तियों से मुक्त

कराने और लोकतंत्र की खुली हवा में लाने के लिए मतदान का अधिकार काफी नहीं है। जोत की अधिकतम सीमा भी जल्द बांधी जाती और उस पर अमल होता तो इस कार्य में बहुत मदद मिलती। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। बहुत से राजनेता भूस्वामी वर्ग के थे या उसका समर्थन खोने का जोखिम नहीं उठाना चाहते थे। व्यावहारिक राजनीति का तकाजा कहें या राजनैतिक संकल्प का अभाव, जिसके कारण राष्ट्रीय स्तर पर कोई कारगर आम राय नहीं बन पाई।

सन् 1972 में आयोजित मुख्यमंत्री सम्मेलन में कृषि भूमि की हदबंदी के लिए राष्ट्रीय मार्गदर्शक सिद्धांत बनाए गए। दो फसली सिंचित भूमि के लिए 10 से 18 एकड़, एक फसली भूमि के लिए 27 एकड़ और सभी प्रकार की दूसरी जमीनों के लिए 54 एकड़ की सीमा बांधी गई। चाय, काफी, रबड़ आदि के बागान, व्यावसायिक और औद्योगिक इकाइयों के कब्जे वाली जमीन हदबंदी से मुक्त रखी गई। चीनी कारखानों को 100 एकड़ जमीन रखने की छूट मिली।

राज्य सरकारें अधिकतम सीमा से कम सीमा निश्चित करने के लिए स्वतंत्र थीं। केरल में ऐसा हुआ भी। फाजिल जमीन भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को दी जानी थी, खासकर अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों को। जमींदारों की विदाई तो आसानी से हो गई मगर फाजिल जमीन को कब्जे में लेना और असहाय लोगों में बांटना दुर्गम चोटी पर चढ़ने जैसा साबित हुआ।

सन् 1972 के पहले और बाद में बने कानून की गिरफ्त से बचने के लिए भूस्वामियों को बहुतेरा समय मिल गया—बहुतों ने बेनामी हस्तांतरण और हेराफेरी के जरिए कानून को धता बता दिया। इस तरह बहुत लोगों के पास फाजिल जमीन है। ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्री डॉ. जगन्नाथ मिश्र ने हाल में राज्य सरकारों को भूमि सुधार के बारे में जो पत्र लिखा है उनके अनुसार 10 लाख 65 हजार एकड़ भूमि विभिन्न स्तरों पर मुकदमों में फंसी है। इन्हें जल्द निपटाने के लिए हाईकोर्ट की विशेष बेंच बनाने का सुझाव दिया गया है। ट्रिब्यूनल भी गठित किए जा सकते हैं। इसी पत्र के अनुसार आठ लाख एकड़ जमीन बांटी जानी है और राज्य सरकारें फाजिल जमीन का उपयोग दूसरे कार्यों के लिए कर रही हैं। भूमि के मोह से राज्य सरकारें भी मुक्त नहीं हैं।

राज्य सरकारें हदबंदी कानूनों पर अमल अपनी सुविधा के अनुसार करती रही हैं। राजनैतिक दल भी इसके अपवाद नहीं रहे। 1990 की बात है। तत्कालीन उप प्रधानमंत्री श्री देवीलाल के मंत्रालय ने भूमि सुधार और पंचायती राज पर विचार के लिए आमंत्रित मुख्यमंत्री सम्मेलन में कुछ प्रस्ताव और दस्तावेज रखे। ये दो महीने पहले राज्यों को भेजे जा चुके थे। इस बीच लोगों ने ताऊ (श्री देवीलाल) को समझाया कि प्रस्तावित भूमि सुधार आपके समर्थकों की खाट खड़ी कर देंगे। अत: 11-12 जून को हुए सम्मेलन में देवीलाल शहरी जमीन की हदबंदी पर ही बोले। मुख्यमंत्रियों में कांग्रेस के चिमनभाई पटेल (गुजरात), भाजपा के सुंदरलाल पटवा (मध्यप्रदेश) और जनता दल के बीजू

पटनायक (उड़ीसा) की राय थी कि भूमि सुधार कार्यक्रम को आगे बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जो हो चुका वही बहुत है।

सन् 1972 के पहले और बाद में बने कानून की गिरफ्त से बचने के लिए भूस्वामियों को बहुतेरा समय मिल गया—बहुतों ने बेनामी हस्तांतरण और हेराफेरी के जरिए कानून को धता बता दिया।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के ज्योति बसु (प बंगाल) भूमि सुधारों के पक्ष में बोले और मुलायम सिंह यादव (उत्तर प्रदेश) का रुख सकारात्मक रहा। लालू प्रसाद यादव (बिहार) ने ललकारते हुए कहा कि जो कानून पर अमल नहीं करा सकता वह इस्तीफा दे दे। यह बात अलग है कि जमीन की लूट और खेत जोतने वालों को अपने अधिकारों से वंचित रखने में उनका प्रदेश सबसे आगे है।

भूमि सुधार का सबसे ज्यादा काम पश्चिम बंगाल और केरल में हुआ है। इसका श्रेय वामपंथी दलों की पहल को है। पश्चिम बंगाल में 'आपरेशन बर्गा' के नाम से बटाईदारों को रिकार्ड में लाने का अभियान चलाया और उन्हें काश्तकाराना हक दिलवाया गया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से शहरी भूस्वामियों की नाराजगी का एक मुख्य कारण यह भी है।

इस मुख्यमंत्री सम्मेलन में लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी के आई.ए.एस प्रोबेशनरों द्वारा किए गए सर्वेक्षण के निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए थे। अठारह राज्यों के 111 जिलों के सर्वेक्षण से ये तथ्य उभर कर सामने आए

(1) जिन भूस्वामियों के पास हदबंदी की सीमा से अधिक जमीन है उनमें 60 प्रतिशत ऊंची जातियों के हैं।

(2) हदबंदी से संबंधित अधिकतर मामले 1971 से 1980 के बीच दायर किए गए।

(3) जितनी फाजिल जमीन मिलने का अनुमान लगाया गया था उसके मुकाबले बहुत कम जमीन फाजिल घोषित हुई।

(4) अधिग्रहीत फाजिल जमीन के 95 प्रतिशत भाग पर सिंचाई का कोई प्रबंध नहीं है।

(5) अधिग्रहीत भूमि का केवल 54 प्रतिशत वितरित किया गया है।

(6) बहुत से पुराने भूस्वामियों ने फाजिल जमीन पाने वालों का कब्जा नहीं कायम रहने दिया।

(7) वास्तविक काश्तकारों या बटाईदारों के नाम रिकार्ड में दर्ज नहीं हैं। असम, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार में ऐसे मामलों का प्रतिशत 41 से लेकर 95 प्रतिशत है।

इस तरह के विरोधाभास भारतीय जीवन की असलियत के हिस्से हैं। गांवों में

भूस्वामियों, साहूकारों और अन्य ताकतवर वर्गों के, जिनमें सरकारी अमला भी शामिल है, हित एकाकार हो जाते हैं। राजनीति भी इन्हें स्वीकार कर लेती है, हालांकि उस पर दूसरे दबाव भी रहते हैं। इन दबावों के कारण ही भारत सरकार ने संविधान में संशोधन करके भूमि सुधार कानूनों को नौवीं अनुसूची में रखने का फैसला किया है ताकि उनकी वैधता को अदालत में चुनौती न दी जा सके।

ऐसी कोई भी टेक्नोलॉजी या जीवन शैली हमारी समस्याओं को हल करने में सहायक नहीं हो सकती जो रोजगार के अवसर न बढ़ाए और श्रमशक्ति का समुचित उपयोग न करे।

भूमि सुधार में ढील देने के कारण अनेक समस्याएं जटिलतर होती जा रही हैं। मसलन श्रमशक्ति के समुचित उपयोग और रोजगार के अवसरों में वृद्धि, देश की बढ़ती जरूरतों के अनुसार खेती की पैदावार में वृद्धि की समस्याओं को शायद ही कोई केंद्र सरकार लंबे समय तक अनदेखा कर सकती है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भूमि सुधार को गति देना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, क्योंकि 'गरीबी हटाओ' कार्यक्रम के अधीन किए गए सभी उपाय अपर्याप्त और अधूरे साबित हुए हैं।

एक नजर जोतों के आकार और उनकी संख्या पर भी डालते चलें।

1971 की जनगणना के साथ कृषि संबंधी आंकड़े भी संकलित किए गए। एक हेक्टेयर (2.47 एकड़) से कम क्षेत्रफल वाली सीमांतक जोतों का अनुपात 50.6 प्रतिशत था, जो 20 वर्ष बाद बढ़कर 59 प्रतिशत हो गया। एक से दो हेक्टेयर की छोटी जोतों का प्रतिशत 19 प्रतिशत ही बना रहा। इस प्रकार 78 प्रतिशत भूस्वामियों के पास केवल 21 प्रतिशत कृषि भूमि है जबकि 22 प्रतिशत भूस्वामियों का 78 प्रतिशत भूमि पर कब्जा है।

छोटी जोतों के बारे में ज्ञात हुआ कि सिंचाई और गहन खेती के मामले में वे दूसरों से कहीं आगे हैं। छोटी जोत वाला किसान जी-तोड़ मेहनत करता है ताकि वह आत्मनिर्भर हो सके। पूरा परिवार खेती में जुट जाता है। जबकि बड़ी जोत वाले काश्तकार को दिहाड़ी पर मजदूर रखने पड़ते हैं और वह प्राय: पूरा ध्यान केंद्रित नहीं कर पाता। उसकी दूसरी व्यापारिक दिलचस्पियां भी होती हैं। जैसे साहूकारी या खेती के अलावा अन्य धंधे।

दूसरी ओर यह भी सही है कि बड़ा भूस्वामी खेती में अधिक पूंजी लगा सकता है, खाद और उन्नत बीज का और उपज की बिक्री का बेहतर प्रबंध कर सकता है। लेकिन वह जोत के आकार के अनुपात में श्रमशक्ति का कम उपयोग करता है। श्रमिकों की जगह पूंजी और मशीनों का अधिक सहारा लेता है। इसलिए हरित क्रांति वाले क्षेत्रों में भी आरंभ में श्रमशक्ति का उपयोग बढ़ता है मगर जल्द ही वह घटने लगता है। रोजगार के अवसर बढ़ाने में बड़ी और उपजाऊ जोतें अधिक सहायक नहीं होतीं, यह अनेक सर्वेक्षणों से सिद्ध हो चुका है।

आज़ादी जब मिली तब 1947 में ब्रिटिश भारत की सकल कृषि भूमि पर जमींदारों का स्वामित्व था और 1991 में तीन चौथाई कृषि क्षेत्र पर एक चौथाई से भी कम लोगों का कब्जा था। इस अर्धसामंती ढाचे में परिवर्तन किए बिना खेती या गाव के विकास की योजनाएं रेत में नहर बनाने जैसी कोशिशें ही साबित होंगी।

खेती के आधुनिकीकरण के समर्थक, बड़े काश्तकारों और उद्योगपतियों का तर्क है कि हदबंदी खत्म कर दी जाए या उसकी सीमा इतनी बढ़ा दी जाए कि अधुनातन विधि से खेतों की उत्पादकता बढ़ाई जा सके। नई आर्थिक नीति अपनाए जाने के बाद कृषि क्षेत्र को पूरी तरह बंधनमुक्त करने का दबाव बढ़ रहा है। कृषि क्षेत्र में प्रवेश के लिए देसी और विदेशी कंपनियों की छटपटाहट बढ़ गई है।

इसके विपरीत कृषि विशेषज्ञों और अर्थशास्त्रियों की खासी बड़ी जमात, जो तंग दायरे से बाहर निकल कर सोचती है और देश के सामने खड़ी चुनौतियों का जवाब खोजती है, उपरोक्त विचारधारा से सहमत नहीं है। ऐसी कोई भी टेक्नोलाजी या जीवन शैली हमारी समस्याओं को हल करने में सहायक नहीं हो सकती जो रोजगार के अवसर न बढ़ाए और श्रम शक्ति का समुचित उपयोग न करे।

उद्योगों और भूमि स्वामित्व का विकेंद्रीकरण, सहायक उद्यमों का विकास-विस्तार, गांवों में संस्थानिक ढांचे की मजबूती, नई टैक्नोलाजी का प्रचार-प्रसार जैसे उपाय ही सहायक हो सकते हैं। ये भी मौजूदा स्थिति में कारगर होते नहीं दीखते क्योंकि सरकारी सुविधाओं का अधिकांश लाभ बड़े और समर्थ किसान हड़प जाते हैं। आजादी जब मिली तब 1947 में ब्रिटिश भारत की सकल कृषि भूमि पर जमींदारों का स्वामित्व था और 1991 में तीन चौथाई कृषि क्षेत्र पर एक चौथाई से भी कम लोगों का कब्जा था। इस अर्द्ध सामंती ढांचे में परिवर्तन किए बिना खेती या गाव के विकास की योजनाएं रेत में नहर बनाने जैसी कोशिशें ही साबित होंगी।

भूमि सुधारों और हदबंदी के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क सार्वभौमिक अनुभव है। 1990 में न्यूयार्क से प्रकाशित पुस्तक 'द पोलिटिकल इकोनामी आफ रूरल पावर्टी : द केस फार लैंड रिफार्म्स' में श्री घोनेमी 15 देशों के भूमि सुधार कार्यक्रमों का विश्लेषण करके इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि जिन देशों में कृषि भूमि के स्वामित्व का विकेंद्रीकरण जितना अधिक है उन देशों के गावों में सबसे गरीब वर्ग की स्थिति उतनी ही अच्छी है। लेखक ने भूमि सुधार कार्यक्रम पूरी तरह लागू करने वाले देशों (चीन, क्यूबा, इराक, दक्षिण कोरिया) और आंशिक भूमि सुधार वाले देशों (मेक्सिको, बोलीविया, पेरू, ईरान और भारत समेत सात अन्य देशों) के आंकड़े दिए हैं। 1948-49 में एक साथ विकास यात्रा आरंभ करने वाले चीन और भारत में से चीन ने खेती के मामले में भारत के मुकाबले तीन गुना अधिक प्रगति की है। अनाज की उत्पादकता, पोषण, निरक्षरता उन्मूलन आदि सभी बातों में चीन आगे निकल गया है, हालांकि भारत ने खेती की

उन्नति और गरीबी उन्मूलन पर यथेष्ट धन खर्च किया है।

1948-49 में एक साथ विकास यात्रा आरंभ करने वाले चीन और भारत में से चीन ने खेती के मामले में भारत के मुकाबले तीन गुना अधिक प्रगति की है। अनाज की उत्पादकता, पोषण, निरक्षरता उन्मूलन आदि सभी बातों में चीन आगे निकल गया है, हालांकि भारत ने खेती की उन्नति और गरीबी उन्मूलन पर यथेष्ट धन खर्च किया है।

घोनेमी ने पाया कि केरल राज्य में, जहा भूमि-सुधार कार्यक्रम अधिक उत्साह से लागू किए गए, घनी आबादी और बेरोजगारी के बावजूद गरीबी की गभीरता और गरीबों की सख्या घटी है। केरल में हदबदी की सीमा अन्य राज्यों से नीची है और काश्तकारों को मालिकाना हक मिले हैं। भूमि वितरण का अखिल भारतीय औसत तीन प्रतिशत है, मगर केरल में वह सबसे अधिक 17.5 प्रतिशत रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में ट्रेड यूनियनों की मौजूदगी और मजदूरी की बेहतर दर तथा शिक्षा के प्रसार सरीखी सहायक परिस्थितियों ने भी गरीबी घटाने में मदद की है, किंतु मुख्य श्रेय भूमि सुधार को दिया गया है।

जात पात और ऊच-नीच में विश्वास करने वाले पारपरिक समाजों में भूमि सुधार से न केवल विषमताए घटती हैं वरन् सहकारी प्रयास और वित्तीय एव सेवा सगठनों को भी अधिक सफलता मिलती है।

आधुनिक सगठित उद्योग और मशीन बहुल खेती को आदमी कम और श्रम बचाने वाली पूजी अधिक चाहिए इसलिए ये दोनों रोजगार के अवसर बढाने या गरीबी घटाने में कदापि सक्षम नहीं हैं।

कृषि क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय या बडी देसी कपनियों का प्रवेश हानिकर ही सिद्ध होगा, क्योंकि उनके लक्ष्य और व्यावसायिक तौर तरीके ग्राम विकास के उद्देश्य से मेल नहीं खाते।

सगठित उद्योग दो तरह से किसानों की मदद भी कर सकते हैं और अपने दीर्घकालीन लक्ष्य भी पूरे कर सकते हैं। कृषि उपज में दिलचस्पी रखने वाले उद्योगपति और व्यवसायी किसानों के समूहों, उनकी सहकारी समितियों को बीज, खाद, कर्ज आदि उपलब्ध कराने में सहायक बनकर उनसे उनकी उपज खरीदने का युक्तिसगत करार कर सकते हैं। दोनों पक्षों को लाभ होगा—उत्पादकता और उत्पादन दोनों बढेंगे। इसी तरह दूसरे उद्योग, जहा ऐसा सभव है, गावों में उत्पादन केंद्र खोल या खुलवाकर अपनी भी बचत करते हुए लोगों की क्रय शक्ति बढाकर बाजार का दायरा और विकास की रफ्तार बढा सकते हैं।

यह तयशुदा बात है कि अधिसख्य छोटे किसानों और सात करोड, भूमिहीन मजदूरों की फौज को अकेले खेती या पूजी बहुल उद्योगों से रोजी रोटी नहीं मिल सकती। छोटे उद्यम और बागवानी, पशुपालन, डेयरी उद्योग, मत्स्य पालन आदि सहायक

उद्यमों का फैलाव ही उनको आर्थिक सबल और खुशहाली प्रदान कर सकता है।

ग्रामवासी लाभ, भाईचारे और आत्म सम्मान की भाषा जानते हैं। साधनहीन किसान और खेतिहर मजदूर में भारतीय सामाजिक व्यवस्था और सदियों की उपेक्षा ने बहुत सी कुंठाए भर दी हैं, जिन्हें पहचानना होगा।

निजी क्षेत्र की कंपनिया उन्नत बीज, गैर रासायनिक खाद और कीटनाशक के लगभग अछूते क्षेत्रों में पैठकर मुनाफा कमा सकती हैं। तात्कालिक लाभ के लिए विदेशी सहयोग या टैक्नोलाजी का अंधानुकरण दूरदेशी या बुद्धिमानी नहीं है।

सरकारों की ग्राम विकास और खेती की उन्नति की योजनाए अपेक्षित नतीजे नहीं दे रहीं तो इसका मूल कारण है कि सरकारी तंत्र में खामी है और किसानों को यह अहसास नहीं दिया जाता कि ये उनकी अपनी योजनाए हैं। इसलिए उनका आंतरिक सहयोग नहीं मिल पाता। ग्रामवासी लाभ, भाईचारे और आत्म सम्मान की भाषा जानते हैं। साधनहीन किसान और खेतिहर मजदूर में भारतीय सामाजिक व्यवस्था और सदियों की उपेक्षा ने बहुत सी कुंठाए भर दी हैं, जिन्हें पहचानना होगा।

कई क्षेत्रों में आदिवासियों और अन्य गरीब वर्गों के शोषण ने नक्सलवादी जैसे हिंसावादी आंदोलनों को जन्म दिया है। मुख्य आर्थिक धारा में से बाहर किए गए इन लोगों की प्रतिक्रिया सामाजिक-आर्थिक तंत्र के खिलाफ है। इस तंत्र को सुधारने की आवश्यकता है, जिसमें भूमि सुधार की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। □

19

गरीबों के लिए स्वास्थ्य सुविधाएं : स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका

के.एल. चोपड़ा

पिछले कुछ वर्षों के दौरान विभिन्न घातक बीमारियों जैसे दिल के दौरे, कैंसर, एड्स आदि में खतरनाक वृद्धि हुई है। इस पर चिंता प्रकट करते हुए लेखक ने जनता में रोगों के प्रति चेतना फैलाने के साथ साथ उनकी रोकथाम के उपायों की आवश्यकता पर जोर दिया है। उनके अनुसार तम्बाकू आज मानवता के सम्मुख सबसे व्यापक खतरा है।

इतिहास में हर युग अपनी कला, संगीत और संस्कृति के लिए विख्यात है। ऐसा लगता है कि अगर हम चौकस न हुए और हमने सही दिशा में समुचित उपाय न किए तो हमारा युग भविष्य में दिल के दौरे, कैंसर और एड्स के युग के नाम से विख्यात हो जाएगा।

हृदय रोग, कैंसर और एड्स की बीमारी की रोकथाम के लिए अभी तक कोई टीका नहीं बना है। इन तीनों बीमारियों के कुल मुख्य कारण हैं जिनका निश्चित रूप से एक बड़ी सीमा तक निवारण संभव है।

राष्ट्रीय व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान परिषद् द्वारा योजना आयोग के लिए किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में 38 लाख रोगियों का क्षय के लिए इलाज किया जाता है। रोग फैलने की दर इससे दुगुनी हो सकती है क्योंकि प्रति वर्ष क्षय के 15 लाख नये रोगियों का पता चलता है। सर्वेक्षण् के दौरान पता चला है कि 55 लाख लोग उच्च रक्तचाप और 55 लाख लोग दिल की बीमारी से पीड़ित हैं। सर्वेक्षण से यह भी पता लगा है कि काफी लोग अल्पावधि बीमारियों जैसे कि अतिसार, जुकाम और बुखार से पीड़ित हैं। प्रत्येक हजार लोगों में 71 व्यक्ति बुखार से पीड़ित थे और 31 अतिसार से। सर्वेक्षण में बताया गया है कि देश की जनता रोगों के उपचार आदि पर 142 अरब रु खर्च कर रही है। गरीब अपनी कमाई का सबसे बड़ा हिस्सा स्वास्थ्य संबंधी देखभाल का खर्च कर रहे हैं। इस पर वे अपनी आय का 8 प्रतिशत, मध्य वर्ग के लोग 4 प्रतिशत और अमीर लोग 2-3 प्रतिशत खर्च करते हैं। कम अवधि की बीमारी पर हर परिवार

108 रु खर्च करता है। पता चला है कि चार वर्ष से कम आयु के 70 प्रतिशत बच्चों का विकास कुपोषण के कारण रुक गया है। निर्धन लोग स्वास्थ्य संबंधी खतरों से अधिक पीड़ित रहते हैं। गरीबों को स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने के लिए क्या किया जा सकता है—इस विषय पर तत्काल निर्णय लिये जाने की आवश्यकता है।

मलेरिया

मलेरिया उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र की सबसे खतरनाक बीमारी है। यह भारत में बहुत तेजी से बढ़ रही है। प्रतिवर्ष लाखों लोग मलेरिया के शिकार होते हैं। राजस्थान और देश के पूर्वी क्षेत्र में फेलसीपारम मलेरिया से सैकड़ों लोगों के मरने की सूचना मिली है।

क्षय और एड्स

हमारे देश में क्षय की बीमारी लगातार बढ़ रही है और खतरनाक रूप ले रही है। अगर इस महामारी की उपेक्षा की जाती रही तो भावी पीढ़ियां इस दशक को उस समय के रूप में याद रखेंगी जब मानवता ने जानलेवा ट्यूबरक्लोसिस को, जो हवा के जरिए फैलता है, विश्व भर में दवा प्रतिरोधी और असाध्य बन जाने दिया। क्षय रोग तेजी से फैल रहा है। इसका सामना करने की कारगर योजना बनाई जानी आवश्यक है ताकि आने वाले वर्षों में लाखों लोगों को मौत के मुंह से बचाया जा सके।

'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार भारत में, जहां विश्व की 15 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, एड्स विस्फोट होने ही वाला है। "हम लोग एक ज्वालामुखी के कगार पर बैठे हैं।"

विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार 1994 में विश्व के 56 लाख लोग क्षय और एच आई वी (एड्स के विषाणुओं) से पीड़ित थे। इस शताब्दी के अंत तक एच आई वी पाजिटिव लोगों में क्षय मौत का मुख्य कारण होगा। क्षय के रोगियों की ठीक से देखभाल की जाए तो एड्स के रोगियों पर भविष्य में होने वाला आधा खर्च बचाया जा सकता है।

भारत सहित एशियाई देशों में स्थिति विशेष रूप से नाजुक है। इन देशों में क्षय के दो तिहाई मरीज हैं। यद्यपि ये दोनों महामारियां एक-दूसरे को बढ़ावा देती हैं उनकी स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं सर्वथा अलग-अलग हैं। इनसे लड़ने के लिए अलग-अलग हथियारों की जरूरत पड़ती है। एड्स के मामले में लैंगिक आचरण बदलने और एड्स का उपचार और टीका खोजने पर जोर दिया जाना चाहिए। क्षय के लिए सस्ता और कारगर इलाज पहले से ही उपलब्ध है। जोर इस बात पर दिया जाना चाहिए कि उपचार की बेहतर सुविधाएं स्थापित की जाएं।

एड्स विश्वव्यापी समस्या है। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार 1994 में विश्व में 1.4 करोड़ 'सिरोपाजिटिव' (ह्यूमन इम्यून डेफिशियेंसी वाइरस—एच आई वी

पाजिटिव) लोग थे जिनमें 6 लाख बच्चे थे। लगभग 26 लाख लोग इस विनाशकारी बीमारी से वास्तव में पीड़ित हैं। भारत में एच.आई.वी. पाजिटिव रोगियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। यह वेश्याओं में सबसे अधिक व्याप्त है और उनके माध्यम से तेजी से अन्य लोगों में भी फैल रहा है।

इस रोग के फैलाव का कारण अज्ञानता और अशिक्षा है। हमें यह बात समझ लेनी चाहिए कि मानव इतिहास में इस तरह की जानलेवा और कष्ट देने वाली दूसरी कोई बीमारी नहीं है। आज तक किसी अन्य बीमारी ने मानवता के लिए ऐसा खतरा पैदा नहीं किया।

लेकिन, निराशा का कोई कारण नहीं है। हमें भविष्य के बारे में स्पष्ट रूप से सोचना चाहिए और उस खतरे को समझना चाहिए जो एड्स हमारे लिए पैदा कर रहा है। हमें इस चुनौती का दृढ़ता से सामना करना होगा। समाज के सभी सदस्यों को मिलकर यह काम करना होगा। एड्स मुख्य रूप से शारीरिक संबंधों के जरिए फैलने वाली बीमारी है। लोगों को चाहिये कि वे विवाहेतर संबंधों से बचें और जब कभी आवश्यक हो कंडोम (निरोध) का इस्तेमाल करें।

बीड़ी-सिगरेट पीना जानलेवा आदत

बीड़ी-सिगरेट पीना और तम्बाकू खाना दिल और कैंसर के मरीजों के लिए सबसे हानिकारक होता है। रोज 30 से 40 सिगरेट पीने वालों में दिल के दौरे का खतरा 10 गुना अधिक और 5 से 10 सिगरेट पीने वालों में दो गुना अधिक बढ़ जाता है। तम्बाकू पीने वालों को दिल का दौरा पड़ने पर अनेक जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। उनकी अचानक मौत भी हो सकती है।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में महामारी विज्ञानी और सांख्यिकीविद् प्रोफेसर रिचर्ड पेटो का कहना है कि लोग तम्बाकू के सेवन और रोगों के बीच का रिश्ता नहीं समझते हैं क्योंकि तम्बाकू की आदत की शुरुआत और हृदय रोग, कैंसर, ब्रोंकाइटिस (श्वासनली रोग), आमाशय का फोड़ा आदि भयानक, जबरदस्त और घातक बीमारियों के प्रकट होने के बीच काफी समय का अंतराल होता है। उनका कहना है कि आधुनिक युग में दुर्घटनाओं में मरने वालों की तुलना में 50 गुना अधिक लोग तम्बाकू के सेवन से मरते हैं। तम्बाकू का सेवन करने वाले प्रति हजार व्यक्तियों में से आधे लोगों की मौत दिल का दौरा पड़ने या कैंसर से होती है। दुनिया में हर मिनट छह व्यक्तियों की मौत तम्बाकू पीने से होती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में हर वर्ष लगभग 13 लाख लोग तम्बाकू सेवन के प्रत्यक्ष प्रभाव से मरते हैं। तम्बाकू सेवन से हृदय और कैंसर के रोगों में बहुत वृद्धि हो जाती है।

बच्चों को तम्बाकू सेवन न करने के लाभों के बारे में अवश्य बताया जाना चाहिए लेकिन अगर हम स्वयं बीड़ी-सिगरेट पीते हैं तो हम बच्चों को बीड़ी-सिगरेट पीने के

लिए मना नहीं कर सकते। बीडी-सिगरेट का सेवन मादक पदार्थों के सेवन का दरवाजा खोलता है, जो हमारे बच्चों के भावी जीवन को नष्ट कर सकता है।

हमारे देश में अनेक लोग गले के कैंसर से पीड़ित होते हैं। यह बीडी-सिगरेट अधिक पीने से होता है। भारत में जीभ और मुख-विवर का कैन्सर सबसे अधिक पाया जाता है जिसका कारण तम्बाकू और तरह-तरह के पान मसालों का सेवन है।

यह अनुमान लगाया गया है कि 30 प्रतिशत कैंसर रोग की मौतें, 80 प्रतिशत श्वास नली शोथ (पुराने ब्रोंकाइटिस) की मौतें और 25 प्रतिशत हृदय रोग की मौतें बीडी-सिगरेट पीने या तम्बाकू खाने से होती हैं। इन लोगों को और कोई खतरा नहीं सताता। तम्बाकू के प्रयोग से होने वाला खतरा अन्य खतरों जैसे उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हाइपरलिपीडेमिया, कसरत की कमी, पारिवारिक इतिहास आदि से आनुपातिक रूप से जुड़ जाता है।

भारत में हर वर्ष लगभग 25 लाख लोग दिल के दौरे से मरते हैं। यह संख्या कैन्सर से मरने वालों से ढाई गुनी अधिक है और विनाशकारी एवं पंगु बना देने वाले दौरे और लकवे से कुछ ही अधिक है।

उपर्युक्त बीमारियों व उनसे होने वाली मौत में, हृद्वाहिका से जुड़े रोगों से होने वाली तकलीफ और मौत में, तथा तम्बाकू सेवन से जुड़ी अन्य बीमारियों जैसे कैंसर, पुराना ब्रोंकाइटिस, पाचक फोड़ा आदि में बीडी-सिगरेट व तम्बाकू का सेवन मौत का सबसे बड़ा कारण होता है।

हाल में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि बीडी सिगरेट पीने से अन्धापन को सीधे नुकसान पहुंच सकता है और व्यस्कों को मधुमेह की शिकायत हो सकती है। इस तरह होने वाले नुकसान को कम नहीं किया जा सकता। तम्बाकू के सेवन से मनुष्य को अनेक रोगों से लड़ने की क्षमता भी कम हो जाती है। इसके अलावा इससे हृदय-नली का रास्ता बंद हो सकता है जो दिल के दौरे का कारण बन सकता है। यह शरीर के विभिन्न अंगों में कैंसर का भी प्रमुख कारण है। दिल का दौरा अब केवल समृद्ध और सम्पन्न लोगों को ही नहीं पड़ता। समाज के अपेक्षाकृत कम सुविधा-सम्पन्न और गरीब लोगों को भी हृदय रोग से पीड़ित होते देखा जाता है। तम्बाकू का अत्यधिक सेवन इसका कारण है। पुराना ब्रोंकाइटिस भी बीमारी और मौत का प्रमुख कारण है क्योंकि तम्बाकू उनकी प्रतिरक्षण क्षमता को कमजोर कर देता है। जब परिवार के अनेक सदस्य एक साथ छोटे और भीड़-भाड़ वाले मकानों या झुग्गी-झोंपड़ियों में रहते हैं तो क्षय रोग अधिक आसानी से फैलता है।

तम्बाकू को सच ही सबसे जोखिम भरी पीड़ा कहा गया है। यह व्यापक रूप से फैला है और मानवता के सम्मुख सबसे बड़ा खतरा है, जिसे रोका जा सकता है। तम्बाकू सेवन की आदत गरीबों में अपेक्षाकृत अधिक होती है। सिगरेट और बीडी में 4,000 से

अधिक रसायन यौगिक होते हैं। इनमें से अधिकांश जीव विज्ञान की दृष्टि से नुकसानदेह होते हैं। बंद क्षेत्रों में, सिगरेट-बीड़ी पीने वालों के पास-पड़ोस में, कारखानों और छोटे घरों में जहां गरीब रहते और काम करते हैं, सिगरेट-बीड़ी न पीने वाले लोग तम्बाकू के धुएं के शरीर में जाने से अधिक नुकसान भुगतते हैं। तम्बाकू कंपनियों के पास धनशक्ति है। सरकारी एजेंसियां और स्वयंसेवी संस्थाएं अब तक उनके साथ केवल प्रतीकात्मक संघर्ष करती रही है। तम्बाकू कंपनियां प्रमुख खेलों का आयोजन करती हैं और धनी और निर्धन दोनों वर्गों के बच्चों और युवकों को गुमराह करती हैं।

हमारे देश में बीड़ी का प्रयोग बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है। देश के अत्यधिक धनी बीड़ी-निर्माता निर्दोष ग्रामीणों और गरीबों की छातियों पर 900 अरब बीड़ियों के तीर चलाते हैं। इसके परिणामस्वरूप प्रति वर्ष लाखों लोग असमय मौत को गले लगाते हैं और इससे कई गुना अधिक लोग अस्वस्थता के शिकार होते हैं। फलस्वरूप ये लोग न तो अपने परिवार के लिए कोई कमाई कर पाते हैं और न अपने बच्चों की देखभाल ही कर पाते हैं।

चार वर्ष पहले हमने हरियाणा में गुड़गांव के समीप एक गांव में स्वास्थ्य-जांच का एक निःशुल्क कैम्प लगाया था। हमने पाया कि लोग तरह-तरह की बीमारियों से कुछ ज्यादा ही ग्रस्त हैं। बाद में हम पंचायत के सदस्यों से मिले। मैंने उनसे पूछा कि गांव में कितने लोग बीड़ी-सिगरेट पीते हैं। उन्होंने मेरे प्रश्न पर विचार किया, एक-दूसरे की ओर देखा और फिर उनके मुखिया ने बताया, "लगभग सभी पुरुष और औरतें दोनों।" मेरी समझ में आ गया कि वे इतनी अधिक बीमारियों से पीड़ित क्यों हैं।

हम गरीबों के लिए स्वास्थ्य सुविधाओं की बात करते हैं, जबकि हम देखते हैं कि वे स्वयं बीड़ी-सिगरेट और शराब पीकर अपने प्रति हिंसा करके धीरे-धीरे अपने को मार रहे हैं। सिगरेट और शराब की बुराई देश भर में, विशेष रूप से गरीबों में तेजी से फैल रही है। अगर हम सब नौकरशाह, एजेंसियां, सूचना माध्यम, प्रारंभिक पाठशालाओं के अध्यापक, पंचायतें, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, डाक्टर एवं स्वैच्छिक एजेंसियां समय रहते नहीं जागे और हमने मानवता की प्रामदी तम्बाकू के विरुद्ध सभी मोर्चों पर संभव तरीकों से संघर्ष नहीं किया तो हमारी भावी पीढ़ियां हमें कभी माफ नहीं करेंगी।

शुद्ध जल और स्वच्छता

स्वास्थ्य रक्षा के लिए शुद्ध पानी की पर्याप्त आपूर्ति और सफाई बहुत जरूरी है। इन दोनों पर जितना अधिक ध्यान दिया जाए उतना अच्छा है। लाखों लोगों को शुद्ध पानी प्राप्त नहीं होता और उनके इलाके में सफाई की उचित व्यवस्था नहीं होती। व्यक्तिगत सफाई के लिए पानी की व्यवस्था उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी भोजन बनाने और पकाने के लिए शुद्ध जल की। अनेक मजबूरियों के कारण देश के कई भागों में यह महत्वपूर्ण बुनियादी आवश्यकता लोगों को उपलब्ध नहीं है। क्षेत्रीय स्वयंसेवी संगठनों

दवाओं के सेवन से होने वाले रोगों की सूची भी लम्बी है। किसी भी अस्पताल में भर्ती किये जाने वाले मरीजों में एक तिहाई इसी प्रकार के होते हैं।

कैंसर से मरने वाले लोगों की संख्या में वृद्धि हुई है। प्रति वर्ष तीन लाख लोग कैंसर से मरते हैं और देश में 15 लाख कैंसर के रोगी हैं। प्रति वर्ष कैंसर के पांच लाख नए रोगी अपना नाम पंजीकृत कराते हैं। अनेक रोगी तो रोग की पहचान हुए बिना ही मर जाते होंगे। यह स्पष्ट है कि हम कैंसर और हृदय रोग के विरुद्ध अपनी लड़ाई में हार रहे हैं। बावजूद इसके कि रोगियों का कष्ट दूर करने के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है और विभिन्न चिकित्सीय और शल्य चिकित्सीय प्रक्रियाओं के जरिए जिनका खर्च कुछ ही परिवार उठा सकते हैं, रोगियों का जीवन कुछ वर्षों के लिए बढ़ाया जा सकता है।

आधुनिक दवाओं ने चेचक जैसी संक्रामक बीमारी को समूल समाप्त कर दिया है। अस्वस्थता और मृत्यु दर में काफी कमी आई है और औसत उम्र काफी बढ़ी है। शल्य चिकित्सा और उपचार की परिष्कृत विधियों द्वारा अनेक जीवन बचा लिए जाते हैं। हम समझते हैं कि हम अत्याधुनिक तकनीक की सहायता से आयु सीमा को बढ़ा सकते हैं लेकिन हम सदैव जीवन की गुणवत्ता में सुधार नहीं ला सकते।

आधुनिक प्रणाली के डाक्टरों के मन में मेडिकल कालेजों में प्रशिक्षण के दौरान बीमारियों के प्रति आकर्षण होने और दुर्लभ उपचार की तलाश का विचार बिठा दिया जाता है। यह आवश्यक है कि वे इस विषय पर पुनः सोचें और बीमारियों की ओर आकर्षित होने के बजाय स्वास्थ्य की ओर आकृष्ट हों। जब तक हम चौकस नहीं रहेंगे और एंटीबायोटिक, कोर्टिजोन और कीमोथेरेप्यूटिक दवाइयों का अंधाधुंध इस्तेमाल बंद नहीं करेंगे, "हर बीमारी के लिए एक टिकिया" का नारा "हर बीमारी टिकिया से" में बदल जाएगा। महंगी और आक्रामक जांच प्रक्रियाओं और शल्य चिकित्सा सुविधाओं ने रोगियों को राहत अवश्य दिलाई है लेकिन रोगों का प्राकृतिक प्रवाह जोर-शोर से जारी है और लाखों लोग कष्ट और मौत की ओर बढ़ रहे हैं जिसके कारण अस्पतालों के अंतरंग और बहिरंग विभागों में रोगियों की भीड़ निरंतर बढ़ती जा रही है। उत्तर क्या है? हम लोग चौराहे पर खड़े हैं। हम इस तरह आगे नहीं बढ़ सकते। दुनिया भी यह अनुभव कर रही है कि हमें वैकल्पिक चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिए।

आयुर्वेद का महत्त्व

आइये, हम लोग कुछ हजार वर्ष पीछे जाएं। चिकित्सा के क्षेत्र में भारत के प्राचीन सोच और अनुभव का अवलोकन करें। आयुर्वेद का अर्थ है 'जीवन का ज्ञान'। इसका विकास ईसा से 1000-1500 वर्ष पूर्व हुआ। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथ जैसे 'चरक संहिता' आदि ईसा से 500 वर्ष पूर्व लिखे गये।

आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य है अच्छे स्वास्थ्य को बढ़ावा देना, अर्थात् स्वास्थ्य और प्रसन्नता की सकारात्मक स्थिति उत्पन्न करना जो रोगों के अभाव से कहीं आगे की चीज

है।

आयुर्वेद चार बातों पर जोर देता है। वे हैं स्वस्थ शरीर का अनुरक्षण और नवर्द्धन, रोगों का उपचार व रोगों की पुनरावृत्ति की रोकथाम, शरीर के सभी अंगों का स्वास्थ्य लाभ और आध्यात्मिक प्रबोधन। आयुर्वेद का उद्देश्य हमें यह बताना है कि जीवन को बीमारी और वृद्धावस्था के असर से मुक्त रख कर किस प्रकार प्रभावित, विकसित और नियंत्रित किया जा सकता है। दीपक चोपडा अपनी पुस्तक 'परफेक्ट हेल्थ' में लिखते हैं कि आयुर्वेद का संबंध शरीर, मस्तिष्क, चेतना, पर्यावरण और आचरण के सभी पहलुओं से है। यह मनुष्य को आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक रूप से संपूर्ण मानता है और बीमारियों को पूर्णतया शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक मानने का प्रयास नहीं करता। कोई भी बीमारी अथवा तकलीफ न तो पूरी तरह मस्तिष्क में होती है और न पूरी तरह शरीर में, क्योंकि शरीर और मस्तिष्क दोनों संरचना, विकास और भेद प्रदर्शन की प्रक्रिया द्वारा चेतना के उत्तरोत्तर विकास के परिणाम हैं। कोई भी तरीका जो केवल मस्तिष्क पर विचार करता है या केवल शरीर पर विचार करता है या चेतना अथवा आत्मा की उपेक्षा करता हुआ मस्तिष्क और शरीर पर विचार करता है, अपर्याप्त है। आयुर्वेद एकीकृत क्षेत्र के सभी पहलुओं—शरीर, मस्तिष्क, चेतना पर्यावरण और व्यवहार पर विचार करता है। यह हमारे शरीर विज्ञान के उस असंतुलन पर विचार करता है जो बीमारियों का उत्पादक है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के चिकित्सकों के रूप में जब हम एक्स रे या सीटी स्केन द्वारा किसी चोट का पता लगाते हैं या ईसीजी में कोई असामान्यता देखते हैं, विशेष रूप से तब हमें यह लगता है कि यह असामान्यता अपनी प्रारंभिक अवस्था में है तो वास्तव में वह घाव अथवा असामान्यता जिसका हमने पता लगाया है, कई वर्षों से विकसित हो रहे असंतुलन की अंतिम भौतिक अभिव्यक्ति होती है। आयुर्वेद असंतुलन के प्रत्यक्ष होने से पहले ही अति सूक्ष्म अवस्था में संतुलन को बहाल करने का प्रयास करता है। आयुर्वेद इस कार्य को व्यवहार, जीवन शैली व पोषाहार में परिवर्तन लाकर तथा जड़ी-बूटियों, विभिन्न रसनीतियों और उपगमनों के इस्तेमाल द्वारा करता है।

आधुनिक दवाओं में एंटीबायोटिक या कीमोथेरेप्यूटिक एजेन्ट और विशेष कीटाणु पर जोर दिया जाता है। ये दोनों बाहरी हैं क्योंकि लड़ाई हमारे पक्ष में जा सकती है लेकिन हम यह नहीं समझते हैं कि दोनों हमलावर रणभूमि यानि हमारे शरीर को चकनाचूर कर देंगे, उसकी रक्षा शक्ति को कमजोर कर देंगे और तब हमलावरों की अगली सेना को विरोध का सामना ही नहीं करना पडेगा।

भोजन

रोगों की रोकथाम और उपचार में भोजन की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है। भोजन शाकाहारी, ताजा, हल्का व आसानी से पचने वाला होना चाहिए और उसकी मात्रा कम

होनी चाहिए। भोजन में सब्जिया, चावल, गेहू, फल और फलों का रस शामिल होना चाहिए। आयुर्वेद में ऐसा ही सात्विक भोजन लेने की सिफारिश की गई है। 'फास्ट फूड' से परहेज करें। आयुर्वेद में मनुष्य के शरीर की प्रकृति और शरीर रचना के आधार पर कुछ किस्म का भोजन न लेने की सिफारिश की जाती है। अत भोजन औषधि है। भोजन के रूप में अनेक किस्म का कच्चा पदार्थ आपके शरीर में जाता है। आप जो खाते हैं उसी के अनुरूप आप बनते हैं, इसलिए आयुर्वेद 'फास्ट फूड' को बढावा नहीं देता।

जडी-बूटिया दवाए नहीं हैं। वे हमारी दैहिकी में कुछ सूक्ष्म सकेत प्रविष्ट कराती हैं और इस प्रकार स्वास्थ्य लाभ का द्वार खोलती हैं। आधुनिक दवाओं में भी जडी-बूटियों का प्रयोग होता है लेकिन आमतौर पर वे सक्रिय अशों को अलग कर देते हैं और उसे किसी विशेष रोग के लिए इस्तेमाल करते हैं। आयुर्वेद में ऐसा नहीं होता। वहा पूरी जडी-बूटी का इस्तेमाल होता है। यहा सिद्धात यह है कि जडी के सक्रिय तत्त्व पौधे में अन्य तत्त्वों के साथ सवेष्टित होते हैं जो उसके प्रतिरोधक की भूमिका अदा करते हैं और उसके अवाछित नतीजों को दूर करते हैं।

ये सभी दृष्टिकोण हमारी व्यवस्था में सतुलन को बहाल करने का प्रयास करते हैं। तब हम प्रकृति के साथ ताल मेल स्थापित कर लेते हैं। हमारा प्रतिरक्षण बढ जाता है और हम असतुलन और आक्रमणकारी कीटाणुओं से अपनी रक्षा करने और बीमारियों को रोकने में समर्थ हो जाते हैं। हम अपनी लडाई स्वय लडते हैं और अपने को अच्छा कर लेते हैं। कोई भी हमारी रक्षा हमसे अच्छी तरह नहीं कर सकता।

सतुलित मार्ग

हमें यह भी समझना और अनुभव करना चाहिए कि आधुनिक दवाओं ने कुछ महान उपलब्धिया प्राप्त की हैं। वे जीवन की रक्षा करने और कभी कभी लाखों लोगों की बहुमूल्य जिन्दगी बचाने में सफल हुई है। हम लोगों को आयुर्वेद के सिद्धातों और प्रकृति के नियमों के अनुरूप अपनी जीवन शैली बदलने की चाहे कितनी शिक्षा दें, सदैव कुछ लोग ऐसे रहेंगे, जो अपनी आदत नही बदलेंगे और अपने शरीर के विरुद्ध किसी न किसी प्रकार की हिसा करते रहेंगे। ऐसे लोग जब कभी गभीर रूप से बीमार पडेंगे उन्हें आधुनिक चिकित्सा या शल्य चिकित्सा की जरूरत पडेगी। 'बैलून एजियोप्लास्टी' और 'बाइपास सर्जरी' कुछ लोगों को कुछ समय तक और अगर वे अपनी जीवन शैली बदल लें तो लम्बे समय तक लाभ पहुचाएगी।

वास्तव में जरूरत इस बात की है कि आधुनिक दवाओं का प्रयोग करने वाले डाक्टरों को यह बात समझाई जाए कि आयुर्वेद एक जीवत शक्ति है। इस प्राचीन ज्ञान और आधुनिक दवाओं की जीवन-रक्षक युक्तियों का सयोग कर हम अपने देश के गरीबों की स्वास्थ्य सबधी आवश्यकताए पूरी कर सकते हैं।

विश्व स्वास्थ्य सगठन और सरकार का सन् 2000 तक 'सभी के लिए स्वास्थ्य का

लक्ष्य हमारी वर्तमान चिकित्सा प्रणाली के रहते काफी समय तक सपना ही रहेगा। इस के वर्षों में विभिन्न बीमारियों में हुई बढ़ोतरी खतरनाक साबित होगी अगर हम समय रहते यह नहीं समझे कि हमारे देश के लिए यह बात सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि हम गंभीर रूप से बीमार रोगियों के न केवल बुनियादी और अत्याधुनिक उपचार की व्यवस्था करें बल्कि गरीब और अमीर दोनों के लिए रोगों की रोकथाम के उपाय भी लागू करें। यह कार्य व्यक्तिगत और सामुदायिक दोनों स्तरों पर शिक्षा, सूचना और विचारों के आदान-प्रदान को बढ़ा कर पूरा किया जा सकता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में स्वैच्छिक संगठन प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं।

इस विषय में बड़े पैमाने पर चेतना फैलाने में सूचना माध्यमों—समाचार पत्र, टी.वी. एवं रेडियो और समाज का सहयोग जरूरी है। भारत के हार्ट फाउन्डेशन द्वारा 1993 और 1995 में आयोजित स्वास्थ्य मेले बहुत उपयोगी रहे हैं। तम्बाकू विरोधी अभियान युद्ध स्तर पर चलाये जाने की जरूरत है।

सभी लोगों को यह समझ लेना चाहिए कि आयुर्वेद चिकित्सा कोई वैकल्पिक नहीं अपितु सहायक प्रणाली है। इस तरह की कार्यविधि रोगों की रोकथाम में सक्षम, सम्पूर्ण और वैज्ञानिक होगी। विषैले प्रभावों से सर्वथा मुक्त, कम खर्चीली और सरलता से लागू की जाने योग्य होगी। तब हमें करोड़ों रुपयों के अस्पतालों की कम और खेल के मैदानों, मनोविनोद पार्कों, योग और ध्यान केन्द्रों की जरूरत अधिक पड़ेगी। इस महान् कार्य को सफल बनाने के लिए बड़े पैमाने पर गैर-राजनैतिक स्वयंसेवी सामाजिक संगठनों, गांव पंचायतों, वैद्यों, डाक्टरों और सभी वर्गों और व्यवसायों के सदस्यों को शामिल किया जाना बहुत जरूरी है। तभी हम अपने देश के लोगों को स्वस्थ और सुखी बना सकते हैं। इस कार्य की सफलता के लिए स्वैच्छिक कार्रवाई तुरन्त किये जाने की आवश्यकता है। □

20

भूमि सुधार : ग्रामीण विकास का प्रभावी उपाय

राकेश अग्रवाल

हालांकि स्वतंत्रता प्राप्त के बाद कृषि के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है और खाद्यान्न उत्पादन में देश आत्म निर्भर बन गया है। इसके साथ ही यदि भूमि सुधार कार्यक्रमों को पूरी निष्ठा से लागू किया जाए तो देश की कृषि संबंधी अधिकांश समस्याओं का काफी हद तक समाधान हो जाएगा, यह मत व्यक्त करते हुए लेखक ने इस लेख में भूमि सुधारों की दिशा में हुई प्रगति का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है।

भूमि सुधार आर्थिक विषमता को कम कर समानता स्थापित करने का एक कारगर उपाय है। भूमिहीन पिछड़े लोग भूमि सुधार कार्यक्रम से लाभान्वित होकर एक ओर अपने जीवन स्तर में सुधार करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे कृषि उत्पादकता बढ़ाकर देश के विकास में भागीदार बनते हैं। भूमि सुधार के एक अकेले कदम से देश और समाज को कितने ही लाभ प्राप्त होते हैं। इसीलिए संसद ने 26 अगस्त 1995 को भूमि सुधार के 27 राज्य कानूनों को संविधान की नौवीं सूची म शामिल करने सम्बन्धी संशोधन विधेयक को पारित कर दिया है। अब इन कानूनों को अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इस प्रकार भूमि सुधार कार्यक्रम ग्रामीण विकास की मुख्यधारा से जुड़ गया है।

बड़े भूस्वामी बनने की लालसा ने भूमि वितरण में सदैव असमानता को बढ़ाया है। बड़े जमींदार स्वयं खेती न करके भूमिहीन कृषि श्रमिकों से खेती कराते आये हैं। काश्तकारों के पास मालिकाना हक न होने के कारण कृषि उत्पादकता कम रहती है। भूस्वामी कृषि श्रमिकों का मनमाना शोषण करते हैं और अभाव कृषि श्रमिकों की नियति का भाग बन जाते हैं। उनको सदैव यह अहसास कराया जाता है कि मालिक जो दे रहे हैं, यह उनकी कृपा है, नहीं तो तुम फूटा भाग्य लेकर आये थे। गरीबी के कारण व्यक्ति बन्धक बनकर रह जाता है। भूमि सुधार भूमिहीन गरीबों को इसी मजबूरी से उबारने का प्रयास है।

भूमि सुधार क्या और क्यों ?

भारत में भूमि वितरण में असमानता का ज्ञान इस तथ्य से होता है कि यहां आज भी लगभग 8 करोड़ भूमिहीन ग्रामीण श्रमिक विद्यमान हैं। देश में 71 प्रतिशत कृषि भूमि 23.8 प्रतिशत भूस्वामियों के पास है। शेष 76.2 प्रतिशत भूस्वामियों का मात्र 29 प्रतिशत कृषि भूमि पर नियंत्रण है। अधिकांश भूस्वामी छोटे और सीमान्त कृषक हैं जिनके पास दो हेक्टेयर से भी कम भूमि है। भूमि वितरण में इस असमानता को दूर करने के उपाय का नाम ही भूमि सुधार है।

परम्परागत अर्थ में भूमि सुधार का आशय भू-स्वामित्व के पुनर्वितरण से है, जिससे छोटे कृषकों और कृषि श्रमिकों को लाभ मिल सके। आधुनिक अर्थ में भूमि सुधार में भूमि के स्वामित्व और जोत के आकार दोनों में होने वाले सुधारों को सम्मिलित किया जाता है। प्रो. गुन्नार मिर्डल के अनुसार, भूमि सुधार का अर्थ कृषक और भूमि के संबंधों में पुनर्गठन से है। इससे भूमि का वितरण खेतिहरों के पक्ष में होता है। जोत का आकार आर्थिक या उचित बन जाता है। भूमि सुधार से सामाजिक न्याय की प्रक्रिया गतिमान होती है और कृषकों को उनके श्रम का पूरा प्रतिफल मिलता है। इसीलिए ग्रामीण विकास के लिए भूमि सुधार सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय है।

परम्परागत अर्थ में भूमि सुधार का आशय भू-स्वामित्व के पुनर्वितरण से है, जिससे छोटे कृषकों और कृषि श्रमिकों को लाभ मिल सके। आधुनिक अर्थ में भूमि सुधार में भूमि के स्वामित्व और जोत के आकार दोनों में होने वाले सुधारों को सम्मिलित किया जाता है।

भूमि सुधार देश के आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण उपाय है। किन्तु भी ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तब तक लाभदायक और प्रेरणाप्रद परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते, जब तक भूमि व्यवस्था की प्रणाली कारतकार उन्मुख न हो। भूमि सुधारों की आवश्यकता पर बल देते हुए डा. राधा कमल मुखर्जी ने लिखा है कि "वैज्ञानिक कृषि अथवा सहकारिता को हम कितना भी अपना लें, इनसे पूर्ण सफलता तब तक प्राप्त नहीं होगी जब तक हम भूमि व्यवस्था में वांछित सुधार नहीं कर लेते हैं।" भूमि सुधार के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए प्रो. नैम्युलसन ने लिखा है कि "सफल भूमि सुधार कार्यक्रमों ने अनेक देशों में मिट्टी को सोने में बदल दिया है।" वास्तविक काश्तकार के हाथों में जब भूमि का स्वामित्व होता है तो वह उस पर मन लगाकर अपनत्व भाव से कार्य करता है, जिससे कृषि की उत्पादकता बढ़ती है। इसीलिए भूमि व्यवस्था में सुधार अत्यन्त जरूरी है। श्री नानावती अन्जारिया ने कहा है कि जब तक भारत में भूमि की उत्पादकता पर दोषपूर्ण भूमि व्यवस्था के बुरे प्रभावों की उपेक्षा की जाती रहेगी, तब तक कृषि नियोजन का कोई भी कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता।

भारत में एक ओर जनसंख्या की तुलना में कृषि योग्य भूमि कम है तथा दूसरी ओर यह भूमि सीमित व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित है, जिस कारण अधिकांश कृषक भूमिहीन

हैं। ये भूमिहीन श्रमिक भूमि पर स्थायी सुधार में रुचि नहीं लेते हैं जिससे कृषि उत्पादकता कम और लगान अधिक रहता है। परिणामस्वरूप भूमिहीन और सीमान्त कृषक प्राय निर्धन रहते हैं। इसीलिए यहा यह कहावत प्रचलित है कि भारत का किसान गरीबी में जन्म लेता है, गरीबी में पलता है और गरीबी में मर जाता है। भूमि सुधार से भूमिहीन कृषकों को भूमि का स्वामित्व प्राप्त होता है जिससे उनकी आय बढती है। वे निर्धनता के अभिशाप से मुक्त होकर ग्रामीण विकास में सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

भूमि सबधी दोषपूर्ण ढाचे के अन्तर्गत उप विभाजन और अपखण्डन के कारण भूमि छोटे छोटे टुकडों में बट जाती है जिससे जोतों का आकार छोटा और अनार्थिक हो जाता है। इन छोटे खेतों में कृषि की उन्नत तकनीकों को अपनाना कठिन होता है। परिणामस्वरूप कृषि की उत्पादकता कम रहती है। किन्तु भूमि सुधार द्वारा भूमिहीन कृषकों को भूस्वामित्व ही प्राप्त नही होता बल्कि आर्थिक जोतों की रचना होती है। इससे कृषि उत्पादकता बढती है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था सुदृढ होती है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में छोटे और भूमिहीन कृषकों का सदियों से शोषण होता आया है। इस शोषण के कारण छोटे किसानों की स्थिति दयनीय बनी रही। वे न तो अपना जीवन-स्तर सुधार पाते थे और न ही ग्रामीण विकास में सहयोग दे पाते थे। इसीलिए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कारवर ने लिखा है कि "युद्ध, महामारी और अकाल के बाद ग्रामीण जनता के लिए सबसे बुरी बात भूमि का स्वामित्व न होना है।" भूमि सुधार कृषकों को स्वामित्व का अवसर प्रदान करके उनके तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के रास्ते खोलता है। भूमि सुधार से भूखे को रोटी मिलती है, आर्थिक विषमता में कमी आती है और सामतवादी शोषण का अन्त होता है। इस प्रकार भूमि सुधार से निर्धन किसानों को सामाजिक न्याय की प्राप्ति होती है।

भूमि सुधार में पचायती राज की सफलता भी निहित है। चूकि भूमि सुधार से समानता स्थापित होती है और बिना समानता के पचायती राज लागू करना अर्थहीन है। महात्मा गाधी ने जिस रामराज्य की कल्पना की थी उसमें सामाजिक विषमता को मिटाना पचायती राज सस्थाओं का कर्तव्य था। इसलिए पचायती राज व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए भूमि सुधार को सही ढग से लागू करना जरूरी है। बिना भूमि सुधार के पचायती राज स्थापित करने का अर्थ सामन्ती प्रथा को ही बढावा देना होगा। निर्बल किसान पिछडे ही रह जायेंगे। पचायती राज के माध्यम से सत्ता के विकेन्द्रीकरण का लाभ अधिसख्य गरीब किसानों को प्राप्त नहीं होगा। 2 अक्टूबर, 1959 को पचायती राज के शुभारम्भ के अवसर पर पडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—"हमारी पचायतों में हर व्यक्ति के बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए। स्त्री और पुरुष, ऊच और नीच के बीच कोई भेद नहीं होना चाहिए। हममें एकता और भाईचारे की भावना विकसित होनी चाहिए।" पचायती राज के सदर्भ में पडित नेहरू की यह इच्छा भूमि सुधारों को न्यायसगत तरीके से लागू करने पर ही पूरी हो सकती है।

कुछ लोग भूमि सुधार को राजनीति प्रेरित मानते हैं किन्तु इसके हितकारी पक्ष को देखा जाये तो किसी भी दृष्टि से भूमि सुधारों को लागू करना आवश्यक प्रतीत होता है। श्रेय किसी को भी मिले, लाभ बड़ी संख्या में निर्बल किसानों को होता है। अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ दोनों ही गरीबी दूर करने के लिए भूमि सुधार को महत्वपूर्ण मानते हैं। राजनीतिक इच्छा होने पर भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है।

भूमि सुधार हेतु उठाये गये कदम

भूमि सुधारों की आवश्यकता पर बल देते हुए डा. राधा कमल मुखर्जी ने लिखा है "वैज्ञानिक कृषि अथवा सहकारिता को हम कितना भी अपना लें, इनसे पूर्ण सफलता तब तक प्राप्त नहीं होगी, जब तक हम भूमि व्यवस्था में वांछित सुधार नहीं कर लेते हैं।"

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय देश में अनेक प्रकार की भूमि व्यवस्थायें थी जिनके कारण वास्तविक काश्तकार और भूस्वामी के बीच भी अनेक मध्यस्थ आ गये थे। ये भूमि की उपज का एक बड़ा भाग लगान के रूप में लेते थे, लेकिन फिर भी काश्तकार को खेत प्रतिवर्ष जोतने की गारण्टी नहीं थी, जिससे भूमि पर स्थायी सुधार नहीं हो पाता था और उत्पादकता कम रहती थी। भूमि व्यवस्थाओं के इन दोषों को दृष्टिगत रखते हुए सरकार और समाज के स्तर पर भूमि सुधार के लिए व्यापक प्रयत्न किये गये हैं—

जमींदारी और बिचौलियों का उन्मूलन—स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजों की नीति के कारण देश में रैयतवाड़ी, महलवाड़ी और जमींदारी तीन प्रकार की व्यवस्थाएं थीं जिनके कारण भूस्वामित्व में भारी असमानता पैदा हो गयी थी। चन्द लोग बड़े भूपति बन गये थे और अधिकांश जनता भूमिहीन थी। इन व्यवस्थाओं के कारण गांवों की सामुदायिक एकता भंग हो गयी थी। पारस्परिक सहयोग का स्थान व्यक्तिगत स्वार्थ ने ले लिया था। बेगारी बढ़ती जा रही थी। सामाजिक न्याय के स्थान पर सर्वत्र शोषण का बोलबाला था। विडम्बना यह थी कि वास्तविक काश्तकारों का शोषण उस वर्ग द्वारा किया जाता था जिसका प्रत्यक्ष रूप से कृषि से कोई सम्बन्ध नहीं था। डा. राधाकमल मुखर्जी ने जमींदारों की कारगुजारियों का खुलासा इस प्रकार किया है—"एक ओर जमींदार कृषकों की आय का बड़ा भाग उनसे छीन कर उन्हें दरिद्रता की भट्टी में जलने के लिए छोड़ देते थे और दूसरी ओर वे स्वयं कृषि से दूर रहकर किसानों से प्राप्त आय को खुलकर विलासिता पर उड़ा देते थे। जमींदार ही नहीं, उनके सम्बन्धी और कर्मचारी भी खूब ऐशोआराम की जिन्दगी बिताते थे।"

इन जमींदारों के कारण ग्रामीण जनता और शासन के बीच सम्पर्क का अभाव रहता था। इसीलिए शासन किसानों की समस्याओं से अनजान रहता था। छोटे और भूमिहीन किसान जमींदारों का अन्याय सहकर भी उनकी बेगार करने के लिए मजबूर थे।

जमींदारी उन्मूलन ने गरीब कृषकों को नया जीवन दिया। वे जमींदारों की दासता से मुक्त हो गये। भारत में जमींदारी उन्मूलन कानून का सूत्रपात बिहार राज्य में हुआ।

वहां सन् 1947 में राज्य विधान सभा में जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धी विधेयक पेश किया गया था। यह विधेयक अनेक संशोधनों के बाद सन् 1950 में बिहार भूमि सुधार अधिनियम के रूप में लागू हुआ। इसके बाद मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि अन्य राज्यों में भी जमींदारी, जागीरदारी, इमानदारी आदि व्यवस्थाओं के उन्मूलन का कानून लागू कर दिया गया। देश में जमींदारी उन्मूलन से लगभग दो करोड काश्तकारों को स्वामित्व का लाभ प्राप्त हुआ। इन काश्तकारों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। इनका सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है। अब ये किसान सरकार से सीधे सहायता प्राप्त कर लेते हैं। वास्तविक काश्तकारों को भूमि का स्वामित्व मिलने से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। जमींदारों के हट जाने से भूमि सुधार के अन्य उपायों को लागू करना आसान हो गया।

काश्तकारी व्यवस्था में सुधार—जमींदारों के उन्मूलन के बाद भी काश्तकारों को कृषि श्रमिक के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। आज भी बडी मात्रा में खेती उन काश्तकारों द्वारा की जाती है, जिन्हें कभी भी भूस्वामी द्वारा हटाया जा सकता है। इन काश्तकारों का भूमि पर कोई अधिकार नहीं होता है और उन्हें लगान अधिक मात्रा में देना पडता है। इस व्यवस्था के शोषण से बचाने के लिए भूमि सुधार के अन्तर्गत काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार देने, बेदखली से संरक्षण प्रदान करने तथा उत्पादन का समुचित हिस्सा आदि दिलाने के लिए काश्तकारी सुरक्षा कानून बनाये गये हैं। "जोतने वाले को भूमि मिले" यह विचार इन कानूनों का उद्देश्य है। इन कानूनों में ऐसा प्रावधान किया गया है कि बड़े स्तर पर किसानों को बेदखल न किया जा सके और भूस्वामी द्वारा भूमि वापस लेते समय काश्तकार के पास न्यूनतम भूमि अवश्य रहने दी जाए, भूस्वामी को स्वय काश्त करने के लिए ही भूमि वापस लेने का अधिकार हो।

काश्तकारी सुरक्षा कानूनों से कृषकों को बार-बार लगान वृद्धि बेदखली और बेगारी जैसे शोषण से काफी सीमा तक छुटकारा मिल गया है। विभिन्न राज्यों में अब तक 112.3 लाख काश्तकारों को 153.32 लाख एकड भूमि का लाभ प्राप्त हो चुका है। भूस्वामियों द्वारा बचाव के रास्ते ढूंढ लेने के कारण अनेक बार इन कानूनों से काश्तकारों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता है। अतः कानूनों को अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

लाभान्वित काश्तकारों की राज्यवार स्थिति (नवम्बर 1994 तक)

क्र.सं.		काश्तकारों की संख्या (लाखों में)	भूमि (लाख एकड़ में)
1.	आन्ध्र प्रदेश	1.07	5.95
2.	असम	29.08	31.25
3.	गुजरात	12.53	25.66
4.	हरियाणा	0.23	0.55
5	हिमाचल प्रदेश	4.01	0.00
6.	कर्नाटक	6.55	25.32
7	केरल	25.42	14.53
8.	महाराष्ट्र	14.42	45.21
9	नागालैण्ड	0.00	0.00
10.	मिजोरम	0.00	0.00
11.	उड़ीसा	1.51	0.94
12.	पंजाब	0.13	0.51
13.	त्रिपुरा	0.14	0.39
14.	प. बंगाल	13.90	अनु.
15	अण्डमान निकोबार	0.00	0.00
16.	दादर एवं नगर हवेली	0.07	0.21
17	लक्षद्वीप	–	–
18.	पाण्डिचेरी	–	–
	भारत	112.13	153.33

स्रोत: वार्षिक रिपोर्ट 1994-95 ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मन्त्रालय, भारत सरकार।

आदिवासियों को भूमि का कब्जा—भूमि सुधार के अन्तर्गत आदिवासी क्षेत्रों में भूस्वामियों के गैर-कानूनी कब्जे से भूमि निकालकर भूमिहीन आदिवासियों को वितरित करने का सतत् प्रयास किया जा रहा है। इससे आदिवासी क्षेत्रों में विकास की ठोस प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है। आदिवासी भूस्वामियों के शोषण से मुक्त होकर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे हैं। 1994 तक आन्ध्र प्रदेश में 22,571 आदिवासियों को 91,528 एकड़, बिहार में 28,924 आदिवासियों को 42,875 एकड़ तथा महाराष्ट्र में 19,943 आदिवासियों को 99,270 एकड़ भूमि का कब्जा दिलाया जा चुका है। अन्य राज्यों में भी इसी प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं।

जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण—प्रो. गाडगिल के अनुसार—"सभी साधनों में भूमि की पूर्ति सबसे सीमित है किन्तु इसकी माँग करने वालों की संख्या सबसे अधिक है। अतः विशेष दशाओं को छोड़कर किसी व्यक्ति को बड़े भूमि क्षेत्र पर अधिकार बनाये रखने की अनुमति देना अन्यायपूर्ण है।" इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण करना महत्त्वपूर्ण है। इससे भूस्वामित्व के विकेन्द्रीकरण का रास्ता आसान हो जाता है। जोत

की अधिकतम सीमा का निर्धारण करने के लिए अधिकाश राज्यों ने आवश्यक कानून बनाये हैं। इन कानूनों के अतर्गत देश में सितम्बर 1994 तक 73 42 लाख एकड भूमि फालतू घोषित की गयी, जिसमें से 49 49 लाख लाभार्थियों को 51.03 लाख एकड भूमि का वितरण किया जा चुका है। बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत वर्ष 1993-94 में 70 887 एकड अतिरिक्त भूमि का वितरण किया गया था जबकि 1992 93 में यह मात्रा 1,11,024 एकड और 1991 92 में 1,54 067 एकड थी।

चकबन्दी व्यवस्था—उपविभाजन और उपखण्डन के कारण भारत में कृषि जोतों का आकार प्राय छोटा रहता है। कृषि जोत का आकार छोटा होने पर कृषि उत्पादकता कम रहती है। दूर दूर छोटे छोटे खेत होने पर कृषकों के समय व शक्ति का अपव्यय होता है। इस समस्या को दूर करने के उद्देश्य से बिखरे हुए खेतों को मिलाने के लिए चकबन्दी व्यवस्था अपनायी जाती है। देश के अधिकाश राज्यों में चकबन्दी के लिए कानून बनाये गये हैं। इनमें से ज्यादातर राज्यों में अनिवार्य चकबन्दी व्यवस्था लागू है। कुछ राज्यों में स्वैच्छिक चकबन्दी भी है। अब तक विभिन्न राज्यों में 1528 76 लाख एकड भूमि की चकबन्दी की जा चुकी है।

कृषि भूमि की चकबन्दी की राज्यवार स्थिति (नवम्बर 1994 तक)

क्र.स.	राज्य	चकबन्दी क्षेत्र (लाख एकड)
1	आन्ध्र प्रदेश	8.18
2	बिहार	59.50
3	गुजरात	68.50
4	हरियाणा	104.50
5	हिमाचल प्रदेश	19 94
6	जम्मू और कश्मीर	1 16
7	कर्नाटक	26.75
8	मध्य प्रदेश	95.53
9	महाराष्ट्र	526.50
10	उड़ीसा	19 96
11	पजाब	121 72
12	राजस्थान	42.30
13	उत्तर प्रदेश	441.87
14	दिल्ली	2.33
	भारत	1528.76

सहकारी खेती—भूमि सुधार के स्वैच्छिक उपायों में सहकारी खेती सर्वोत्तम है। इसके अतर्गत कृषक अपनी भूमि पर पूर्ण स्वामित्व रखते हुए सामुहिक खेती करते हैं। महात्मा गाधी सहकारी खेती पर पूरा विश्वास रखते थे। उनका कहना था कि "सहकारी खेती भूमि की शक्ल ही बदल देगी और लोगों की गरीबी तथा आलस्य को भगा देगी।" सहकारी खेती से छोटी जोतों की समस्या का निराकरण होता है तथा कृषि की

उन्नत तकनीकों का प्रयोग करना आसान हो जाता है। जनतांत्रिक राज्य व्यवस्था में सहकारी खेती ही कृषि विकास का श्रेष्ठ उपाय है। देश में लगभग एक लाख कृषि सहकारी समितियां सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं जिनकी सदस्य संख्या तीन लाख से अधिक है।

भूदान कार्यक्रम—यह भूमि सुधार का एक ऐच्छिक कार्यक्रम है। आचार्य विनोबा भावे ने इस कार्यक्रम का शुभारम्भ 18 अप्रैल 1951 को किया था। इसमें व्यक्ति भूमि स्वेच्छा से दान करते थे। दान में एकत्रित भूमि को भूमिहीन किसानों के बीच वितरित कर दिया जाता था। इससे गरीब किसानों को जीविका का सहारा मिल जाता था। भूदान कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक लगभग 42 लाख एकड भूमि प्राप्त हो चुकी है जिसमें से लगभग 14 लाख एकड भूमि का वितरण भूमिहीनों के बीच किया जा चुका है।

भूमि अभिलेखों का रख-रखाव—देश में भूमि संबंधी आकडे और प्रलेख पूर्ण रूप से उपलब्ध न होने के कारण भूमि सुधार में कठिनाई आती है। कृषि ऋण आयोजना, फसल बीमा तथा अनाज वसूली आदि के लिए भी भूमि अभिलेखों की आवश्यकता पडती है। इसलिए सरकार ने भूमि अभिलेखों के सकलन के लिए समय-समय पर विशेष उपाय किये हैं। भूमि संबंधी अध्ययनों के लिए केन्द्रीय प्रायोजित योजना के अन्तर्गत विभिन्न संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। भूमि अभिलेखों के कम्प्यूटरीकरण के लिए वर्ष 1988-89 से प्रयास किये जा रहे हैं। आठवीं पचवर्षीय योजना में भूमि अध्ययनों और भूमि अभिलेखों के कम्प्यूटरीकरण के लिए 65 करोड रुपये का प्रावधान किया गया है। इसके अन्तर्गत 102 परियोजनाएं स्वीकृत हैं।

अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ दोनों ही गरीबी दूर करने के लिए भूमि सुधार को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। राजनीतिक इच्छा होने पर भूमि सुधारों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकता है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो स्पष्ट दिखाई देता है कि भूमि सुधारों के उपायों से स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कृषि क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है। खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में देश आत्म निर्भर बना है। यदि भूमि सुधार के कार्यक्रमों को सम्बन्धित व्यक्ति पूर्ण निष्ठा से अपनायें तो जल्दी ही कृषि क्षेत्र की समस्याओं का अन्त हो जायेगा और देश आर्थिक विकास के नये सोपान पर पहुच जायेगा। □

आठवीं योजना और महिला साक्षरता

उषा गोपाल

शिक्षा किसी भी देश की समृद्धि की जड़ है जिस पर उस देश का विकास चहुमुखी ओर से आगे बढ़ता है। इस संदर्भ में महिला-शिक्षा/साक्षरता सोने में सुहागा का काम करती है। यद्यपि शिक्षा किताबी और व्यावहारिक दोनों ही महत्वपूर्ण ही नहीं अनिवार्य भी है परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में महिला-साक्षरता का महत्त्व इसलिए अधिक बढ़ जाता है क्योंकि परिवार, समाज और देश को सुख-समृद्धि की आभा से महिलाएं ही सुशोभित करती हैं।

'शिक्षा' मनुष्य को उसकी मनुष्यता से अवगत करके अन्य प्राणियों से उसकी अलग पहचान बनाती है। शिक्षा के कई रूप हैं जो किसी भी समाज में प्रचलित हैं जिनको वह समाज, उसमें रहने वाले लोग ग्रहण करते हैं। इनमें प्रमुख हैं

1. औपचारिक शिक्षा
2. अनौपचारिक शिक्षा
3 अनुभवजन्य शिक्षा
4 बातचीत द्वारा

प्रस्तुत संदर्भ का विषय 'महिला साक्षरता' है जिसमें 'महिला' का महत्त्व अक्षुण्य है। 'साक्षरता'—"शिक्षित होने का भाव है।" यह एक दीर्घकालीन प्रयास है। औपचारिक शिक्षा बंधी-बंधाई पाठ्यक्रम युक्त स्कूली शिक्षा है जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी समान चीज सीखता है क्योंकि शिक्षा-पद्धति, पाठ्यक्रम, परीक्षा व कक्षा के चौखटे में फिट रहती है औपचारिक शिक्षा।

इसके विपरीत अनौपचारिक शिक्षा दूसरों के अनुभवों से सीखी जाती है। दूसरे लोगों से सरचनात्मक ढंग से सीखना और शिक्षा ये दोनों जीवन के निर्णायक-विवेचनात्मक पहलू हैं। जीवन के अखाड़े में हम जिस शिक्षा का सहारा लेते हैं वह अनुभवजन्य, बातचीत द्वारा और अनौपचारिक ढंग से प्राप्त होती हैं किसी भी परिवार को पूर्ण साक्षर होने में तीन पीढ़िया लग जाती हैं।

महिलाओं के लिए ही नहीं बल्कि शिक्षा देश के विकास की प्रक्रिया का भी एक अभिन्न अंग है इसीलिए देश की स्वतंत्रता के बाद इसे उच्च प्राथमिकता दी गई है। इस क्षेत्र में विद्यालय, शिक्षक, शिक्षार्थी सभी की संख्या में वृद्धि हुई है।

तालिका 1

वर्ष	विद्यालयों की संख्या	विद्यार्थियों की संख्या
1950-51	5,30,000	2.4 करोड़
1990-91	8,11,022	15.7 करोड़
1990-51	महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में	2 लाख
1990-91		43.30 लाख

किसी भी विषय पर अध्ययन एवं विश्लेषण करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गांव ही वास्तविक भारत है अर्थात् 80% भारत गांवों में रहता है। अतः राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिए इनकी उपेक्षा संभव नहीं। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन ने इसको स्वीकार करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में 15-35 आयु वर्ग में निरक्षरता मिटाने का उद्देश्य रखा है। ग्रामीण समुदाय बहुत बड़ा है जो 5 लाख से भी अधिक गांवों में फैला हुआ है। जिसमें अनेक समस्याओं के बीच व्यापक निरक्षरता के समाधान हेतु बुनियादी साक्षरता के बिना कोई भी आर्थिक विकास संभव नहीं क्योंकि निरक्षरता की व्यापकता में जन स्वास्थ्य कार्यक्रम की सफलता संभव नहीं।

गांव हमारे देश की सबसे पुरानी व जीवित संस्थाएं हैं और हमारे सामाजिक संगठन की बुनियादी इकाई हैं। अब तक इनकी मौलिक विशेषता नहीं बदली है। नेहरूजी ने एक बार लिखा था, "मेरा सौभाग्य रहा है कि मैं देश में घूमा हूं मैं हिमालय के अपने पर्वतीय क्षेत्रों के दूरस्थ के गांवों में जाता हूं और वहां दो चीजों की मांग होती है—"सड़क और स्कूल।" इससे साक्षरता की आवश्यकता और महत्त्व स्वयं स्पष्ट है।

8 सितम्बर, 1988 को अन्तर्राष्ट्रीय साक्षरता दिवस के मौके पर स्व. प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने कहा था कि "निरक्षरता भी हमारी प्रगति में बड़ी बाधा बनी हुई है।" राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी साक्षरता अभियान को प्राथमिकता दी गई है।

भारतीय रेलवे में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन

रेलवे ने इस दिशा में एक गहन कार्यक्रम शुरू किया है जिसमें सम्पूर्ण भारत में रेलवे कर्मचारियों के परिवारों के 11,300 व्यक्तियों ने 409 साक्षरता प्रशिक्षण केन्द्रों में अपने नाम लिखवाये जिसमें सर्वाधिक उत्तर रेलवे ने 100 केंद्र खोले। इनकी अवधि 5-6 महीने है। यही नहीं उत्तर रेलवे ने 1990 तक रेल कर्मचारियों के परिवारों के बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं के शत प्रतिशत प्रतिरक्षण की लक्ष्य-प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय प्रतिरक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत महत्त्वाकांक्षी योजना तैयार की है और प्रतिवर्ष साक्षरता

मेले का आयोजन किया जाता है। इस संदर्भ में उत्तर प्रदेश, लखनऊ के साक्षरता निकेतन द्वारा 300 महिला प्रौढ़ शिक्षा केंद्रों की एक परियोजना भी चलाई जा रही है।

महिलाओं की क्षमता के लिए शिक्षा कार्यक्रम

महिलाओं में शिक्षा के स्तर की कमी के आधारभूत कारण के लिए उनकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति जिम्मेदार है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में इस बात को भी स्वीकार किया गया। अत इसको मद्देनजर रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महिलाओं को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करके उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं और असमानताओं को दूर करना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु "महिला सामाख्या" योजना तैयार की गई जिसका उद्देश्य ऐसी कार्यविधि का निर्माण करना है ताकि महिलाओं को ऐसे अवसर प्रदान किए जाए जिसमे वे अपनी शिक्षा के विषय में अपनी योजना स्वय बना सकें। इनमें प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, जन शिक्षण निलयम्, ग्रामीण महिलाओं के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण, समर्थन सेवाए आदि शामिल हैं।

'महिला समाख्या' एक केंद्रीय योजना है जो अप्रैल, 1989 में शुरू की गई। प्रत्येक निर्धारित गाव में 'महिला संघों' के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को प्रोत्साहित करना इस योजना का उद्देश्य है। इस योजना के अतर्गत कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और गुजरात में वहा के शिक्षा सचिवों की अध्यक्षता में इन समितियों को शत प्रतिशत आर्थिक सहायता दी जाती है। जैसाकि यह केंद्रीय योजना है, इन राज्यों के शिक्षा मत्री इन समितियों के अध्यक्ष हैं। प्रारभ में इसका श्रीगणेश एक इडो डच परियोजना के रूप में हुआ जिसे नीदरलैंड सरकार शत प्रतिशत सहायता देती है। इस कार्यक्रम का केंद्र बिंदु महिला और उससे सबधी समस्याए हैं जिसमें महिला सघों से मदद ली जाती है तथा महिलाओं से जुड़े मुद्दे जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, विकास-कार्यक्रम की सूचना उनके आस पडोस के पर्यावरण के विषय में जानकारी देना ही नहीं बल्कि इसका सर्वाधिक उद्देश्य महिलाओं को उनके व्यक्तित्व से जुड़े मुद्दों एव समाज में उनकी छवि के बारे में जागरूकता पैदा करना भी है। यह कार्यक्रम समीक्षात्मक विचार एव विश्लेषण की सुविधा प्रदान करने की कोशिश करता है जो महिलाओं को उनके दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाले विषयों के प्रति रुचि पैदा करने के लिए प्रेरित करता है। इस योजना का केंद्रबिंदु महिला साक्षरता/शिक्षा के सभी पक्षों अर्थात् शिक्षा के प्रति ललक पैदा करना, अनौपचारिक, प्रौढ़ एव विद्यालय से पूर्व सतत् शिक्षा के नवीन शैक्षणिक उपादान प्रस्तुत करना है।

देश के विकास का मेरुदड शिक्षा को आज उच्च प्राथमिकता दी जा रही है। इसी को मद्देनजर रखते हुए शिक्षा के क्षेत्र में दी जाने वाली सुविधाओं की सख्या के विस्तार के साथ उनकी गुणवत्ता सुधारने पर भी बल दिया जा रहा है। इस दिशा में 1976 से पूर्व शिक्षा का पूरा दायित्व राज्य सरकारों का था परन्तु आज परिवर्तित स्थिति के अनुसार 1970 में एक सशोधन पास किया गया जिसके अनुसार केंद्र एव राज्य सरकारों की

संयुक्त जिम्मेदारी तय कर दी गई।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा को प्रमुखता दी गई। इसके मुख्य लक्ष्यों में प्राथमिक शिक्षा की व्यापकता, 15 से 35 वर्ष की आयु-वर्ग में निरक्षरता-उन्मूलन तथा व्यावसायिक शिक्षा को सशक्त करने पर बल दिया गया जिसमें शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में उभरती आवश्यकताओं में समन्वय हो। इसकी पूर्ति के लिए शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक एवं उन्मुक्त माध्यमों का प्रयोग किया जाएगा। बदलते परिवेश में अध्यापन के विकसित तरीकों, गैर-सरकारी संस्थाओं तथा छात्र-स्वयंसेवकों की बढ़ती सहभागिता से साक्षरता कार्यक्रम को जीवतता मिली है। इसी के साथ प्राथमिक शिक्षा की सर्वत्र व्यापकता के लिए तथा भिन्न भिन्न लक्ष्य निर्धारण के तरीकों की बात आठवीं योजना में सोची गई।

छठी योजना तक शिक्षा जो सामाजिक सेवा मात्र समझी जाती थी अब वह मानव समाधनों के विकास द्वारा देश के सामाजिक और आर्थिक विकास का कारक बन गई। शिक्षा पर हुए व्यय की निम्न सारिणी इस बात का प्रमाण है

तालिका 2

शिक्षा पर व्यय

	व्यय
सातवीं योजना	7,632.9 करोड़ रु
आठवीं योजना	19,599.7 करोड़ रु
1993-94 में केन्द्रीय नियोजन आवंटन	1,310.0 करोड़ रु

इसी क्रम में प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा के व्यय में भी अंतर आया।

तालिका 3

	प्राथमिक शिक्षा	उच्च शिक्षा
योजना	व्यय	
छठी योजना	33%	22.09%
सातवीं योजना	37.33%	15.74%
आठवीं योजना	46.95%	7.75%

प्राथमिक शिक्षा और महिलाएं

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की संशोधित कार्य योजना तथा आठवीं योजना में 21वीं सदी के पूर्व 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के निर्देशों के अनुसार प्राथमिक शिक्षा को महत्त्व दिया गया जिसमें बच्चों के लिए गुणवत्ता की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का संकल्प व्यक्त किया गया। आठवीं योजना के अंतर्गत संशोधित नीति को व्यवहार में लाने के लिए तीन योजनाएं प्रस्तावित हैं

(क) सातवीं योजना में रेखांकित सभी योजनाओं को बनाए रखना।

(ख) प्राथमिक विद्यालयों में कम से कम तीन शिक्षक और तीन कमरों की सम्भावनाओं का विस्तार।

(ग) योजना क्षेत्र का विस्तार उच्च प्राथमिक विद्यालयों तक।

1979-80 में अनौपचारिक शिक्षा का कार्यक्रम शुरू किया गया। इसके अंतर्गत स्कूल छोड़ देने अथवा स्कूल न जा सकने वाली लड़कियों को और कामकाजी बच्चों को औपचारिक शिक्षा के समतुल्य शिक्षा दिलाना शामिल था। इसमें राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों को सामान्य सहशिक्षा तथा लड़कियों वाले केंद्र चलाने के लिए क्रमश 50 50 तथा 9 : 1 के अनुपात में सहायता दी जाती है। अब इसमें मात्र नामांकन नहीं अपितु स्थायित्व एवं उपलब्धि पर ध्यान दिया गया जिसमें लड़कियों और कामकाजी बच्चों के लिए समग्र अवधारणा को बदल दिया गया है जो उन्हें समतुल्य वैकल्पिक शिक्षा उपलब्ध कराती है।

माध्यमिक शिक्षा

अनेक राज्यों तथा संघ शासित क्षेत्रों में उच्च माध्यमिक स्तर तक नि शुल्क शिक्षा दी जाती है। गुजरात में लड़कियों के लिए बारहवीं कक्षा तक नि शुल्क शिक्षा है। हरियाणा में लड़कियों के लिए आठवीं कक्षा तक तथा मेघालय और मिजोरम में छठी-सातवीं तक नि शुल्क शिक्षा उपलब्ध है।

माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण

विद्यार्थियों को बिना उच्च शिक्षा प्राप्त किए लाभकारी रोजगार मिलने के उद्देश्य से शिक्षा में सुधार के लिए गठित समय-समय पर विभिन्न समितियों एवं आयोगों ने माध्यमिक स्तर पर ही शिक्षा में व्यवसायों की विविधता लाने पर बल दिया। इसी उद्देश्य हेतु फरवरी, 1988 में 'माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के व्यावसायीकरण की एक योजना शुरू की गई। इसके अंतर्गत 1991-92 तक केंद्रीय सरकार द्वारा 12,543 शिक्षा शाखाओं तथा फरवरी 1993 तक 1,623 व्यावसायिक शिक्षा शाखाओं को सुविधा दी गई जिससे 0.81 लाख अतिरिक्त विद्यार्थी लाभान्वित होंगे।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय

अक्तूबर, 1990 में सरकार द्वारा पारित एक प्रस्ताव राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय द्वारा अपनी ब्रिज, माध्यमिक/उच्च माध्यमिक परीक्षाएं आयोजित करने तथा प्रमाण-पत्र देने का अधिकार दिया गया। इसके द्वारा सुदूर शिक्षा के जरिए लाखों लोगों को वैकल्पिक मुक्त शिक्षा मिलती है। इसमें ग्रामीण जन, शहरी क्षेत्रों के गरीब लोग, महिलाएं, अनुसूचित जातियां/जनजातियां और स्कूल से टूटे अथवा औपचारिक शिक्षा में असमर्थ

व्यक्तियों को लाभ मिल रहा है।

आज इन विद्यालयों में पूरे देश के 2 लाख से अधिक विद्यार्थी नामांकित हैं। सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 1993 में अंतिम पंजीयन संख्या तक 5,714 छात्र शैक्षिक सुविधा से वंचित थे जिनमें 37.29% महिलाएं थीं।

नवोदय विद्यालय

यह भी शिक्षा का एक रूप है जो भारत सरकार ने उन स्थानों के प्रतिभाशाली छात्रों के लिए विशेष रूप से शुरू की है जहां गांवों की मात्रा अधिक हो। इसके अंतर्गत लक्ष्य यह है कि 1995-96 तक प्रत्येक जिले में एक के औसत से नवोदय विद्यालय स्थापित किए जाएंगे। 31 जनवरी,1993 तक 305 नवोदय विद्यालयों का विवरण इस प्रकार है .

तालिका 4

लड़के	लड़कियां	ग्रामीण	शहरी	कुल
68,390	27,511	74,398	21,503	95,901
71%	29%	78%	22%	11%

इस क्षेत्र में प्रत्येक नवोदय विद्यालय में कम से कम एक-तिहाई लड़कियों की भर्ती सुनिश्चित करने के प्रयास किए गए हैं। इन विद्यालयों में लड़कियों की संख्या 29% है जैसाकि ऊपर की सारिणी से स्पष्ट है।

केंद्रीय विद्यालय

1963 में शुरू की गई इस योजना का उद्देश्य स्थानांतरणीय पदों पर काम करने वाले महिला-पुरुष कर्मचारियों एवं उनके बच्चों को शिक्षा की अनवरता एवं पूर्ति करना रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक योजनाएं हैं जिनमें

(1) शैक्षिक टेक्नोलॉजी कार्यक्रम

(2) विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षा में सुधार

(3) स्कूली शिक्षा को पर्यावरणोन्मुख बनाना

(4) विद्यालयों में कम्प्यूटर शिक्षा

(5) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (इसके अनेक कार्यक्रमों में महिलाओं की समानता के लिए शिक्षा भी शामिल है।)

(6) विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा

(7) विशेष शोध संस्थान—इसमें अनेक संस्थाएं आती हैं। 1972 में स्थापित भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् ऐतिहासिक अनुसंधान पर राष्ट्रीय नीति बनाती और लागू करती है। शोध परियोजनाएं चलाना, विद्वानों को वित्तीय सहायता देना,

फैलोशिप, अनुवाद और प्रकाशन कार्य कराना आदि इसके उद्देश्य हैं।

(8) इन्दिरा गाधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

(9) प्रौढ़ शिक्षा

1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के शुभारम्भ का मूल उद्देश्य 1995 तक देश के लगभग 800 लाख 15-35 वर्ष की उम्र के वयस्क निरक्षरों को कामचलाऊ साक्षरता प्रदान करना है। इसमें अभियान कार्यक्रमों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। ये अभियान केवल शिक्षा ही नहीं उसमें रुचि, प्रोत्साहन और इससे जुडे मुद्दों को बढावा देते हैं। साक्षरता के अनुकूल वातावरण पैदा करने वाली विविध नई विधिया जैसे नुक्कड नाटक, दूरदर्शन, रेडियो, टी वी., समाचार पत्र पत्रिकाए आदि हैं।

राष्ट्रीय जनसख्या शिक्षा परियोजना

स्कूल-कालेजों के छात्रों और वयस्कों को परिवार नियोजन एव जनसख्या शिक्षा का सदेश आज की अनिवार्यता है। इसी सदर्भ में इस योजना को तीन माध्यमों से क्रियान्वित किया जा रहा है

(क) विद्यालय एव अनौपचारिक शिक्षा

(ख) कालेज तथा

(ग) वयस्क शिक्षा

वर्तमान में यह योजना 29 राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों में चल रही है।

बिहार शिक्षा परियोजना

केंद्र एव राज्य सरकार की यूनीसेफ के साथ सयुक्त परियोजना के रूप में यह बिहार की शिक्षा में आधारभूत बदलाव एव शैक्षणिक पुनर्निर्माण का कार्यक्रम है। इसके अतर्गत प्राथमिक विद्यालय व्यवस्था, अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली, शिशु विकास और साक्षरता पश्चात् सतत शिक्षा एव अस्तित्व रक्षा और सामान्य भलाई के लिए तकनीकी योग्यताए पैदा करना शामिल है।

अनुसूचित जातियों एव जनजातियों की शिक्षा

1990-91 में डॉ अम्बेडकर की जन्म शताब्दी पर प्रधानमत्री की अध्यक्षता में यह कार्यक्रम शुरू किया गया, जिसमें शिक्षित अनुसूचित जातियों एव जनजातियों के लोगों को रोजगार देने एव आरक्षण कोटे को कार्यान्वित करने पर भी ज़ोर दिया गया।

महिलाओं की शिक्षा

आठवीं पचवर्षीय योजना में पिछडे वर्ग के अल्पसख्यकों के लिए 16.27 करोड

रुपयों का प्रावधान है। जहां तक महिलाओं की शिक्षा का संबंध है वहां सम्पूर्ण साक्षरता अभियान में सीखने वाली महिलाओं की संख्या पुरुषों से अधिक है। महिलाओं की शिक्षा-स्थिति इस प्रकार है -

लड़कियों का नामांकन

वर्ष	प्राथमिक स्तर	माध्यमिक	उच्च शिक्षा
1991-92	37%	33%	29%

महिलाओं की शिक्षा में भागीदारी को बढ़ाने के प्रत्येक सम्भव उपाय किए गए। इसके अंतर्गत उठाए गए विशेष कदम जैसे आपरेशन ब्लैकबोर्ड के लिए 1987-88 से प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों के 1,22,890 पदों के सृजन के लिए सरकार ने सहायता दी जिनमें मुख्यतया महिलाओं को ही रखने की योजना है। उपलब्ध सूचना के अनुसार 69,926 भरे गए पदों में 57.39% महिला शिक्षक हैं। इसी प्रकार से लड़कियों के लिए 82,000 अनौपचारिक शिक्षा केंद्र हैं जिनको सरकार द्वारा 90% मदद दी गई। महिला समाख्या परियोजना चल रही है। नवोदय विद्यालयों में 28.44% तक लड़कियों का दाखिला निश्चित किया जा चुका है। यही नहीं वयस्क शिक्षा केंद्रों में भी महिलाओं के नामांकन पर विशेष ध्यान दिया गया है। आठवीं योजना में महिलाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है।

आठवीं योजना में शिक्षा पर क्षेत्रवार प्रतिशत व्यय का ब्यौरा इस प्रकार है :

शिक्षा पर क्षेत्रवार योजना-व्यय, आठवीं योजना (प्रावधान)

क्षेत्र	केंद्र	राज्य	कुल	प्रतिशत
प्राथमिक शिक्षा	288000.00	632142.00	920142.00	46.95
प्रौढ़ शिक्षा	140000.00	44764.00	184764.00	9.43
माध्यमिक शिक्षा	151900.00	197879.00	349779.00	17.85
उच्च शिक्षा	7000.00	31555.00	151555.00	7.73
अन्य शिक्षा	12000.00	63090.00	75090.00	3.83
तकनीकी शिक्षा	32400.00	196238.00	278638.00	14.22
कुल	744300.00	1215668.00	1959968.00	100.00

सम्भवत 1991 की जनगणना के अनुसार 7 या इससे अधिक उम्र वाली जनसंख्या की राष्ट्रीय साक्षरता दर इस प्रकार है :

वर्ष	साक्षरता दर
1981	43.56%
1991	52.21%
10 वर्ष में वृद्धि	8.65%

एक ओर जहां पुरुषों की साक्षरता दर में 13.10% का इजाफा हुआ वहां महिलाओं की दर 6.45% बढ़ी। 1981 में 2,357 लाख साक्षर थे जो 1991 में 3,593 लाख हो गए।

1981 में 3 053 लाख निरक्षर थे जो 1991 में 3,289 हो गए जबकि इनकी सख्या में कमी की अपेक्षा जनसख्या वृद्धि के कारण और बढ़ी । यदि राज्यवार साक्षरता दर को देखे तो इस प्रकार है

साक्षरता दर

राज्य	साक्षरता दर
केरल	82.8%
मिजोरम	82 27%
लक्षद्वीप	81 78%
चडीगढ़	77.81%
बिहार	38 48%
राजस्थान	38.55%
दादरा नागर हवेली	40 71%

महिला साक्षरता दर राज्यवार इस प्रकार है

राज्य	साक्षरता दर
सिक्किम	19 79%
लक्षद्वीप	17.89%
नागालैंड	14 45%
दमन और दीव	12.90%
हरियाना	13.57%
मणिपुर	13 00%
अडमान निकोबार द्वीपसमूह	12 26%
पांडिचेरी	12 63%
त्रिपुरा	11 66%
केरल	10 47%

अत यह कहा जा सकता है कि आजादी से पूर्व 20% साक्षरता दर 1991 में 52 11 प्रतिशत हो गई है जो विकास की द्योतक है । इस क्षेत्र में महिला साक्षरता की दर में भी आनुपातिक वृद्धि हुई है जो महिलाओं की शिक्षा सस्थाओं में विकासात्मक नामाकन दर तथा महिलाओं की नौकरियों में बढ़ता अनुपात तथा जागरूकता इसके प्रत्यक्ष साथी हैं फिर भी महिला साक्षरता के क्षेत्र में बहुत कुछ करना शेष है । □

ग्रामीण रोजगार : वर्तमान स्थिति तथा भविष्य के लिए रणनीतियां

प्रदीप भटनागर

श्रम और बेरोजगारी की समस्या सदैव से ही अर्थशास्त्र का केन्द्रीय विषय रही है। पारम्परिक आर्थिक सिद्धात के अनुसार, श्रम को उत्पादन के चार घटकों में से एक माना जाता था। अन्य तीन घटक थे—भूमि, पूजी और उद्यमशीलता। यह माना जाता था कि उत्पादन के ये चारों घटक सीमित मात्रा में उपलब्ध होते हैं तथा अर्थशास्त्री बडी गम्भीरता से इसी बात पर तर्क-वितर्क करते रहे कि इन घटकों की माग और पूर्ति के बीच ताल मेल से इनके मूल्य किस तरह से निर्धारित होते हैं। पश्चिमी जगत के अनुभवों पर आधारित इन सिद्धातों की भारत जैसे देशों में कुछ विशेष प्रासगिकता नहीं थी, क्योंकि भारत में श्रम की अधिकता है।

यह तो छठे दशक के मध्य में जाकर प्रोफेसर आर्थर लुइस ने 'दोहरी अर्थव्यवस्थाओं' के बारे में लिखा, जिसमें उन्होंने कृषि क्षेत्र में 'अप्रत्यक्ष रोजगार' के रूप में श्रम के अधिक होने की चर्चा की और दलील दी कि यह अतिरिक्त श्रम औद्योगिक क्षेत्र के लिए 'श्रम की असीमित पूर्ति' का साधन हो सकता है। औद्योगिक क्षेत्र में उचित मात्रा में पूजी के निर्माण से, धीरे-धीरे यह साधन उद्योगों को दिया जा सकता है, जिससे श्रमाधिक्य अर्थव्यवस्था का सम्पूर्ण विकास हो सकता है।

प्रोफेसर लुइस का लेख जब प्रकाशित हुआ तब भारत में जनसख्या विस्फोट की प्रक्रिया आरभ हो चुकी थी और बेरोजगारी को एक गभीर खतरा माना जाने लगा था। तब इस लेख ने बेरोजगारी की, विशेषकर ग्रामीण बेरोजगारी की, अवधारणा और उसके आकलन के बारे में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का सूत्रपात किया। सन् 1891 से 1921 तक की गई जनगणनाओं में प्रमुख आर्थिक प्रश्न, प्रत्येक व्यक्ति की आजीविका के साधन से जुडे थे, जबकि 1931 से 1951 तक की जनगणनाओं में 'व्यक्ति की आमदनी' को महत्त्व दिया गया। लेकिन 1961 की जनगणनाओं में, पहली बार 'बेरोजगारी' के आकडों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा जनसख्या को 'कामगार' और 'गैर कामगार' की दो श्रेणियों में बाटा गया। बाद की जनगणनाओं में बेरोजगारी को मापने में और बारीकी

अधिक है।

क्षेत्रीय स्तर पर भारी अंतर है, सर्वाधिक बेरोजगारी केरल में है, जिसके बाद तमिलनाडु और असम का नम्बर आता है तथा राजस्थान में ऐसी बेरोजगारी न्यूनतम है।

'दैनिक स्थिति' के अनुमानों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार श्रमिकों की कुल संख्या का लगभग 1.9 प्रतिशत यानी लगभग 46 लाख है। यह दर कई विकसित देशों की बेरोजगारी प्रतिशत से अपेक्षाकृत कम है तथा इसे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के सर्वेक्षण करने के तरीके से स्पष्ट किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को बेरोजगारों की श्रेणी में रखने का मापदंड उस व्यक्ति से यह पूछना है कि क्या वह संदर्भित अवधि के दौरान काम कर रहा/रही थी तथा क्या काम तलाश कर रहा/रही थी या काम के लिए उपलब्ध था/थी। बेरोजगार कहलाने के लिए उस व्यक्ति का काम की तलाश में होना है तथा यह भी जरूरी है कि उसने संदर्भित अवधि में प्रतिदिन एक घंटा भी काम न किया हो—ग्रामीण भारत के संदर्भ में यह अत्यन्त ही चरम स्थिति प्रतीत होती है।

ग्रामीण भारत में अधिकांश हिस्सों में लोगों के पास पूर्ण रोजगार नहीं होता है परंतु सामाजिक परम्पराओं के कारण वे एक ही जगह रहना पसंद करते हैं तथा चूंकि उन्हें अपने आस पास के अलावा अन्य स्थानों पर रोजगार के अवसरों का ज्ञान नहीं होता, इसलिए वे खेती से बाहर या अपने गांवों से बाहर काम धंधा ढूंढने नहीं जाते हैं। यह स्थिति गांवों में रहने वाली स्त्रियों के बारे में अधिक सही है। यदि ऐसे बेरोजगार व्यक्तियों को भी बेरोजगारों की संख्या में जोड़ लें तो बेरोजगारी/अपूर्ण रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या में लगभग दो करोड़ व्यक्तियों की या देश के ग्रामीण श्रमबल के आठ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हो जाएगी।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो ग्रामीण इलाकों से शहरों और कस्बों में श्रम पलायन विकास प्रक्रिया की विशेषता रही है। भारतीय स्थिति की विशेषता यह है कि शहरी क्षेत्र के लिए यह संभव नहीं होगा कि सभी बेरोजगारों को रोजगार दे सके। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की मजदूरियों में 30 प्रतिशत के अंतर को प्रोफेसर लुइस ने ग्रामीण श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र के प्रति आकर्षित करने के लिए पर्याप्त माना। वास्तव में यह अंतर इससे कहीं ज्यादा है तथा इसकी वजह से अभूतपूर्व स्तर पर नगरों की ओर श्रमिकों का पलायन हुआ है। लेकिन औद्योगिक क्षेत्रों में सबके लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर नहीं जुटाये जा सके हैं। यहां तक कि यदि उदारीकरण और निजीकरण की नई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में तेजी से वृद्धि होती है तो भी गांवों में उपलब्ध अतिरिक्त श्रम बल को शहरों में रोजगार जुटाना संभव नहीं हो पाएगा। अत समाधान यही है कि ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के और अधिक अवसर

साथ-साथ मछलीमार पट्टों के अधिकारों के लाभार्थियों के लिए उचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों से इस क्षेत्र में अपना पूर्णकालिक काम धंधा करने वाले व्यक्तियों की संख्या में भारी वृद्धि हो सकती है। तटवर्ती क्षेत्रों में बडे पैमाने पर गहरे समुद्र में मछली पकडने को बढावा देने से समुद्रजन्य आहार के परिरक्षण, प्रसंस्करण और विपणन के क्षेत्र में भारी संख्या में रोजगार के अवसर उत्पन्न हो सकते हैं।

गैर कृषि क्षेत्र

ग्रामीण भारत की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वैसे तो दशकों से खेती के काम में प्रमुखतया लगे लोगों की संख्या 70 प्रतिशत के आसपास रही है, फिर भी गैर-कृषि कामों से भी गावों में काफी रोजगार मिलता है। इस क्षेत्र में 15 से 20 प्रतिशत तक श्रम बल काम करता है। हथकरघा, हस्तशिल्प, ग्रामोद्योग, रेशम कीट पालन खादी, छोटे मोटे धंधों, भवन निर्माण, प्रसंस्करण और परिवहन के क्षेत्रों में कम पूंजी से किए जाने वाले धंधे भी भूमिहीनों की आमदनी के महत्त्वपूर्ण साधन हैं तथा इनसे छोटे व गरीब किसानों को भी अतिरिक्त आमदनी होती है।

ग्रामीण और लघु उद्योग

देश ने कई वस्तुओं के उत्पादन को पूर्णतया ग्रामीण तथा लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित रखने की नीति अपनाई है। इस क्षेत्र के व्यापक प्रसार के कारण इसमें अतिरिक्त रोजगार अवसरों का सृजन, देश में ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या से निपटने की रणनीति का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बना रहना चाहिए क्योंकि स्थापित औद्योगिक केन्द्रों में ही नौकरी के अवसर बढाने पर जोर देने पर भी बेरोजगारी की समस्या हल करने में कोई मदद नही मिलेगी जब तक ग्रामीण इलाकों में ही अतिरिक्त श्रम बल बना रहेगा।

उपरोक्त सभी क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार क्षमता उत्पन्न करने में समय लगता है। और फिर, लघु व ग्रामोद्योग की श्रम संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए यह भी जरूरी होगा कि श्रमिकों में एक न्यूनतम स्तर की दक्षता भी मौजूद हो। कृषि के क्षेत्र में अतिरिक्त रोजगार के अवसर जुटाना इस बात पर भी निर्भर करेगा कि किसानों को एक फसली क्षेत्रों को बहुफसली में बदलने में कितना समय लगेगा और आधुनिक कृषि तकनीकों को अपनाने में कितनी तेजी आएगी। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से पशुपालन तथा अन्य सहायक क्षेत्रों में अपने काम धंधों को बढावा देने के लिए ऋण की भी जरूरत पडेगी और जैसा कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के पिछले 15 वर्षों के अनुभव ने दिखाया है कि निर्धनतम बरोजगारों को इस कार्यक्रम का लाभ अक्सर मिल नहीं पाता क्योंकि बैंक भी गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले उन लोगों को ही ऋण देते हैं जो अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति मे हैं।

दिहाडी मजदूरी

बेरोजगारों में भारी सख्या ऐसे लोगों की है जो भूमिहीन हैं, अकुशल हैं तथा जो दिहाडी मजदूरी पर निर्भर हैं। बढती जनसख्या के कारण छोटे और गरीब किसानों की पहले ही से छोटी जोतों की भूमि के और टुकडे हो जाने से भूमिहीन श्रमिकों की सख्या बढती जा रही है। देश के कई हिस्सों में खेती के मदी वाले सीजन में मजदूरों को पलायन के लिए मजबूर होना पडता है या फिर स्थानीय स्तर पर अत्यत ही कम मजदूरी पर काम करने पर मजबूर करके उनका शोषण किया जाता है। ऐसी स्थिति में, लोक निर्माण कार्यक्रम अल्पावधि समाधान उपलब्ध कराते हैं। पिछले दो-एक दशकों से देश में ऐसे कार्यक्रम चल रहे हैं। लेकिन एक तो इस बात के लिए इनकी आलोचना की जाती है कि ये कुशल नहीं हैं तथा इनमे जो सार्वजनिक परिसम्पत्तिया बनती हैं, वे टिकाऊ नहीं होतीं तथा ये अब ऐसे कार्यक्रम बन कर रह गए हैं, जिनसे गरीबों को आमदनी तो होती है, परन्तु परिणामस्वरूप टिकाऊ बुनायादी सुविधाए नहीं बन पाती हैं।

अब यह अधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि पूर्णतया सरकारी एजेंसियों या लाभार्थियों के अपने समूहों द्वारा चलाए जाने वाले लोक निर्माण कार्यक्रम न तो रोजगार के अवसर पैदा करने में और न ही टिकाऊ सार्वजनिक परिसम्पत्तिया निर्मित करने में सफल हो सके हैं। इन योजनाओं में ठेकेदारों की भागीदारी के निषेध से काम पर लगाए गए मजदूरों का इष्टतम उपयोग नही हो पाया है। एक तरीका यह है कि 'अकुशल' और 'कुशल' दोनों ही तरह के श्रम प्रधान, लोक निर्माण कार्यक्रम साथ साथ चलाए जाए—उदाहरण के लिए 'काम के बदले अनाज कार्यक्रम' जिसमें न्यूनतम अधिसूचित मजदूरी दी जाती है और निर्धनतम बेरोजगार मजदूरों को चुना जाता है, जिनके साथ बुनियादी सुविधा निर्माण कार्यक्रम चले, जिसमें ठेके पर मजदूरों को लगाया जाता है, जिन्हें बाजार भाव पर मजदूरी दी जाती है, परतु स्पष्ट शर्त यह होती है कि उपकरणों और मशीनरी का न्यूनतम इस्तेमाल किया जाएगा, चाहे ऐसा करने के लिए दुगुने या तिगुने श्रम-बल का प्रयोग क्यों न करना पडे। देश के मौजूदा दिहाडी रोजगार कार्यक्रमों को इस दृष्टि से सशोधित किया जा सकता है।

नीतिगत-आशय

भारत में ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या, मूलत मदी के सीजन की बेरोजगार समस्या है। जम्मू कश्मीर, राजस्थान और असम जैसे उच्चतम मौसमी अतर वाले राज्यों में बडे पैमाने पर एक फसली खेती की जाती है और वहा समाधान यही है कि बडी मझौली और लघु सिंचाई योजनाओं पर अधिक धन खर्च करके सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाए तथा आधुनिक फसल तकनीकों को बढावा देने के एकजुट प्रयास किए जाए। ग्रामीण बेरोजगारी में न्यूनतम मौसमी अतर वाले पजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जैसे राज्य भी हैं जहा सिंचाई सुविधाओं और नवीन कृषि तकनीकों का व्यापक

उपयोग हुआ है। ऐसे राज्यों को अपने बढ़ते ग्रामीण श्रम-बल को रोजगार देने के लिए गैर-कृषि क्षेत्रों की रोजगार-जनक योजनाओं पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ेगा। बाकी सभी राज्यों के लिए सर्वोत्तम यही रहेगा कि वे दोनों नीतियों का मिला-जुला उपयोग करें। वैसे, अधिकाश राज्यों में 'कुशल' और 'अकुशल' दोनों ही श्रम प्रधान तकनीकों वाले दिहाडी रोजगार कार्यक्रम जारी रहने चाहिए, जो अल्पावधि में चलाए जाए ताकि श्रम पलायन को रोका जा सके तथा निर्धनतम बेरोजगारों को जीवन निर्वाह का बेहतर स्तर उपलब्ध कराया जा सके और साथ ही भीतरी इलाकों में बुनियादी सुविधाओं के निर्माण में सहयोग मिल सके। □

आवास समस्या एवं समाधान

हरे कृष्ण सिंह

ससार के सभी प्राणियों को वायु,जल और भोजन की आवश्यकता महसूस होती है। प्राणियों में श्रेष्ठ जीव मानव है जो चेतनशील है। इसे वायु जल, भोजन और वस्त्र के बाद आवास की भी आवश्यकता होती है। सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य गुफाओं, कदराओं, जर्जरित झोपड़ियों में अपना जीवन व्यतीत करता था। आज के वैज्ञानिक युग में आवास जीवन स्तर का मापदण्ड होने के साथ-साथ सम्मानजनक आराम करने का स्थल तथा कार्यक्षमता में वृद्धि करने वाला गोमुखी है। हमारे जीवन में आवास को प्राचीन काल से ही महत्ता दी जा रही है और आवासहीन मनुष्यों के कष्टों का उल्लेख भी किया गया है। बेघर मनुष्य का जीवन पशु से बेहतर नहीं माना गया है। बाढ़ नहीं जाने प्रसूति की पीड़ा' कहकर हम यह कहना चाहते हैं कि बाग-बगीचों, पटरियों, प्लेटफार्मों, गदी व तग बस्तियों तथा बेघर लोगों की अन्दरूनी जिन्दगी कितनी बेबस, लाचार और बीमार होती है, इसका ठीक-ठीक आकलन करना आसान नहीं है। आज विश्व के सामने आवास की समस्या विकराल होती जा रही है। इसके साथ ही अक्तूबर माह के प्रथम सोमवार को मनाये जाने वाले विश्व आवास दिवस की प्रासंगिकता बढ़ती जा रही है।

आवास समस्या

एक अनुमान के अनुसार दुनिया का हर पाचवा आदमी बेघर है। योजना आयोग का अनुमान है कि भारत की जनसख्या का पाचवा भाग झुग्गी-झोपड़ियों में रहने को विवश है। इसके अलावा जो मकान हैं उनमें 75 प्रतिशत मकान ऐसे हैं जिनमें खिड़किया नहीं हैं और 80 प्रतिशत मकानों में शौचालय नहीं हैं। सड़क, पानी, बिजली की बात तो छोड़िए अधिकाश भारतवासी मकान, जल, शौचालय जैसी आवश्यक सुविधाओं से वचित हैं। आश्रम-स्थल को आवास मानना विवेकहीनता का परिचायक होगा, कारण विकास का सीधा सम्बन्ध आवास से होता है। बढ़ती आबादी, शहरीकरण, कीमतों में वृद्धि, पूजी विनियोग जैसी अनेकानेक बाधक तत्त्वों ने आवास समस्या को बढ़ाने में अहम भूमिका अदा की है, जबकि प्रत्येक मनुष्य अपना घर बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है। फिर भी सम्पूर्ण भारत में मकानों की कमी और मकानों का

असंतोषजनक स्तर बरकरार है। इन समस्याओं के समाधान का प्रयास भी लगातार किया जा रहा है।

समाधान के प्रयास

भारतीय संविधान में आवास समस्या पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया लेकिन पंचवर्षीय योजनाओं में इस समस्या को समाज कल्याण के परिप्रेक्ष्य में देखा गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही आवास समस्या पर ध्यान दिया गया है। औद्योगिक आवास योजना, कम आय वर्ग के लिए आवास योजना तथा विभिन्न प्रकार के श्रमिकों के लिए गृह योजना का श्रीगणेश प्रथम योजनाकाल से ही किया गया जो सरकारी अनुदान पर आश्रित रहा है। इसी आलोक में सन् 1954 में राष्ट्रीय भवन संगठन की स्थापना की गई। द्वितीय पंचवर्षीय योजनाकाल में आवासीय योजना की शुरूआत झुग्गी-झोपडियों का सफाया और विकास अभियान से की गयी। बागान श्रमिकों, ग्रामीण आवास एवं भू-अर्जन तथा विकास योजनाओं के अलावा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और ग्रामीण क्षेत्र के पिछड़े वर्ग के लिए कई कार्यक्रमों को प्रारम्भ किया गया। भारतीय जीवन बीमा निगम ने मध्यवर्गीय आय वालों को भवन निर्माण के लिए ब्याजमुक्त ऋण की व्यवस्था शुरू की और राज्य सरकारों ने अपने निम्न वेतनभोगी कर्मचारियों के लिए किराये का मकान तैयार करने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। तृतीय योजना-काल में इन कार्यक्रमों को चालू रखते हुए आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए नया कार्यक्रम बनाया गया। कम कीमत में मकान निर्माण के लिए शोध एवं सामग्री व्यवस्था का भरपूर प्रयास चौथी योजनाकाल में किया गया। पांचवें योजनाकाल में पूर्व घोषित एवं क्रियान्वित कार्यक्रमों का सफल कार्यान्वयन किया गया। छठी एवं सातवीं योजना अवधि में शहरी आवास समस्या का समाधान करते हुए ग्रामीण आवास समस्या पर विशेष ध्यान दिया गया। अब ग्रामीण भूमिहीनों के लिए गृहस्थल और गृह हेतु सहायता, कम लागत में मकान बनाने की तकनीक, स्वयं सहयोग से घर बनाने हेतु प्रोत्साहन आदि हमारी योजनाओं का ध्येय बन गया है।

शहरी एवं ग्रामीण बेघरों को अपना घर देने के उद्देश्य से कई कार्यक्रम सम्पन्न किये गये हैं जिनमें सहयोग करने के लिए राष्ट्रीय सहकारी आवास संघ, आवास एवं शहरी विकास निगम, राष्ट्रीय आवास बैंक, राष्ट्रीय भवन संगठन, आवास बोर्ड (राज्य स्तर), सेन्ट्रल बिल्डिंग रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम के अलावा कई सरकारी व निजी वित्तीय संस्थाएं तैयार हैं। शहरों में गरीबों को मकान उपलब्ध कराने के लिए नेहरू रोजगार योजना एवं ग्रामीण गरीबों के लिए भवन उपलब्ध कराने के लिए इन्दिरा आवास योजना तथा बीस-सूत्री कार्यक्रम क्रियाशील हैं।

योजनागत परिव्यय एवं विनियोग

पहली योजना में आवास के लिए 38.50 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान किया

गया। द्वितीय योजना में 120 करोड रुपये, तृतीय योजनावधि में 202 करोड रुपये, चौथी योजनाकाल में 237 03 करोड रुपये, पाचवीं योजना में 600 92 करोड रुपये, छठी योजना में 1490.87 करोड रुपये एव सातवीं योजना में 2458 21 करोड रुपये खर्च करने का लक्ष्य रखा गया। इसी प्रकार पहली योजना में आवास पर कुल विनियोग 1,150 करोड रुपये का था, जो अर्थतत्र के कुल विनियोग का मात्र 9 प्रतिशत रहा।

उपलब्धियां

स्वाधीनता के बाद योजनागत प्रयास, परिव्यय एव विनियोग की प्राप्ति कम नहीं है। कारण 1950-51 से दिसम्बर 1979 तक 2 05 लाख मकान बागान श्रमिकों एव औद्योगिक श्रमिकों के लिए बनाये गये। कम अाय प्राप्त करने वालों के लिए कुल 3.36 लाख तथा अन्य विविध योजनाओं में उच्च वर्ग के लिए कुल 1 42 लाख भवन निर्मित किये गए। ग्रामीण क्षेत्रों में करीब 77 लाख गृह स्थल वितरित किये गये और 5 6 लाख मकान गृह स्थल सह गृह निर्माण योजना के तहत बनाये गये। छठी योजनाकाल में विभिन्न कार्यक्रमों के तहत कुल 9,06,133 मकानों का निर्माण कराया गया जबकि सातवीं पचवर्षीय योजना में केवल सहकारी गृह निर्माण योजना में 1087 करोड रुपये का विनियोग करके 23 लाख मकान बनाये गये। बीस-सूत्री कार्यक्रम के अधीन 1 67 लाख मकान कम आय वर्ग तथा 7 14 लाख मकान आर्थिक कमजोर वर्ग के लिए बनाए गए हैं। इन्दिरा आवास योजना के अतर्गत अब तक 14 42 लाख मकान बनाए गए। राष्ट्रीय भवन सगठन ने 1991 में 3 1 करोड मकान की कमी का अनुमान लगाया था। दूसरी ओर एक अनुमान के अनुसार सन् 2001 तक 6 44 करोड नये मकानों की आवश्यकता होगी। वास्तव में मकानों की कमी आने वाली योजनाओं के लिए एक गम्भीर समस्या बनने वाली है।

आठवी योजना

आठवीं पचवर्षीय योजना के प्रावधानों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश में करीब 7 करोड 90 लाख भवनों के निर्माण की आवश्यकता है। आवास की विषम परिस्थिति को देखते हुए सरकार ने आठवीं पचवर्षीय योजना में आवास निर्माण के कार्य को प्राथमिकता दी है। सातवीं योजना में 2458.21 करोड रुपये की अपेक्षा इस बार आठवी योजना में 6377 करोड रुपये खर्च करने की योजना है। सन् 2000 तक सभी को अपना घर देने के लिए आवासीय क्षेत्र में भारी पूजी निवेश का लक्ष्य रखा गया है। कुल 77,496 करोड रुपये का पूजी निवेश आका गया है। इसमें निजी क्षेत्र से 69,746 करोड रुपये और सार्वजनिक क्षेत्र से 7,750 करोड रुपये का निवेश सम्भावित है। आवास समस्या के समाधान हेतु होने वाले निवेश का 90 प्रतिशत निजी क्षेत्र के माध्यम से होना है। योजना के आधार-पत्र में विभिन्न आय वर्ग के लोगों की आवास सम्बन्धी आवश्यकता, खासकर निम्न आय वर्ग के व्यक्तियों, महिलाओं और लाभ से वचित वर्गों

यथा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग आदि की आवासीय जरूरतों को पूरा करने हेतु जोर दिया गया है। इस हेतु सामाजिक आवास योजनाओं पर बल दिया जा रहा है जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम, हुडको की भूमिका को सुदृढ़ करना, बेघरों के लिए घर, दकनीकी हस्तांतरण, आवास सूचना प्रणाली, इन्दिरा आवास योजना तथा सरकारी कर्मचारियों हेतु आवास योजनाएं शामिल हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आठवीं योजना में आवास समस्या से निपटने के लिए निश्चित राष्ट्रीय आवास नीति की घोषणा की गयी है।

निष्कर्ष

निःसंदेह स्वाधीनता के बाद भारत के शहरों एवं गांवों में फुटपाथों पर जीवन बसर करने वाले नागरिकों के कार्यक्षमता में वृद्धि करने, सर्दी-गर्मी एवं वर्षा से बचाकर उन्नत जीवन व्यतीत करने का अवसर प्रदान करने हेतु केन्द्र व राज्य सरकार की ओर से बेघरों को घर तथा असंतोषजनक घरों को संतोषजनक आवास बनाने के लिए सामाजिक व संस्थागत प्रयास किये गए हैं। सफलता भी मिली लेकिन बढ़ती जनसंख्या, कमरतोड़ महंगाई, तकनीक का अभाव एवं सामाजिक व्यवस्थाजन्य समस्या का निदान नहीं हो सकता। यह भी सर्वमान्य सत्य है कि आहार समस्या की तरह आवास समस्या पर ध्यान नहीं दिया गया। ऐसी सरकारी योजनाओं में यह प्राथमिकता का विषय अवश्य रहा है। सामाजिक रूप से मंदिर, धर्मशाला व अनाथालय का निर्माण भी घर हीन को घर उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से किया जाता रहा है। भारतीय आवास समस्या में बाढ़, आगजनी, आंधी, भूकम्प जैसे प्रकृति प्रकोप के साथ-साथ विदेश तथा देश के विभिन्न भागों से पनाह लेने हेतु आये व्यक्तियों से हमेशा बढ़ोत्तरी हो रही है। सरकारी कोष में उपलब्ध संसाधनों के अनुसार सरकार का प्रयत्न सही दिशा में हो रहा है लेकिन इस समस्या के समाधान के लिए हम सबको पहल करने की आवश्यकता है।

सुझाव

आवास समस्या के कारण गांव से लेकर शहर तक की सामाजिक संस्कृति का नाश हो रहा है तथा भारत का भविष्य अपने को सम्भाल नहीं पा रहा है। गांवों में खर पुआल, बांस और कच्ची मिट्टी का बना एक कमरा एक परिवार के लिए सोने, रहने, भोजन, पढ़ने के साथ साथ जानवर गाय, बकरी, भैंस व बैल पालने के लिए इस्तेमाल होता है। क्षमता से अधिक लोगों के निवास के लिए प्रयुक्त यह कमरा बच्चों को प्रारम्भ से ही हीन भावना का शिकार बनाता है। दूसरी तरफ शहरों में खासकर किराये के मकानों में भी बच्चों को कुंठित होने का भरपूर वातावरण मिलता है, कारण खेलने-कूदने के स्थान की कमी, मकान मालिक का रवैया, वायु, जल, बिजली के अभाव से बच्चे आत्मकेन्द्रित हो जाते हैं। इससे हमारी सामाजिक संस्कृति प्रदूषित हो रही है। आशय स्पष्ट है कि भारत का भविष्य एक-दूसरे की सहायता, बाह्य मनोरंजन, मिलजुल कर काम करना तथा

मुख दुख का माथी खोता जा रहा है। ऐसी स्थिति में आवास समस्या समाधान चाहती है। इसके लिए हमारा सुझाव होगा कि आवाम निर्माण के व्यय तथा विनियोग को सभी प्रकार के करों से मुक्त रखने की व्यवस्था यथाशीघ्र की जानी चाहिए। धर्मशाला, अनाथालय, किराये के मकान ग़रीबों के लिए मुफ्त मकान बनाने वालों के लिए सरकारी तौर पर कुछ मुविधा मुहैया कराना अनिवार्य है। पहला मकान में विनियोजित राशि को आयकर से मुक्त रखा जाए। दूसरा प्रत्येक वर्ष अक्तूबर के प्रथम सोमवार को मनाये जाने वाले विश्व आवास दिवस को ऐसे व्यक्तियों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए जिन्होंने आवास समस्या के निदान हेतु सक्रिय सहयोग किया। तीसरा बेघरों को घर देने वाले व्यक्तियों को भ्रमण-काल में सम्पूर्ण देश में मरकारी आवासीय होटलों में मुफ्त रहने की व्यवस्था की जाए। जनमख्या नियत्रण, गरीबी उन्मूलन और बेरोजगारी निवारण के लिए आम सहभागिता की भावना तीव्र करने की आवश्यकता भी आवास ममस्या के लिए उतनी ही प्रासगिक लग रही है जितनी कीमतों पर नियत्रण। आग, आधी, वर्षा से बचने वालों मकानों का निर्माण सस्ता, सुन्दर और टिकाऊ के सिद्धान्त पर किया जाना चाहिए जैसे—आग से बेअसर फूस की छत आदि। कम मूल्य की तकनीक का आशय घास फूस का छप्पर मे नही लिया जाना चाहिए। इसके माथ ही आवास निर्माण को उद्योग का दर्जा दिया जाए जिससे एक ओर आवाम समस्या को सुलझाने में मदद मिलेगी और दूसरी तरफ निपुण एव गैर निपुण व्यक्तियों को रोजगार मिलने की सभावना बढेगी। अन्त में लेकिन कम महत्त्व की बात यह नहीं है कि योजना बनाकर उसे पूरी दृढता से लागू किया जाए तो सफलता अवश्य मिलेगी। आवास समस्या से निपटने के लिए हमें यह याद रखना होगा—'हम उनकी मदद करें जो घरविहीन हैं।' □

ग्रामीण विकास
स्वैच्छिक संगठन बन सकते हैं मील का पत्थर

अरविन्द कुमार सिंह

आजादी के बाद लंबे समय से चले आ रहे योजनाबद्ध विकास प्रयासों के बावजूद ग्रामीण भारत आज भी अनेक समस्याओं से घिरा है। करीब 5.7 लाख से अधिक गावों वाले हमारे देश में लगभग एक तिहाई आबादी गावों में ही रहती है वहा प्रतिव्यक्ति आय तथा खपत दोनों का स्तर नीचा होने के साथ साथ कई मूलभूत समस्याएं हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा यातायात, सचार समेत कई आधारभूत सुविधाएं भी उन्हें सुलभ नहीं है और ग्रामीण गरीबी अभी भी चिंताजनक बनी हुई है। कई जगह मूलभूत सुविधाए उपलब्ध हैं तो उनकी गुणवत्ता ठीक नहीं है। शहरों की ओर बढ़ता पलायन भी इनमें से एक वजह है। गावों में बेहतर रोजगार के मौकों की कमी और अन्य सामाजिक-आर्थिक कारणों से ग्रामीण उन नगरों में तेजी से आये हैं जो रोजगार के मशहूर माने जाते है। राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली हो या बबई की झापड़पट्टियों मे आकर रहने वाले लाखो ग्रामीणों से अगर पूछा जाये तो पता चलेगा कि उन्हें अगर थोडा भी बेहतर मौका मिला होता तो शायद वे अपने गाव को न छोडते। 1951 में कुल भारतीय आबादी का 82.8 प्रतिशत गावों में निवास करता था। यह प्रतिशत घटकर सन् 2000 तक 66.9 प्रतिशत होने की परिकल्पना की जा रही है। आबादी भारत में स्वय में एक समस्या है और इसी वजह से बहुत सारे क्षेत्रों में व्यापक समाधान लगाने और विशेष प्रयासों के बाद भी अपेक्षित नतीजे नहीं दिख रहे हैं।

विशाल आबादी और जटिल भूगोल वाली भारत भूमि का ग्रामीण क्षेत्र दरअसल हमारी शान है। यह क्षेत्र उपेक्षित भले ही रहा हो लेकिन इसके सहारे ही हमारा आर्थिक ढाचा मजबूती से टिका हुआ है। सरकार की ओर से भी इन तथ्यों को मद्देनजर रख ग्रामीण विकास की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। सरकार ने ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार लाने के साथ उनको और स्वावलबी तथा उद्यमी बनाने के अनेक प्रयास किए हैं। गैट समझौता लागू होने के बाद ऐसा अनुमान भी लगाया जा रहा है कि कई क्षेत्रों में कृषि उत्पादों के निर्यात और अन्य पहलुओं में व्यापक प्रगति होगी। ग्रामीण

गरीबी पर प्रहार करने के साथ आठवीं योजना में ग्रामीण विकास हेतु केंद्रीय योजना का परिव्यय बढ़ाकर 30,000 करोड़ रुपये कर दिया। यह इस अवधि में राज्य योजना के समाविष्ट व्यय 15,000 करोड़ रुपये से अलग है। यही नहीं, केन्द्र सरकार की ओर से भूमि सुधार, स्वच्छ पेयजलापूर्ति, ग्रामीण गरीबी, रोजगार के अधिक अवसर देने जैसे पहलुओं को प्राथमिकता दी गयी। मानव के बहुमुखी विकास के लिए किए गए ये प्रयास रंग ला रहे हैं। हाल के वर्षों में पंचायती राज संस्थाओं को और अधिक अधिकार देने का ऐतिहासिक निर्णय ग्रामीण भारत को तेजी से विकास की ओर ले जाएगा। पंचायतों को और अधिकार देने से आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए योजनाओं को बनाने और कार्यान्वयन का अधिकार भी उन्हें मिला है। खंड पंचायत और जिला पंचायतों को जो अधिकार दिए गये हैं और जो प्रक्रिया अपनायी जा रही है उससे कल्पना की जा सकती है कि पंचायतें गांवों की उन्नति में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगी। केन्द्र ने 9-10 अक्तूबर 1995 को पंचायत अध्यक्षों के दिल्ली सम्मेलन के बाद कई व्यावहारिक प्रावधानों को जोड़ा है।

लेकिन इन नये बदलावों से ग्रामीण क्षेत्रों की समस्याएं हल हो जाएगी ऐसा नहीं कहा जा सकता। दरअसल ग्रामीण विकास को और गतिशील बनाने तथा पंचायतों को और कारगर बनाने के लिए अकेले यही माडल काम नहीं कर सकता। वास्तव में अभी भी विकास की मुख्यधारा से कटे या क्षेत्रीय असन्तुलन वाले ग्रामीण इलाकों में सरकार के साथ अगर स्वयंसेवी संस्थाएं कदम से कदम मिलाकर नहीं चलेंगी तो अपेक्षित नतीजे शायद ही आ सकें। इतने बड़े देश में बदलाव अकेले सरकारी तंत्र से नहीं हो सकता बल्कि सरकारी प्रयासों को गतिशील बनाने में जनसहयोग के साथ स्वैच्छिक संगठनों को उनमें मददगार तथा सरकार की आंख कान बनना होगा। अब सवाल यह उठता है कि स्वैच्छिक संस्थाएं ग्रामीण विकास के चुनौतीपूर्ण कामों में किस सीमा तक भूमिका निभा सकती हैं। दुर्भाग्य से अधिकतर स्वयंसेवी संगठन शहरी क्षेत्रों में ही सक्रिय हैं। उपभोक्ता आंदोलन हो या ग्रामीण स्वच्छता के कार्यक्रम, गांवों में अशिक्षा का अंधेरा हो या नई प्रौद्योगिकी से जनजागरण, सामाजिक कुरीतियां हों या विसंगतियां, ये संस्थाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। तमाम सुदूर ग्रामीण अंचलों में अभी भी यह आलम है कि ग्रामीण अपने अधिकारों से अनजान हैं और उन अनेक सरकारी योजनाओं को जानते तक नहीं जो उनके हित के लिए बनी हैं। सरकार द्वारा सब्सिडी देने के बावजूद तमाम राज्यों में चाहे वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों को आम लोगों तक पहुंचाने का मामला हो या फिर ग्रामीण आवास या स्वच्छ शौचालयों का मामला कोई भी अपेक्षित सफलता नहीं पा सका है। महत्वाकांक्षी इंदिरा आवास योजना को ही लें तो कई जगहों पर लाभार्थियों की सलाह के बगैर बनाये गये मकानों को उन लाभार्थियों ने लेने से इन्कार कर दिया।

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि कोई भी विकास कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो

सकता है जब तक उनमें वे लोग न शामिल हों जिनके लिए वे चलाए जा रहे हैं। महात्मा गाधी तथा आचार्य विनोबा भावे जैसे महापुरुषों ने लोगो के सहयोग से इतने अधिक काम किए है कि वे हमारे सामने मिसाल हैं। आजादी के आदोलन का मुख्य पुरुष होने के बावजूद महात्मा गाधी न तो ग्रामीण भारत को भूले थे न ही उन्होंने चपारण के किसानों की पीडा से खुद को अलग किया। आचार्य विनोबा भावे ने अपने व्यक्तिगत प्रयासो से ही गाव-गाव की पदयात्रा करके ग्रामीण भूमिहीनों के लिए दान में 45 90 एकड भूमि हासिल की। राजा राममोहन राय से लेकर दर्जनों सामाजिक कार्यकर्ताओं ने ग्रामीण समाज की विसगतियो तथा कुरीतियों के खिलाफ सघर्ष की मिसाल कायम की। हाल ही में उत्तर प्रदेश के गढवाल अचल में महिलाओं ने शराब तथा जगल माफिया के खिलाफ जैसी सशक्त एकता दिखाई वह हमारे लिए प्रेरणा स्रोत है। गौरी देवी तथा चडी प्रसाद भट्ट ने ग्रामीण पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जिस 'चिपको आदोलन' को चलाया या शामली गाव (मुजफ्फर नगर) के एक मामूली से किसान चौ महेन्द्र सिह टिकैत ने आर्थिक शोषण के चक्र मे उलझे किसानों को सगठित कर उन्हें अधिकारों के लिए लडना सिखाया ये ताजा मिसाले है। आज ग्रामीण समाज नई चुनौतियो मे जूझ रहा है। अनेक सामाजिक आर्थिक विसगतियों के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में काफी तरक्की हुई है और गाव बडे बाजार के रूप मे भी विकसित हुए हैं। यही नहीं सरकारी योजनाओं का जाल, ग्रामीण अचलो में और सघन हुआ है। ऐसे दौर मे जबकि खेती बाडी के क्षेत्र में बदलाव हो रहे हैं, अतर्राष्ट्रीय व्यापार की बदिशें टूट रही हैं गाव के गरीब लोगों को जागरूक बनाने की जरूरत है। अन्यथा प्रगति की इस दौड मे ये गाव गभीर असतुलित विकास का द्योतक बन सकते हैं। ऐसे मे स्वयसेवी या स्वैच्छिक सस्थाओं की भूमिका ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमो की व्यापक सफलता के लिए ही सरकार ने सितबर 1986 मे ग्रामीण विकास मत्रालय के तहत गठित दो सगठनों भारतीय विकास लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद का विलय करके लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी परिषद (कापार्ट) की स्थापना की थी। लेकिन 1994 के बाद ही इन प्रयासों को और गतिशील बनाया जा सका। कापार्ट के माध्यम से विकास परियोजनाओं को जनभागीदारी मे क्रियान्वित करने के लिए स्वयसेवी और गैर सरकारी सस्थाओं को सहायता दी जाती है। उन्हें ऐसी परियोजनाओं के लिए मदद दी जा रही है जो ग्रामीण जीवन की बुनियादी आवश्यकता के किसी गभीर पहलू से जुडी हो।

ग्रामीण जनसख्या का आकार देखते हुए उनकी समस्याओं की कल्पना की जा सकती है। अकेले चार हिदी भाषा राज्यों उत्तर प्रदेश बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान में भारत का 42 प्रतिशत से ज्यादा ग्रामीण समुदाय रहता है। उत्तर प्रदेश मे ही 11 15 करोड ग्रामीण जनसख्या तथा 2 18 करोड किसानों के बूते पर राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था चल रही है। इन किसानो में 88 4 प्रतिशत लघु और सीमात किसान हैं।

राज्य में खेतिहर मजदूरों की संख्या 7.08 करोड़ है। इनमें अधिकतर लोग भूमिहीन, निर्बल, अर्द्धबेरोजगार या गरीबी की रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। यों उत्तर प्रदेश में 1950 के दौर में बहुत राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किए गये थे लेकिन अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों पर विकास गति मंद है और पूर्वी उत्तर प्रदेश जैसे इलाकों में महिला साक्षरता की स्थिति नाजुक है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में संसाधनों की दृष्टि से उन राज्यों को अहमियत दी गयी है जो अधिक समस्याग्रस्त हैं या अधिक आबादी वाले हैं। 1995-96 में ग्रामीण विकास मद में वार्षिक योजना आवंटन 8500 करोड़ रुपये हैं। नवीं योजना में ग्रामीण आवास कार्यक्रम को और पुख्ता बनाया जा रहा है। हाल में प्रधानमंत्री ने ऐलान किया कि नवीं योजना में ग्रामीण आवास कार्यक्रम दुनिया का सबसे बड़ा कार्यक्रम बनने जा रहा है। 1995-96 में ही 10 लाख मकान बनाने का महत्वाकांक्षी कार्यक्रम रखा गया है। इस लक्ष्य की विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि 1985-86 में इंदिरा आवास योजना लागू होने के बाद मार्च 1995 तक कुल 20 लाख मकान बने हैं। लेकिन नये लक्ष्यों के साथ सरकार ने कार्यक्रम में बदलाव भी किया है और इसे एक आंदोलन में पहली बार स्वयंसेवी संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी के साथ लाभार्थियों की भागीदारी तय करके गुणवत्ता की दृष्टि से भी कार्यक्रम को मजबूत बनाया जा रहा है। सरकार ने प्रतिष्ठित विशेषज्ञ लॉरी बेकर की अध्यक्षता में एक कार्यदल भी गठित किया है जो इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए इस काम को और अधिक सुचारु रूप से चलायेगा। यहां पर उल्लेखनीय है कि कोई भी कार्यक्रम गुणवत्ता की दृष्टि से तब तक खरा नहीं उतर सकता है जब तक कि उसमें आम जनता की भागीदारी न हो। कपार्ट ने भी इन पहलुओं को ध्यान में रखा है।

भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर आजादी के साथ ही 1947 से ध्यान दिया जाता रहा है। 1950 की शुरुआत में बने कार्यक्रम सामुदायिक विकास को लें या 1977 के महत्वाकांक्षी 'अन्त्योदय' को, 1980 में चले 'समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' को लें या गरीबी पर प्रहार करने वाली अन्य योजनाओं का आकलन करें, इनसे फायदा हुआ लेकिन उम्मीद के मुताबिक नहीं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अगर ये कार्यक्रम न चलाये जाते तो आज ग्रामीण गरीब की स्थिति और भी भयावह होती। अभी भी 1987-88 के स्तर पर विद्यमान गरीबी रेखा के नीचे गुजर बसर करने वालों का प्रतिशत 33.4 कोई कम नहीं है। इन्हीं तथ्यों को मद्दे नजर रखते हुए इस सरकार ने ग्रामीण इलाकों के लिए इतनी ज्यादा धनराशि दी है। लेकिन इन प्रयासों को सही दिशा देने में स्वयंसेवी संस्थाएं ही बेहतर भूमिका निभा सकती हैं।

स्वयंसेवी संस्थाओं और सरकार दोनों को उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और उत्तर-पूर्व के उन राज्यों को अपनी प्राथमिकता सूची में शामिल करना चाहिए जो प्रगति की इस दौड़ में न केवल पिछड़े हैं बल्कि पिछले दो

दशकों (1975-95) मे राष्ट्रीय औसत से नीचे प्रति व्यक्ति आय वाले हैं। यहा अभी मूलभूत सुविधाए लाना भी बाकी है, साथ में उन्हें प्रगति के नये आयामों से जोडना भी है। इलेक्ट्रानिकी विभाग ने हाल में महाराष्ट्र, गुजरात तथा गोवा के 195 गावों में सर्वेक्षण और ग्रामीण विकास अधिकारियों से साक्षात्कार में पाया कि वे स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, बेहतर हाई स्कूल शिक्षा तथा व्यावसायिक कौशल प्रशिक्षण, पेयजल, सिंचाई, विद्युत, सडक तथा परिवहन सेवाओं और अनुरक्षण में सुधार चाहते हैं।

ग्रामीण विकास के समक्ष दो तरह की गभीर चुनौतिया हैं—एक मूलभूत सेवाओं को जुटाने की तो दूसरी जो इलाके विकसित हो रहे हैं उन्हें नई प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराने की ताकि वे विकास की मुख्यधारा में शामिल हो सकें। लेकिन हम उनके लिए कौन सी नीति बना सकते है जो गरीबी रेखा से नीचे हैं और जिनके पास नाममात्र की क्रयशक्ति भी नहीं है या जहा काम करने की दशाए खराब हैं। बिजली आपूर्ति अविश्सनीय है और मरम्मत तथा अनुरक्षण की सेवाए हैं हो नहीं। लेकिन उदारीकरण की नीति के बाद सरकार ने भारत को विश्वव्यापी प्रतिस्पर्धा में खडा करने के लिए ऐसे उत्पादों की तलाश शुरू कर दी है जो ग्रामीण वातावरण के अनुकूल हों।

स्वयसेवी सगठन ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को जागरूक करने के काम में लगे हैं। सरकार द्वारा इन सस्थाओं को उदारता से मदद करने तथा उन्हें सबल देने की नीति से मौके का फायदा उठाकर कागजी सगठनों को पैदा करने वाले भी सामने आ रहे हैं। हमेशा से हो ऐसे पथभ्रष्ट सगठनों पर निगरानी रखना जरूरी है। मिशनरी भावना से काम करने वाले स्वयसेवी सगठनों को गावों में रचनात्मक कार्मों का माडल खडा करना चाहिए। कापार्ट को ग्रामीण विकास में और कारगर भूमिका निभाते हुए स्वैच्छिक सस्थाओं को गावों में विकास कार्यों के लिए प्रोत्साहित करना होगा तथा छोटे छोटे सगठनों का जाल बुनना होगा। प्राथमिकता वाले राज्यों पर उसे और ध्यान देना होगा। कापार्ट ने स्वयसेवी सस्थाओं के लिए 1992 93 में 4548 94 लाख रुपये, 1993 94 में 5829.27 लाख रुपये और 1994-95 में 4912 लाख रुपये की राशि स्वीकृत की। सबसे ज्यादा आबादी वाले राज्य उत्तर प्रदेश को इस अवधि में 2635.87 लाख रुपये मिले। अब तक 359 फर्जी सस्थाए भी प्रकाश में आई इनमें भी उत्तर प्रदेश और बिहार में सबसे ज्यादा ऐसी सस्थाए पकडी गई। कई सस्थाओं ने इस दौर में अच्छे काम किए हैं। कापार्ट ने 30 नवबर 1994 तक 225 03 करोड रुपये की परियोजनाए इन सगठनों को 1986-87 में दी और इस अवधि में 13 लाख श्रम दिवसों का सृजन, 13000 कम लागत वाले मकानों के निर्माण, 1,10,000 स्वच्छ शौचालय बनाने, 25 हजार हैंड पप, 3000 कुए, 1 000 मछली तालाब, 600 मुर्गी पालन केन्द्र और 200 किलोमीटर ग्रामीण सडकों के निर्माण की उपलब्धि मिली। लेकिन इतने बडे देश और ग्रामीण परिवेश में यह काम ऊट के मुह में जीरे के समान है।

स्वयसेवी सगठनों को और नजदीक लाने के लिए ही कापार्ट ने अपने को विकेंद्रित

करके वित्तीय शक्तिवाले 6 क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना की है तथा छोटे स्तर के स्वयसेवी सगठनों को प्रोत्साहन देना शुरू किया। यही नहीं 7-8 मार्च 1994 को देश के विभिन्न अचलों से आये 100 स्वैच्छिक सगठनों का दिल्ली में सम्मेलन भी किया जिसमें प्रधानमत्री ने भी भाग लिया और उनकी समस्याओं तथा अन्य पहलुओं की पडताल के बाद एक कार्यवाही योजना बनायी गयी। यही नहीं, इनकी आचार सहित बनाने पर भी चर्चा हुई। इसके बाद 10 लाख ग्रामीण मकानों के निर्माण के लिए बने कार्यदल ने स्वयसेवी सगठनों को भी मकानों के निर्माण कार्य में रखा और कापार्ट की सूची में शामिल स्वयसेवी सस्थाओं की मदद से 30 हजार ग्रामीण आवासों के निर्माण का लक्ष्य रखा। अभी तक ये सगठन ग्रामीण जलापूर्ति, महिला और बाल विकास, समन्वित ग्रामीण विकास तथा जवाहर योजना जैसे कार्यक्रमों से जुडे थे और उनकी 13,567 परियोजनाए कापार्ट ने मजूर की थी। कापार्ट की सहायता से चलने वाली परियोजनाए बढती जा रही हैं। 1986-87 में जहा 428 परियोजनाए हाथ में ली गयी थीं वह 1991 92 तक 2606 हो गयी। पिछले दो वर्षों में प्राप्त प्रस्तावों की सख्या में ऐसी तेजी आयी है कि हर माह हजार से ज्यादा प्रस्ताव मिलने लगे। ऐसे में कापार्ट की जिम्मेदारी और बढ गई है। कापार्ट का मानना है कि हाल के वर्षों में इन सगठनों की गतिविधिया बढी हैं पर इनसे जुडा नकारात्मक पहलू यह भी है कि कई जाली सगठन भी प्रकाश में आये हैं और इनका पता लगाने में बहुत कठिनाई आती है। कापार्ट ने गरीबी निवारण कार्यक्रम के लाभग्राहियों को सगठित करने की दिशा में भी पहल की है तथा गरीबों की मददगार योजनाओं और कानूनी अधिकारों के बारे में जागृति पैदा की है। मुख्य शहरों में ग्रामश्री मेलों के द्वारा स्वयसेवी सगठनों ने ग्रामीण उत्पादों की पहचान बनाने और उन्हें उचित दाम दिलाने में भी मदद की है।

अभी ग्रामीण विकास की राह में अनगिनत रोडे हैं। सरकारी कार्यक्रमों के बाद भी ग्रामीण अचलों में मात्र 13 86 प्रतिशत जनसख्या को ही स्वच्छता और शौचालयों की सुविधा दी जा सकी है। 1994-95 में मात्र 5.8 लाख घरेलू शौचालय बन सके। 1986 में आरम्भ 'केंद्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम एक दशक का होने जा रहा है लेकिन ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम गति नही पकड रहा है। और इससे मात्र 2.5 प्रतिशत जनसख्या को ही लाभान्वित किया जा सका है। जबकि मलेरिया जैसे महामारी रोग को नियत्रित नहीं किया जा सका है। तो भी इस दिशा में कार्य करने की इच्छुक कई सस्थाए सामने आ रही हैं। इस दिशा में दो सस्थाओं के नाम का उल्लेख जरूरी है। रामकृष्ण मिशन और सुलभ इटरनेशनल ने सामाजिक सेवा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम किए हैं। सुलभ ने अब तक 6,86,0613 घरेलू शौचालय बनाये, 3000 से ज्यादा सामुदायिक शौचालय, 61 बायोगैस प्लाट तथा 35,000 कार्यकर्त्ताओं का जाल 19 राज्यों के 338 जिलों में खडा किया है। 1970 में पदमभूषण डॉ विंदेश्वर पाठक ने पटना मे जब अपने प्रयासों की शुरुआत की थी तब लोग हंसते या कटाक्ष करते थे लेकिन कम लागत तकनीक के

शौचालय बनाने की दिशा में सुलभ ने अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आज एक करोड लोग सुलभ शौचालयों का उपयोग कर रहे हैं तथा इन शौचालयों के निर्माण में 500 रुपये से 40,000 रुपये तक की लागत का विकल्प खुला है। सुलभ के प्रयासों की विश्व स्वास्थ्य सगठन, यूनिसेफ तथा यू एनडीपी ने सराहना की है। रामकृष्ण मिशन ने पश्चिम बगाल के दक्षिण चौबीस परगना में ऐसे प्रयास 1957-58 में ही शुरू किए थे। उसने भी गावों में स्वच्छता कार्यक्रमों के प्रति जागृति पैदा की। ऐसे प्रयासों के बगैर सबके लिए स्वास्थ्य का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। सरकार के भरोसे इतना काम सभव नहीं है। अगर 2000 रुपये के निवेश पर सरकार ग्रामीण अचलों में शौचालय बनाने की योजना साकार करना चाहे तो उसे 28,225 करोड रुपये का निवेश करना होगा। ऐसी व्यवस्था सभव नही हैं।

स्वच्छता कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी के दिशा में सस्थाए आगे आ रही हैं। ग्रामीण जलापूर्ति और स्वच्छता पर ससदीय स्थायी समिति ने 1994 में अपनी रिपोर्ट में लोगों की भागीदारी और स्वैच्छिक सस्थाओं के प्रयासों को प्रोत्साहित करने के ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मत्रालय के प्रयासों की सराहना भी की।

खेती, बागवानी, पशुपालन ग्रामीण रोजगार, परपरागत उद्योगों, हस्तकलाओं स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सामुदायिक विकास में कई सगठन अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। राजस्थान के समस्याग्रस्त झुझुनू जिले में एम आर मोरारका ग्रामीण अनुसधान सस्थान ने ग्रामीण जनता की भागीदारी से कई जगह कायाकल्प ही कर दिया है। उसके कई कार्यक्रम चल रहे हैं और सरकार ने उनकी सराहना की है। पचास से अधिक स्वैच्छिक सगठन देश में कृषि विज्ञान केंद्रों का सचालन करके गावों में नई प्रौद्योगिकी लाने में मददगार साबित हो रहे हैं। लेकिन अभी इन प्रयासों को और गतिमान बनाने की जरूरत हैं। उपभोक्ता आदोलन को गावों में उसी तेजी से ले जाने की जरूरत है जैसा हाल के वर्षों में यह नगरों में चला है। कठोर दड प्रावधानों के बावजूद ग्रामीण उपभोक्ता कई तरह से पिस रहा है और गरीबी, अशिक्षा, सचार सेवाओं में कमी तथा अज्ञानता के कारण अपने अधिकारों से वचित है। उन्हें सिंचाई, बिजली, ईंधन कीटनाशक दवाओं, कृषि यत्रों आदि से सबधित तमाम समस्याओं का सामना करना पडता है। वह दोषपूर्ण ट्रैक्टर से लेकर घटिया बीज और मिलावटी उर्वरक के तमाम मामलों में असहाय सा महसूस करता है। ग्रामीण इलाकों में नाममात्र के उपभोक्ता सगठन सक्रिय हैं। ऐसे में इन प्रयासों को और गतिशील बनाने की जरूरत है। अगर इन पहलुओं को ध्यान में रखकर स्वयसेवी सगठन ग्रामीण विकास में भागीदार बनते हैं तथा अपनी गतिविधिया तेज करते हैं तो सकारात्मक परिणाम हर हाल में हासिल होंगे। अगर मदनमोहन मालवीय सरीखा एक व्यक्ति अपने प्रयासों से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी बडी सस्था खडी कर सकता है तो जनभागीदारी से कोई भी काम असभव नही है। □

25

भारत में ग्रामीण विकास के लिए भूमि सुधार का महत्त्व

टी. हक

भूमि सुधार आर्थिक उदारीकरण से किस प्रकार प्रभावित हो सकते हैं, इसका विश्लेषण करते हुए लेखक ने बताया है कि पूजीवादी कृषि लाखों सीमात और छोटे किसानों के लिए हानिप्रद होगी। पिछले चार दशकों में अनेक भूमि सुधारों के बावजूद भूमि वितरण की स्थिति में ज्यादा सुधार नहीं हुआ है। लेखक का कहना है कि हमारी लोकतात्रिक व्यवस्था में आर्थिक उदारीकरण के दौर में भूमि के समान वितरण के प्रयासों में बाधा आएगी। लेखक के अनुसार लाखों सीमात और छोटे किसानों का अब कृषि से निर्वाह सभव नहीं है इसलिए उन्हें गैर कृषि कार्यों में रुचि लेनी चाहिए।

पिछले पाच दशकों मे कृषि अर्थव्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन आये हैं। सभी बडे जमींदारों और बिचौलियों को हटाया गया है और बहुत से काश्तकारों को मालिकाना अधिकार दिये गये हैं। फिर भी अभी तक कुछ भू-पतियों के पास अत्यधिक जोतें हैं। सकल घरेलू उत्पाद मे कृषि का भाग जो कि 1950 के शुरू में 60 प्रतिशत था, 1994 में कम होकर 28 प्रतिशत रह गया है। परन्तु कुल श्रमिकों की सख्या में कृषि श्रमिकों का अनुपात 1950 में 72 प्रतिशत से थोड़ा सा कम होकर 1992 में 65 प्रतिशत हो गया है। आजादी के बाद से, भूमि की जोतों के समान रूप से वितरण के लिये बहुत से भूमि सुधार किये गये हैं। परन्तु इस दिशा में सफलता सीमित रूप में ही मिल पायी है। छोटे और सीमान्त किसान एव ग्रामीण जनसख्या के अधिकाश भूमिहीन श्रमिकों की सख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, अब आधुनिक आर्थिक सुधारों के युग में भूमि सुधार की भूमिका में लोगों को सदेह होने लगा है। अधिकतर यह तर्क दिया जाता है कि भूमि सुधार कानून पूजीवादी एव निगमित खेती के विकास को रोकते हैं जो कि विकास के लिये आवश्यक है। आर्थिक उदारीकरण के समर्थकों के अनुसार सामन्तवादी कृषि व्यवस्था प्राय समाप्त हो गई है। परतु समतावादी एव सहकारी कृषि अर्थव्यवस्था भी विकसित नहीं हो सकी है और न ही पूजीवादी कृषि व्यवस्था का विकास हो पाया।

उपरोक्त तथ्यों के सन्दर्भ में हमारे मस्तिष्क में कुछ प्रश्न उभरते हैं। सबसे मुख्य प्रश्न यह है कि भविष्य के लिये हम किस प्रकार के कृषि ढाचे की अपेक्षा रखते हैं? क्या हम अब भी समझते हैं कि भूमि सुधारों द्वारा भूमि की जोतों के एकीकरण की कम करने की आवश्यकता है? यदि ऐसा है तो भविष्य में भूमि के पुनर्वितरण के लिए सुधारों की क्या सभावना है एवं हम इस उद्देश्य को कैसे प्राप्त कर सकेंगे जबकि अभी तक हम विफल रहे हैं? क्या हम वास्तव में ऐसा सोचते हैं कि कृषि ढाचे का मुख्य उद्देश्य छोटे और अधिक कुशल किसान होना है और उचित नीति के द्वारा सीमान्त किसानों को हटाना है? या हम वास्तविकता स्वीकार कर सकते हैं कि पूंजीवादी कृषि समाज में भूमि की जोत कुछ ही हाथों में केन्द्रित रहे, जबकि अधिकतर छोटे और सीमान्त किसान भूमिहीन श्रमिकों में बदल जायें? निसंदेह पूंजीवादी कृषि परिवर्तन की यह प्रक्रिया लाखों सीमान्त और छोटे किसानों के लिए हानिप्रद होगी विशेषतः जब कृषि और गैर कृषि क्षेत्र में रोजगार की सभावनायें पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए क्या हम कम से कम इन परिवर्तन की स्थिति में छोटे खेतों को इसी दशा में रहने देने की योजना बना सकते हैं? वास्तव में, इन प्रश्नों को हल करने के लिए बहुत से सम्पादक और टेक्नोलॉजिकल उपाय करने होंगे।

भूमि की जोतों के बंटवारे में परिवर्तन

तालिका 1 से यह देखा जा सकता है कि 1950-51 में कुल जोतों का 38 प्रतिशत सीमान्त जोतें थीं जिन पर कुल क्षेत्र के 6 प्रतिशत के बराबर भाग पर खेती होती थी जबकि दस हेक्टेयर से अधिक जोत वाले किसान 50 प्रतिशत थे जो कुल क्षेत्र के 34 प्रतिशत भाग में खेती करते थे। 1990-91 की कृषि गणना के अनुसार सीमान्त खेतों का अनुपात बढ़कर 59 प्रतिशत हो गया, जो कि कुल क्षेत्र का 15 प्रतिशत था। परन्तु 1.6 प्रतिशत बड़े किसानों ने कुल क्षेत्र के 17.4 प्रतिशत पर कब्जा रखा जिन भी 8.6 प्रतिशत के लगभग बड़े और मध्यम किसान कुल भूमि के 45 प्रतिशत भाग को जोतते हैं। इस प्रकार यदि हम 1950-51 से पूर्व की भूमि व्यवस्था की तुलना 1990-91 के साथ करें तो भूमि सुधारों के उपायों की दशा पिछले चार दशकों में सुधरी हुई प्रतीत नहीं होती है। वास्तव में इन वर्षों में भूमि के वितरण के तरीके बहुत अव्यवस्थित प्रतीत होते हैं। तालिका दो से भी यह देखा जा सकता है कि विभिन्न समूहों के औसत आकार की भूमि में समय के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं आया है। पिछले दो दशकों के कृषि सर्वेक्षणों में यद्यपि बड़े, सीमान्त एव छोटे खेतों का औसत आकार बढ़ा है जबकि मध्यम आकार के समूहों के खेतों में कमी आयी है। तालिका 3 विभिन्न राज्यों में सीमान्त, छोटे एव बड़े खेतों के औसत आकार को दर्शाती है। तालिका 4 और 5, 1970-71 से 1990-91 के दौरान विभिन्न राज्यों में कार्यान्वित जोतों के वितरण के तरीकों में बिखराव को दर्शाती है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के परिणाम (तालिका 6) भी समय के अनुसार मानिकों एव जोतों के केन्द्रीयकरण अनुपात की इसी प्रकार की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को दर्शाते हैं।

तालिका 1

भारत के समयानुसार भूमि के वितरण मे परिवर्तन

(प्रत्येक समूह-आकार के हिस्से का प्रतिशत)

वर्ष	सीमान्त किसान (एक हेक्टेयर से कम)		छोटे किसान (1-2 हेक्टेयर)		सम-मध्यम (2-4 हेक्टेयर)		मध्यम किसान (4-10 हेक्टेयर)		बड़े किसान (10 हेक्टेयर से अधिक)	
	सख्या	क्षेत्रफल	सख्या	क्षेत्रफल	सख्या	क्षेत्रफल	सख्या	क्षेत्रफल	सख्या	क्षेत्रफल
1950-51	38 4	6 0	21 7	10 2	19 2	18 2	15.3	31 6	5 4	34 0
1960-61	40 7	6 7	22 3	12 2	18 9	20 0	13 4	30 4	4 7	30 7
1970-71	50 6	9 0	19 1	11 9	15 2	18.5	11 2	29 7	3 9	30 9
1976-77	54 6	10 7	18 0	12 8	14 3	19 9	10 1	30 4	3 0	26 2
1980-81	56 4	12 1	18 1	14 1	14 0	21 2	19 1	29 6	2 4	23 0
1985-86	57 8	13 4	18 4	15 6	13 6	22 3	8 2	28 6	2 0	20 1
1990-91	59 0	14 9	19 0	17 3	13 2	23 2	7 2	27 2	1 6	17 4

तालिका 2

भारत मे कार्यान्वित जोतो के औसत आकार मे परिवर्तन

समूह आकार	औसत आकार					
	1960-61	1970 71	1976 77	1980 81	1985 86	1990 91
सीमान्त (एक हेक्टेयर से कम)	0 44	0 41	0 39	0 39	0 38	0 40
छोटे (1 2 हेक्टेयर)	1 47	1 44	1 42	1 44	1 43	1 44
सम मध्यम (2-4 हेक्टेयर)	2 84	2 81	2 78	2 78	2 76	2 76
मध्यम (4 10 हेक्टेयर)	6 10	6 08	6 04	6 04	5 94	5 90
बड़े (10 हेक्टेयर से अधिक)	17 48	18 07	17.57	17 41	17 20	17 33
कुल	2 69	2 30	2 00	1 84	1 69	1.57

तालिका 3

विभिन्न राज्यों मे सीमान्त, छोटे और बड़े जोतों के औसत आकार मे परिवर्तन

औसत आकार

		सीमांत		छोटी		बड़ी		सभी जोतों का औसत	
		1970 71	1990 91	1970 71	1990 91	1970 71	1990 91	1970 71	1990 91
1	आंध्र प्रदेश	0 44	0 45	1 44	1 43	17.87	25 61	2 31	1.51
2	असम	0 45	0 41	1 42	1 39	57.31	78 31	1 47	1 31
3	बिहार	0 40	0 37	1 40	1 41	17 50	15 99	1.50	0 93
4	गुजरात	0 52	0.53	1 47	1 47	15.56	16 41	4 11	2 93
5	हरियाणा	0 49	0 47	1 44	1.52	15 86	15 43	3 77	2 43
6	हिमाचल प्रदेश	0 38	0 41	1 48	1 36	23 78	18 11	1.53	1 20
7	जम्मू कश्मीर	0 41	0 39	1 46	1 38	18 75	23 00	0 94	0 83
8	कर्नाटक	0 51	0 47	1 45	1 46	16 44	15 22	3 20	2 13

9	केरल	0 23	0 18	1 31	1 36	46 67	55 74	0.57	0.33
10	मध्य प्रदेश	0 40	0 45	1.50	1 45	17 60	16 46	4 00	2 63
11	महाराष्ट्र	0 47	0 49	1 46	1 46	16 47	15 17	4 28	2 21
12	मणिपुर	0.53	0.55	1 18	1 37	14 04	12 16	1 15	1 23
13	मेघालय	0 70	0.54	1.50	1 32	10 70	14 25	1 70	1 76
14	नागालैंड	0 65	0 64	1 23	1 40	18 40	16 63	5 40	6 84
15	उड़ीसा	0.52	0 49	1.53	1 38	16 43	16 61	1 89	1.34
16	पजाब	0 44	0.56	1 43	1 61	15 49	16 03	2 89	3 61
17	राजस्थान	0 49	0 48	1 45	1 44	22 30	19 13	5 46	4 11
18	तमिलनाडु	0 42	0 36	1 42	1 41	16 94	18 44	1 45	0 93
19	त्रिपुरा	0 40	0 40	1 41	1.53	33 53	121.57	1 02	0 97
20	उत्तर प्रदेश	0 37	0 38	1 40	1 41	16 08	15 34	1 16	0 90
21	पश्चिम बगाल	0 43	0 45	1 38	1.53	64 20	156 99	1.20	0 90
	सकल भारत	0 40	0 40	1 44	1 44	18 15	17.33	2 28	1.57

तालिका 4

विभिन्न राज्यों में समयानुसार क्रियान्वित जोतों की संख्या में परिवर्तन

कुल क्रियान्वित जोतों की संख्या का प्रतिशत हिस्सा

	राज्य	सीमांत		छोटी		अर्ध-मध्यम		मध्यम		बड़ी	
		1970	1990	1970	1990	1970	1990	1970	1990	1970	1990
1	आंध्र प्रदेश	46.0	56.1	19.6	21.2	17.4	14.4	12.7	6.9	4.3	1.3
2	असम	57.0	60.0	23.8	22.6	14.0	13.4	4.8	3.8	0.4	0.2
3	बिहार	61.3	76.6	14.6	11.3	12.1	8.1	7.2	3.4	1.8	0.4
4	गुजरात	23.8	26.3	19.1	26.0	22.8	35.3	21.7	19.0	9.6	3.4
5	हरियाणा	27.4	40.7	18.9	19.9	22.5	20.0	21.1	14.5	8.1	3.0
6	हिमाचल प्रदेश	59.2	63.7	20.2	19.9	14.2	11.4	6.3	4.4	1.1	0.7
7	जम्मू कश्मीर	72.8	74.1	15.8	16.2	8.8	8.0	2.5	1.6	0.1	0.1
8	कर्नाटक	39.2	23.6	27.5	22.2	20.1	17.5	11.0	6.2	2.2	–
9	केरल	81.9	92.6	9.5	5.2	4.5	1.8	0.9	0.4	0.2	0.1
10	मध्य प्रदेश	31.8	37.3	16.8	22.8	20.1	20.7	20.0	15.3	9.3	3.8
11	महाराष्ट्र	25.1	34.6	17.7	28.8	22.0	22.4	24.8	12.4	12.4	1.8
12	मेघालय	36.8	31.5	34.6	29.8	21.1	26.9	4.3	7.6	0.2	0.6
13	उड़ीसा	41.3	53.6	32.9	26.2	13.3	15.0	9.1	4.7	1.4	0.4
14	पंजाब	37.6	26.5	18.9	18.3	20.4	25.9	18.0	23.4	5.0	6.0
15	राजस्थान	29.7	18.5	20.0	20.7	20.8	21.5	19.9	14.0	9.7	–
16	तमिलनाडु	58.8	73.1	20.9	15.9	13.1	7.7	6.1	2.9	1.1	0.4
17	उत्तर प्रदेश	66.8	73.8	17.2	15.5	10.6	7.7	4.7	2.7	0.7	0.2
18	पश्चिम बंगाल	60.0	71.8	22.3	17.6	11.2	7.3	4.4	1.3	0.1	0.02
	सकल भारत	50.9	59.0	18.9	19.0	15.0	13.2	11.4	7.2	3.8	1.6

तालिका 5

विभिन्न राज्यों में समयानुसार क्रियान्वित जोतों के क्षेत्र में परिवर्तन

कुल क्रियान्वित जोतो की संख्या के प्रतिशत हिस्से

		सीमांत		छोटी		अर्ध-मध्यम		मध्यम		बड़ी	
		1971	1991	1971	1991	1971	1991	1971	1991	1971	1991
1	आंध्र प्रदेश	8.0	16.4	11.3	19.6	19.2	25.2	30.8	26.1	30.7	12.8
2	असम	17.7	19.0	22.9	24.1	26.3	27.6	18.0	15.2	15.1	14.1
3	बिहार	16.0	30.3	13.6	17.1	22.1	23.8	27.6	21.0	20.7	7.7
4	गुजरात	3.0	4.8	6.8	13.0	16.0	24.4	37.8	38.9	36.5	18.9
5	हरियाणा	3.5	7.9	7.2	12.5	17.0	25.4	37.1	35.0	34.2	19.1
6	हिमाचल प्रदेश	14.5	21.5	19.0	22.5	25.7	25.7	23.7	20.4	17.1	9.9
7	जम्मू कश्मीर	32.1	34.2	24.6	26.8	26.1	26.0	14.7	10.7	2.5	2.3
8	कर्नाटक	4.8	8.7	10.7	18.7	19.4	26.0	33.4	30.6	31.7	16.0
9	केरल	34.4	48.8	22.7	21.1	21.1	14.1	9.3	6.3	12.5	9.7
10	मध्य प्रदेश	3.4	6.4	6.2	12.6	14.5	21.9	34.7	39.1	41.2	24.0
11	महाराष्ट्र	2.7	7.7	6.1	19.0	14.8	28.1	36.4	32.8	40.0	12.4
12	मेघालय	–	14.9	10.6	31.1	22.5	38.9	38.7	13.8	23.8	–
13	उड़ीसा	12.0	19.7	26.6	26.9	21.1	29.5	27.8	19.1	12.5	4.8
14	पंजाब	5.7	4.1	9.4	8.1	20.0	20.0	38.1	40.2	26.9	26.7
15	राजस्थान	2.2	3.5	4.9	7.0	11.0	14.4	24.7	30.2	52.2	44.9
16.	तमिलनाडु	17.1	28.3	20.5	24.0	24.8	22.6	24.6	17.6	13.0	7.7
17	उत्तर प्रदेश	21.1	31.4	20.8	24.4	25.0	24.4	23.2	16.9	9.0	3.9
18	पश्चिम बंगाल	21.5	36.5	25.7	30.0	28.9	28.4	29.2	7.5	4.7	5.6
	सकल भारत	9.0	14.9	11.9	17.3	18.5	23.2	29.7	27.2	30.9	17.4

तालिका 6

1971 से 1991 तक स्वामित्व और क्रियान्वित जोतो के केन्द्रियकरण अनुपात मे परिवर्तन

		स्वामित्व जोते			क्रियान्वित जोतें		
		1971	1981	1991	1971	1981	1991
1	आंध्र प्रदेश	0.732	0.736	0.740	0.606	0.599	0.592
2	असम	0.622	0.556	0.490	0.422	0.519	0.616
3	बिहार	0.719	0.686	0.653	0.556	0.606	0.656
4	गुजरात	0.683	0.696	0.703	0.540	0.558	0.576
5	हरियाणा	0.753	0.699	0.645	0.464	0.598	0.732
6.	हिमाचल प्रदेश	0.546	0.541	0.536	0.586	0.468	0.356
7	जम्मू कश्मीर	0.425	0.519	0.613	0.397	0.460	0.523
8	कर्नाटक	0.663	0.685	0.707	0.527	0.581	0.635
9	केरल	0.702	0.681	0.660	0.647	0.649	0.651
10	मध्य प्रदेश	0.621	0.647	0.673	0.533	0.535	0.537
11	महाराष्ट्र	0.687	0.697	0.712	0.526	0.571	0.616
12	मेघालय	0.476	0.480	0.484	0.383	0.436	0.489
13	उड़ीसा	0.645	0.614	0.583	0.501	0.526	0.551
14	पंजाब	0.776	0.767	0.758	0.418	0.702	0.986
15	राजस्थान	0.607	0.616	0.625	0.564	0.604	0.644
16	तमिलनाडु	0.751	0.756	0.760	0.516	0.640	0.764
17	त्रिपुरा	0.539	0.609	0.879	0.472	0.547	0.622
18	उत्तर प्रदेश	0.631	0.604	0.577	0.495	0.565	0.635
19	पश्चिम बंगाल	0.672	0.633	0.594	0.490	0.597	0.704
	समस्त भारत	0.710	0.713	0.716	0.586	0.629	0.672

तालिका 7

विभिन्न राज्यों में भूमिहीन श्रमिकों के अनुपात में परिवर्तन

		भूमिहीन श्रमिकों का अनुपात		
		1971 72	1981	1987-88
		कुल	कुल	कुल
1	आध्र प्रदेश	46 6	11 9	15.30
2	असम	25 0	7.5	2.50
3	बिहार	4.3	4 1	12.0
4	गुजरात	13 4	16.8	27.3
5	हरियाणा	11 9	6 1	7.5
6	हिमाचल प्रदेश	4 4	7 7	8.8
7	जम्मू-कश्मीर	1.0	6.8	3 4
8	कर्नाटक	13 7	12.6	7 7
9	केरल	15 7	12.8	5.3
10	मध्य प्रदेश	9.6	14 4	13 1
11	महाराष्ट्र	10 4	21.2	27 0
12	मणिपुर	5.8	2.1	0.6
13	उड़ीसा	10 6	7 7	5 1
14	पजाब	7 1	6 4	27.5
15	राजस्थान	8 1	9 7	7.5
16	तमिलनाडु	17.0	19 1	20.3
17	त्रिपुरा	11 4	14 9	9 1
18	उत्तर प्रदेश	4 6	4 9	11.5
19	पश्चिम बगाल	9.8	16.2	13 4
सकल भारत		9 6	11.3	14 4

भूमिहीनों की संख्या में वृद्धि

हाल ही के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के दौर के अनुसार, भूमिहीन मजदूरों की सख्या 1971-72 में 9.6 प्रतिशत से बढकर 1987 88 में 14 4 प्रतिशत हुई। तालिका 7 यह दर्शाती है कि 1981 से 1987 के दौरान भूमिहीनों का अनुपात कुछ राज्यों जैसे असम, जम्मू कश्मीर, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, मणिपुर, उडीसा, त्रिपुरा और पश्चिमी बगाल में कम हुआ है। अन्य सभी राज्यों में भूमिहीनों के अनुपात में थोडी बढोत्तरी हुई है। आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पजाब और तमिलनाडु जैसे राज्यों में 10 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण व्यक्तियों के पास अपनी भूमि नहीं है। हाल ही के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आकडे यह प्रकट करते हैं कि पुरुष श्रमिकों का कुल ग्रामीण श्रम में अनुपात 1972 73 में 22 प्रतिशत से बढकर 1987 88 में 31 4 प्रतिशत हो गया है और महिला श्रमिकों में 31 4 प्रतिशत बढकर 1992 93 में 35.5 प्रतिशत हो गया है। यदि

यही प्रवृत्ति जारी रही तो ग्रामीण जनसंख्या में अधिक संख्या सीमान्त किसानों और भूमिहीनों की होगी। इनमें खेतिहर मजदूर शामिल हैं। छोटे और मध्यम किसान 32 प्रतिशत के लगभग हैं जो कि कुल भूमि के 41 प्रतिशत भाग पर खेती करते हैं। वास्तव में यह छोटे और मध्यम किसानों का भूमि के साथ लगाव है जो कि कृषि को कुशलता के अपेक्षाकृत ऊंचे स्तर पर बनाये रखता है और यह पूंजीवादी कृषि की वृद्धि को रोकता है। भूमि सुधार कानून इस दिशा में निष्प्रभावी रहे हैं।

छोटे किसानों का आर्थिक भविष्य और स्थिरता

कृषि ढांचे में छोटे लेकिन कुशल कृषि परिवारों को पहले से ही प्राप्त प्रमुखता को मद्देनजर रखकर छोटी जोतों का आर्थिक भविष्य एवं स्थिरता को सुनिश्चित करना आवश्यक है। हाल ही के हमारे सर्वेक्षण के परिणाम, जिनमें देश के आठ चुने हुए जिले जैसे अनन्तपुर और पश्चिमी गोदावरी (आन्ध्र प्रदेश), भागलपुर और पटना (बिहार), भिवानी और करनाल (हरियाणा) और श्रीगंगानगर और बीकानेर (राजस्थान) दिखाते हैं कि छोटे और मध्यम किसान बड़े और सीमान्त किसानों की अपेक्षा प्रति इकाई भूमि का ज्यादा उत्पादन करते हैं। फिर भी हरियाणा के करनाल और आन्ध्र प्रदेश के पश्चिम गोदावरी जिले को छोड़कर किसान अन्य जिलों में निर्धनता की रेखा से नीचे जीवन बसर कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में छोटे किसान केवल उन क्षेत्रों में समृद्ध हैं जहां सिंचाई व्यवस्था उपलब्ध है और उनमें आधुनिक टेक्नोलाजी अपनाने की क्षमता है। इसके अतिरिक्त वे छोटे किसान भी आर्थिक रूप से ठीक हैं जो फल, सब्जियां उगाते हैं और वृक्षारोपण करते हैं। इनसे खाद्य फसलों की अपेक्षा ज्यादा और स्थिर आय प्राप्त होती है।

वास्तव में यह छोटे और मध्यम किसानों का भूमि के साथ लगाव है जो कि कृषि कि कुशलता को अपेक्षाकृत ऊंचे स्तर पर बनाये रखता है और यह पूंजीवादी कृषि की वृद्धि को रोकता है। भूमि सुधार कानून इस दिशा में निष्प्रभावी रहे हैं।

कृषि से लाखों सीमान्त एवं छोटे किसानों का निर्वाह सम्भव नहीं रहा है। इसलिए छोटे किसानों को गैर-कृषि कार्यों में भी रुचि लेनी चाहिए। अभी तक उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि मजदूरों का अनुपात 1981 में 18.9 प्रतिशत से सिर्फ थोड़ा-सा बढ़कर 1991 में 19.8 प्रतिशत हो गया है।

निष्कर्ष

भारत में पूंजीवादी कृषि के धीमे विकास को देखते हुए आने वाले वर्षों में छोटे और सीमान्त किसानों की कृषि क्षेत्र में प्रमुख भूमिका होगी। इसलिए छोटे किसानों की स्थिरता को बनाये रखने के लिए उचित तकनीक तथा संस्थागत और नीति परिवर्तन की आवश्यकता है। इस संदर्भ में निम्नलिखित बातें सहायक हो सकती हैं—

1 भारतीय कृषि अनुसधान परिषद के राष्ट्रीय प्रदर्शों के परिणाम यह दिखाते हैं कि देश के विभिन्न भागों में तक्नीकी सुधार द्वारा उत्पादन बढाया जा सकता है। छोटे किसानों को ज्यादा धन राशि उपलब्ध करा कर टेक्नोलाजी के खालीपन को दूर किया जा सकता है। इसलिए सिंचाई एव गैर सिंचाई वाले क्षेत्रों में टेक्नोलाजी के खालीपन को पहचानने और उसे पूरा करने के लिए तथा शुष्क एव वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उचित टेक्नोलाजी के विकास को भविष्य में कृषि विकास के ढाचे में सर्वोच्च वरीयता दी जानी चाहिए।

2 भूमि पर जनसख्या के बढते हुए दबाव से छोटे और बडे किसानों के खेतों का औसत क्षेत्र कम होगा। भूमि के मौलिक पुनर्वितरण द्वारा सीमान्त किसानों की भूमि का क्षेत्र बढाया जा सकता है। दिसम्बर 1994 के आकडों के अनुसार भूमि सीमा कानून से प्राप्त एक लाख एकड भूमि या तो मुकद्दमेबाजी में फसी है या उसे जनहित के लिए सुरक्षित कर दिया गया है। देश में बजर भूमि भारत के कुल भोगोलिक क्षेत्र के 20 प्रतिशत के बराबर है जिसे भूमिहीनों में बाटा जा सकता है। उसका उपयोग खेती, कृषि वानिकी या सामाजिक वानिकी के लिए किया जा सकता है। देश में 1.5 करोड हेक्टेयर परती भूमि है जिसे खेती योग्य बनाया जा सकता है और 2.6 करोड हेक्टेयर अन्य परती भूमि है। इसे अधिग्रहीत करके सीमात किसानों और भूमिहीन मजदूरों में वितरित किया जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार एक हेक्टेयर परती भूमि को खेती योग्य बनाने में 5486 रुपये की लागत आती है। इस प्रकार 22 हजार करोड रुपये के पूजी निवेश से 6.2 करोड सीमात किसानों को एक-एक हेक्टेयर भूमि दी जा सकती है।

भारत में पूजीवादी कृषि के धीमे विकास को देखते हुए आने वाले वर्षों में छोटे और सीमात किसानों की कृषि क्षेत्र में प्रमुख भूमिका होगी। इसलिए छोटे किसानों की स्थिरता को बनाये रखने के लिए उचित तक्नीक तथा सस्थागत और नीति परिवर्तन की आवश्यकता है।

3 जीवन निर्वाह के लिए छोटे और सीमात किसानों को ज्यादा कीमत वाली फसलें जिनमें बागवानी, सब्जिया, रेशम के कीट पालन, कृषि वानिकी, मछली पालन आदि शामिल हैं, का उत्पादन करना चाहिए। केरल के अन्दर छोटे किसानों का महत्व इसलिए है क्योंकि वे उच्च मूल्य वाली फसलों का उत्पादन करते हैं। छोटे किसान अपनी उपज में विविधता ला सकें इसके लिए उन्हें टेक्नालाजी प्रशिक्षण, पूजी, बाजार, परिवहन और दूसरी सुविधाए दी जानी चाहिए।

4 भारत में कृषि क्षेत्र पर बढती हुई जनसख्या के दबाव को देखते हुए यह जरूरी है कि छोटे किसान अपनी उपज में विविधता लाए और गैर कृषि कार्य भी करें परन्तु ऐसी विविधता लाने के लिए छोटे किसानों का कृषि उद्योगों, कृषि सबधी व्यापार,

कृषि वस्तुओं के संसाधन और सेवाओं में निवेश जरूरी है। इसके लिए ठेके की ऐसी कृषि, जिसमें छोटे किसानों को भूमि के स्वामित्व की सुरक्षा बनी रहे, सहायक सिद्ध हो सकती है। इस प्रयास में सरकार के अलावा निजी क्षेत्र, किसानों की सहकारी समितियां और स्वयंसेवी संगठन भी सहायता दे सकते हैं। □

26

बाल श्रमिक व्यवस्था खत्म करना एक चुनौती

संगीता शर्मा

विश्व व्यापार सगठन बनने के बाद से विकसित व विकासशील देशों के बीच विवाद का सबसे बडा मुद्दा सामाजिक परिवेश बन गया है, जिसमें बाल मजदूरी भी शामिल है। विकसित देशों में इस समस्या पर एक सीमा तक काबू पा लिया गया है लेकिन विकासशील देश अब भी इस समस्या से जूझ रहे हैं। भारत भी उन्ही विकासशील देशों में से एक है जहा बाल मजदूरी की समस्या बडे पैमाने पर विद्यमान है लेकिन भारत इस समस्या से निपटने के लिए निरतर प्रयासरत है। लेखिका ने इनसे जुडी कुछ समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित कराया है।

भारत में बाल मजदूरी की प्रथा बहुत पुरानी है। इसकी शुरुआत गुलामी के दिनों में ही हो गई थी। उस समय कृषि आदि कार्यों के लिए बाल श्रम का काफी प्रयोग किया जाता था। बाद में जब उद्योग धधे खुलने प्रारभ हुए तो उद्योगों में बाल श्रम का उपयोग होने लगा और धीरे-धीरे उनकी स्थिति बधुआ मजदूरों की सी हो गई। यह सिलसिला आज भी चला आ रहा है। आज हालाकि विभिन्न उद्योगों में बाल बधुआ मजदूरों की सख्या में तो कमी आई है किंतु विभिन्न उद्योगों में बाल मजदूरों की सख्या में कमी नही आई है। भारत के हर कोने, हर गाव, कस्बे व शहर सभी जगह बाल मजदूर काम कर रहे हैं और सरकारी तथा गैर सरकारी सगठनों के लाख प्रयासों के बावजूद बाल मजदूरी पर अभी तक काबू नही पाया जा सका है।

सरकारी आकडों के अनुसार इस समय भारत में करीब दो करोड बाल-श्रमिक हैं, जबकि गैर-सरकारी आकडों के अनुसार बाल-श्रमिकों की सख्या इससे कही अधिक है। बडौदा के आर्गेनाइजेशनल रिसर्च ग्रुप के अनुसार देश में 4 करोड 40 लाख बाल श्रमिक हैं जबकि सेंटर फार कन्सर्न ऑफ चाइल्ड लेबर के अनुसार भारत में बाल-मजदूरों की सख्या 10 करोड है। स्वयसेवी सगठनों का एक समूह बाल श्रमिकों की सख्या साढे पाच करोड बताता है। बाल श्रमिकों की सख्या चाहे 10 करोड हो या पाच करोड, लेकिन इतना निश्चित है कि इनकी सख्या है करोडों में और विश्व में सबसे ज्यादा बाल श्रमिक भारत में ही हैं। इनमें लडके लडकिया दोनों ही हैं।

बाल श्रमिक कौन और क्यों ?

किसी उद्योग, खान, कारखाने आदि में 14 वर्ष से कम आयु के मानसिक व शारीरिक श्रम करने वाले बच्चे बाल श्रमिक कहलाते हैं। हालांकि संविधान के अनुच्छेद 24 में स्पष्ट रूप से लिखा है कि 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों से खानों अथवा कारखानों में काम नहीं कराया जाएगा, खासकर ऐसा काम तो बिल्कुल ही नहीं, जो उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता हो। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि इस कानून का सरेआम उल्लघन हो रहा है। हाल ही में समाचार-पत्रों में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है जिसमें बताया गया है कि पश्चिम बगाल, उडीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक इन ग्यारह राज्यों में खतरनाक समझे जाने वाले उद्योगों में भारी सख्या में बाल श्रमिक काम कर रहे हैं और इमसे उनके स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड रहा है।

अब सवाल यह उठता है कि जब बाल मजदूरी खत्म कराने के लिए कई योजनाए बनाई गई हैं और सरकारी तथा कई गैर-सरकारी सगठन बाल-श्रमिक श्रम को खत्म करने के लिए काम कर रहे हैं तो बाल श्रमिकों की समस्या खत्म क्यों नहीं हो रही है और इनकी सख्या में लगातार इजाफा क्यों हो रहा है? तो इसका प्रमुख कारण सरकारी नीतियों का सही ढग से पालन न हो पाना तो है ही, सबसे बडा कारण हमारे यहा की सामाजिक आर्थिक परिस्थितिया हैं जो बच्चों की छोटी उम्र में ही मेहनत-मजदूरी करने के लिए विवश कर देती हैं। इसलिए जब तक उन सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन नहीं होगा तब तक बाल मजदूरी को खत्म कर पाना असभव होगा।

सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां

गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा और बढती जनसंख्या, ये भारत की प्रमुख समस्याए हैं। एक गरीब आदमी के सामने सबसे पहली समस्या पेट भरने की होती है। इसलिए जैसे उनके बच्चे अपने पाव पर खडे होकर चलना शुरू करते हैं यानि पाच-छह साल के होते हैं वे उन्हें कमाने-खाने के लिए कहीं न कहीं भेज देते हैं। यानि जिस उम्र में एक सामान्य परिवार का बच्चा पढना शुरू करता है उसी उम्र में एक गरीब परिवार का बच्चा मेहनत-मजदूरी करना शुरू कर देता है। कई बार सरकार द्वारा दबाव डालने या स्वैच्छिक सगठनों द्वारा समझाने पर कई लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजना शुरू कर भी देते हैं तो वे लोग तीसरी-चौथी कक्षा में ही उनकी पढाई अधूरी छुडाकर उन्हें काम पर लगा देते हैं। इस तरह अधिकाश बाल मजदूर या तो निरक्षर ही रह जाते हैं या तीसरी-चौथी कक्षा तक ही पढ पाते हैं। राष्ट्रीय श्रम सस्थान द्वारा पाच शहरों में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार बम्बई में कुल बाल श्रमिकों में 59 प्रतिशत बच्चे तो कभी स्कूल गए ही नहीं, 30 प्रतिशत बच्चों ने पढाई बीच में छोड दी। केवल 11 प्रतिशत बाल श्रमिकों ने ही पढाई जारी रखी है। कलकत्ता में 84 प्रतिशत बाल श्रमिक निरक्षर हैं।

15.7 प्रतिशत बच्चे पाचवीं कक्षा तक पढ़ाई जारी रखते हैं और केवल 0.3 प्रतिशत बच्चे ही पाचवीं कक्षा से ऊपर पढाई करते हैं। जबकि मद्रास, हैदराबाद, कानपुर इन तीनों ही राज्यों में अधिकाश बाल श्रमिक निरक्षर पाए गए। देश के अधिकाश भागों में बाल श्रमिकों की शिक्षा के मामले में यही स्थिति है और ज्यादातर बाल श्रमिक अशिक्षित ही हैं। इन बच्चों के अशिक्षित रह जाने से दो तरह के कुप्रभाव पडते हैं—एक तो अशिक्षित रह जाने के कारण ये लोग जीवन भर केवल मजदूरी ही करते रह जाते हैं। भविष्य में न तो ये लोग कहीं अच्छी जगह काम कर पाते हैं, न ही इनका जीवन स्तर सुधर पाता है दूसरे कि इससे देश की तरक्की में भी बाधा पहुचती है और कुपोषण, अधिक जनसख्या जैसी समस्याए जो सिर्फ शिक्षा के द्वारा ही दूर हो सकती हैं उन समस्याओं पर काबू पाना भी कठिन हो जाता है।

वैसे बहुत से लोगों का मानना है कि बाल-श्रमिकों की समस्या गरीबी के कारण नहीं है बल्कि गरीबी की समस्या बाल श्रमिकों के कारण है क्योंकि जहा बाल श्रमिक ज्यादा हैं वहीं गरीबी भी ज्यादा है। इन लोगों का मानना है कि यदि इन बाल श्रमिकों को शिक्षित किया जाए तो बाल मजदूरी पर काबू पाया जा सकता है। कारण भले ही कुछ भी हो लेकिन इतना निश्चित है कि बाल श्रमिक व गरीबी के बीच गहरा सबध है।

वैसे बाल श्रमिकों को बढावा देने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उन उद्योगपतियों, कारखानेदारों और ठेकेदारों की है जो जवान लोगों को बजाए छोटे बच्चों को कामधधे पर लगाना चाहते हैं क्योंकि एक तो ये छोटे बच्चे आधी या एक चौथाई मजदूरी में ही काम कर लेते हैं दूसरे गदे और असुविधाजनक वातावरण में चुपचाप घटों काम कर लेते हैं। हालाकि इस बारे में बहुत से लोगों का तर्क यह है कि वे छोटे बच्चों को काम पर इसलिए लगाते हैं क्योंकि उनके हाथ में वह हुनर होता है जो हस्तशिल्प की बारीकियों को पूरा कर सकता है। किन्तु यह इतना असगत तर्क है कि इस पर विचार करना ही बेकार है।

अब सवाल यह उठता है कि ये बाल श्रमिक क्या काम करते हैं किन उद्योगों में इनकी सख्या ज्यादा है और सरकार ने बाल श्रमिकों के लिए क्या क्या योजनाए तथा कानून बनाए हैं। वैसे तो बाल श्रमिकों में खेती का काम करने वाले बच्चों, घरों, चाय, ढाबों, दुकानों आदि में काम करने वाले बच्चों, कूडा बीनने वाले बच्चों तथा भवन निर्माण, सडक निर्माण आदि काम में लगे बच्चों को भी रखा जा सकता है किंतु यहा हम केवल उद्योगों में काम करने वाले बच्चों को बाल श्रमिकों की श्रेणी में रखते हुए उन उद्योगों की चर्चा करते हैं जिनमें उनकी सख्या ज्यादा है। राष्ट्रीय श्रम सस्थान के अनुसार ये हैं—

(1) शिवाकाशी तमिलनाडु में माचिस तथा आतिशबाजी उद्योग

(2) सूरत, गुजरात में हीरे पर पॉलिश करने वाला उद्योग

(3) जयपुर, राजस्थान में कीमती पत्थर पर पॉलिश करने वाला उद्योग
(4) फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश में कांच उद्योग
(5) मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश में पीतल उद्योग
(6) उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर, भदोही में हाथ से बनाने वाले गलीचा उद्योग
(7) उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ का ताला उद्योग
(8) जम्मू-कश्मीर का हाथ से बुनने वाला कालीन उद्योग
(9) मध्य प्रदेश में मदसौर स्लेट उद्योग
(10) आंध्र प्रदेश में मर्कापुर में स्लेट उद्योग

इन सभी उद्योगों में काम करने वाले बाल श्रमिकों की संख्या लाखों में है—इनके अलावा कुछ ऐसे उद्योग भी हैं जिनमें हजारों बच्चे काम में लगे हुए हैं। राष्ट्रीय श्रम संस्थान के आंकड़ों के अनुसार खुर्जा के पोटरी उद्योग में पांच हजार, तमिलनाडु के हौजरी उद्योग में आठ हजार, महाराष्ट्र भिवंडी के पावरलूम उद्योग में पन्द्रह हजार, केरल के नारियल रेशा उद्योग में बीस हजार, लखनऊ में जरी के काम में पैंतालीस हजार, कांच की खान मेघालय में अट्ठाईस हजार बाल श्रमिक काम कर रहे हैं।

इनके अलावा भी पूरे देश में कितने ही उद्योग हैं जिनमें बाल श्रमिकों की संख्या हजारों में है ये बाल श्रमिक किसी भी उद्योग में काम करते हों मगर सब जगह उनकी हालत एक जैसी है। सभी जगह ये बच्चे 10 से 12 घंटे प्रतिदिन काम करते हैं और बदले में उन्हें प्रतिमाह कुल तीन सौ या चार सौ रुपये तक ही मिलते हैं। जबकि उन्हीं उद्योगों में काम कर रहे वयस्क लोगों को 600-700 रुपये मिलते है। इस तरह हर जगह इनका भरपूर शोषण होता है। कोई भी उद्योग ऐसा नहीं है जहां काम करने पर इन बच्चों को भयंकर रोग जैसे टी.बी., कैंसर, सांस की बीमारी, चर्म रोग, आंखों की रोशनी कम होना, जोड़ों में दर्द, बेहोशी, चर्म रोग, नक्रोसिस (चेहरा विकृत होना) फोटोफोबिया, दमा आदि बीमारियां न होती हों। अगर ये इन बीमारियों से बच भी जाते हैं तो इन्हें खांसी, सर्दी की शिकायत, शरीर में दर्द और भूख न लगने जैसी शिकायतें तो हो ही जाती हैं।

सबसे दुखद बात यह है कि जिन उद्योगों में काम करने से इन्हें बीमारियां होती हैं वहां इन्हें किसी तरह की चिकित्सीय सुविधा नहीं मिल पाती है। बल्कि बीमारी की हालत में ये बच्चे अगर एक-दो दिन काम पर भी नहीं जाते हैं तो ठेकेदार इनके पैसे तक काट लेता है। सुबह से शाम तक काम करने वाले इन बच्चों को खाने में भी सूखी रोटी के सिवाय कुछ नहीं मिलता है। यानि इनका एक तरफ से नहीं हर तरफ से शोषण होता है। ये बीमार मजदूर जब जवान होते हैं तो बीमारी, गरीबी और भुखमरी से इनके कंधे पहले ही इतने झुक जाते हैं कि देश या समाज का बोझ उठाना तो दूर अपने परिवार का बोझ भी नहीं उठा पाते हैं।

भारत सरकार शुरू से ही बाल श्रम की व्यवस्था को खत्म करने के लिए प्रयत्नशील रही है और इसके लिए कानून भी बनाए गए हैं साथ ही सरकार बाल श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिए भी काम करती रही है। बाल मजदूर जैसी विकट समस्या की तरफ सबसे पहले ब्रिटिश सरकार का ध्यान गया था। पहले 1938 में राष्ट्रीय कांग्रेस तथा समाज सुधारकों द्वारा माग करने पर ब्रिटिश सरकार ने बाल मजदूर अधिनियम बनाया जिसमें 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों को कल कारखानों में रखने पर रोक लगा दी किंतु यह कानून बहुत ही प्रभावी ढग से लागू नहीं हुआ और बाल श्रमिकों की सख्या कम होने की बजाए बढ़ने लगी। इसके बाद 1946 में कोयला अभ्रक कानून, 1951 में चाय, काफी व रबड़ के बागानों में कार्यरत श्रमिकों के सरक्षण से सबधित अधिनियम, 1952 में खान कानून, 1959 में श्रम नियोजन अधिनियम, 1976 में बधुआ श्रमिक मुक्ति अधिनियम बनाए और समय समय पर पुराने कानूनों में भी परिवर्तन किया गया ताकि बाल मजदूरी की प्रथा निर्बाध रूप से आज तक जारी है।

1986 में बाल मजदूर प्रतिबध व नियमन कानून बनाया गया जिसमें खतरनाक उद्योगों में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के काम करने पर रोक लगा दी गई। 1987 में राष्ट्रीय बाल श्रम नीति बनाई गई जिसके अन्तर्गत बाल श्रमिकों को शोषण से बचाने, उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरजन तथा सामान्य विकास कार्यक्रमों पर जोर देने की व्यवस्था की गई।

इसमें 1974 में राष्ट्रीय बाल नीति प्रस्ताव में पारित विचारों को और अधिक विकसित रूप में रखा गया। जिसमें उनके लिए जगह-जगह औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र खोलने तथा समय समय पर उनके स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए स्वास्थ्य केन्द्र खोलने की व्यवस्था की गई। इस अधिनियम में सबसे अधिक बल इस बात पर दिया गया कि सरकार बच्चों के साथ मजदूरी की दर मे होने वाले भेदभाव को खत्म करेगी और बच्चों को भी वयस्कों जितनी मजदूरी देने का कानून बनाएगी।

इसके अलावा विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं में भी सरकार ने बाल श्रमिकों के उत्थान के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए। सातवीं पचवर्षीय योजना में बाल श्रमिकों के शोषण को रोकने तथा रोजगार से च्युत बच्चों के शोषण को रोकने तथा रोजगार से च्युत बच्चों के पुनर्वास के लिए कई कार्यक्रम शुरू किये, जिन्हें आठवीं पचवर्षीय योजना में भी चालू रखा गया। नियोजन से हटाये गये बच्चों की अनौपचारिक शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, अनुपूरक पोषण आहार, स्वास्थ्य देख-रेख जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विशेष परियोजनाए शुरू की गईं। 1992 93 के दौरान इन परियोजनाओं पर 1 09 करोड रुपये खर्च किए गए। 2 अक्तूबर, 1994 को केन्द्रीय सरकार ने खतरनाक उद्योगों में बाल श्रम को समाप्त करने के लिए 850 करोड रुपये की एक और योजना शुरू की। इसके अलावा इसी वर्ष 13 सितम्बर को तत्कालीन प्रधानमत्री पी वी नरसिह राव की अध्यक्षता

में एक बैठक होने जा रही है जिसमें 100 जिलों के जिलाधिकारी भाग लेंगे। इसमें बाल मजदूरी मिटाने के लिए स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कार्य योजना तैयार की जाएगी। इस समय आठ राज्यों में राष्ट्रीय बाल श्रमिकों के लिए स्कूल तथा स्वास्थ्य केन्द्र खोले गए हैं। अब इस परियोजना को व्यापक स्तर पर पूरे देश में शुरू किया जाएगा। बाल मजदूरी को समाप्त करने के लिए 1995-96 में 34 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

सरकार के अलावा कई गैर-सरकारी स्वैच्छिक संगठन भी बाल श्रम मजदूरी की प्रथा दूर करने तथा उन्हें शोषण से बचाने के लिए प्रयत्नशील हैं। इन संगठनों को यूनीसेफ, अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसियों तथा भारत सरकार द्वारा सहायता मिलती है। हाल ही में एक स्वयंसेवी संगठन ने "बचपन बचाओ आंदोलन" शुरू किया गया तथा कुछ खतरनाक उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों को वहां से निकाला।

बाल श्रमिकों की समस्या का हल यह भी है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के इतने अवसर सुलभ कराए जाए कि लोगों को काम की कमी न रहे तथा उन्हें इतनी मजदूरी दी जाए कि अपने बच्चों की शिक्षा भी दे सके व उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति भी कर सकें। साथ ही बाल श्रमिकों को काम से हटाने के बाद उनके पुनर्वास की ओर भी विशेष ध्यान देना होगा। बाल श्रमिक व्यवस्था को खत्म किए बिना यह देश तरक्की नहीं कर सकता है। □

27

हमारी अर्थव्यवस्था का स्वरूप भविष्य में कैसा हो सकता है ?

श्रीपाद जोशी

20वीं सदी का अंतिम दशक आर्थिक परिवर्तनों की दृष्टि से बडा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा है। इस दशक की सबसे बडी घटना समाजवादी देशों का मसीहा रूस के समाजवादी किले का धराशायी होना है। इसके प्रभाव अन्य समाजवादी देशों की अर्थव्यवस्था पर हुए हैं। आज से एक दशक पूर्व अपने आपको समाजवादी कहकर गौरव अनुभव करने वाले देश अब खुली या पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को अपनाने में प्रयासरत हैं।

इसे सयोग कहे या पूर्व में भारत में अपनाई गई आर्थिक नीति की विफलताए, कि भारत सरकार को भी 1991 से अपनी आर्थिक नीतियों में भारी परिवर्तन करना पडा। और तब से आज तक सरकार देश में उत्पादन वृद्धि के साथ साथ आर्थिक गति की दर को बढाने के लिये एक के बाद एक कदम उदारीकरण की दिशा में उठाती रही है। इस नीति के अनुकूल प्रभाव अर्थव्यवस्था पर किस प्रकार हुए हैं, यह अभी भविष्य के गर्भ में छुपा है। परन्तु 1995 के प्रारभ में हुए आध्रप्रदेश तथा कर्नाटक, गुजरात और महाराष्ट्र में हुए चुनावों में पूर्व में सत्तासीन राजनैतिक पार्टी की विफलता का एक कारण उदारीकरण होना भी बताया जा रहा है। 1991 से 1994 तक की अवधि में भुगतान सतुलन की स्थिति में सुधार, विदेशी विनिमय कोषों में वृद्धि, कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के साथ साथ तीन मसलों में इस नीति की सफलता सदेहास्पद बताई जाती है—वह है बढती हुई मुद्रास्फीति की दर बेरोजगारी में वृद्धि तथा गरीबों की सख्या में हुई वृद्धि। इसी सदर्भ में बजट पूर्व सर्वेक्षण के कुछ तथ्यों को उद्धृत करना उचित होगा।

1995 96 के बजट पूर्व आर्थिक सर्वेक्षण में बढते राजकोषीय घाटे और मुद्रास्फीति पर चिंता व्यक्त की गई है। सर्वेक्षण में अर्थव्यवस्था के उज्ज्वल पक्ष की चर्चा करते हुए आर्थिक सुधारों को एक महत्वपूर्ण जीन कहा जा सकता है। पिछले चार वर्षों में यह वृद्धि सर्वाधिक है। सर्वेक्षण में कहा गया है कि अर्थव्यवस्था में स्थिरता और रोजगार में वृद्धि अच्छी रही है। निर्यात में वृद्धि की चर्चा भी की गई है और इस बात पर जोर दिया

गया है कि निर्यात में वृद्धि बनी रहे। व्यापार संतुलन के लिये सीधे विदेशी निवेश का सुझाव है।

सर्वेक्षण में कुछ और महत्त्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया गया है। ये हैं कृषि क्षेत्र में सुधार का अभाव, छोटे किसानों के लिये समर्थन कार्यक्रमों में कमी, मजबूत ग्रामीण ऋण का अभाव। सच तो यह है कि अंधाधुंध औद्योगीकरण की दौड़ में हमने कृषि, जो महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, को उचित वरीयता नहीं दी है। प्रतिस्पर्धा के बारे में सर्वेक्षण में एक बहुत अच्छी बात कही गई है। माना गया है कि एकाधिकारात्मक व्यवहार का सबब प्रतिस्पर्धा हो। सच तो यह है कि आर्थिक सुधारों का मूलमंत्र स्वस्थ प्रतिस्पर्धा है।

स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के लक्ष्य को अमरीका तथा विकसित राष्ट्रों ने बड़ी सीमा तक हासिल कर लिया है। अत: स्वयं के हित के लिये वे विश्व में खुली प्रतिस्पर्धा का प्रचार कर रहे हैं तथा साम, दाम, दंड, भेद सभी प्रकार के उपायों को अपनाकर विकसित देशों को यह समझा रहे है कि खुली प्रतिस्पर्धा ही विकास की कुंजी है।

खुली अर्थव्यवस्था के लिये आर्थिक सुधारों को अपनाकर उन्नति करने वाले देशों में एशिया के कई देशों का उल्लेख किया जा सकता है जिनमें जापान का स्थान प्रमुख है। इनके अतिरिक्त सिंगापुर, फिलीपिन्स, द. कोरिया आदि लगभग 10-12 देशों के नाम गिने जा सकते हैं। इन देशों ने अपने देश में आर्थिक विकास दर में वृद्धि करते हुए जनता के जीवनस्तर को भी ऊपर उठाया है। परन्तु ये देश आकार और क्षेत्र के मामले में बहुत-छोटे हैं। अत: जनसंख्या वृद्धि और गरीबी की गंभीर समस्या भारत और चीन के समान कहीं नहीं है।

भारत एक विकासशील देश है जिसके समक्ष अनेक समस्यायें विकराल रूप में खड़ी हैं। इन्हें हल करते हुए विकास दर में वृद्धि द्वारा आर्थिक जीवन के स्तर को ऊंचा उठाना भारत की सबसे बड़ी समस्या है।

हाल ही में एक विकासशील देश मैक्सिको जो पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक सुधारों के द्वारा खुली अर्थव्यवस्था को अपनाने में प्रयासरत रहा है, की कहानी की चर्चा भारत के संदर्भ में उद्‌बोधक होगी। आर्थिक खुलेपन के पंख लगाकर जब कोई विकासशील देश उड़ने का प्रयास करे तो उसका क्या हाल होगा इसका उदाहरण मैक्सिको ने पेश किया है। उसके अभूतपूर्व मुद्रा संकट ने दुनिया के मसीहा अमेरिका और विश्व बैंक के समक्ष बड़ा संकट खड़ा कर दिया है। जनवरी माह में पश्चिम के अखबार मैक्सिको की सुर्खियों से रंगे रहे। अमरीका संकट का अजड़ा पलट गया। अत: मुद्राकोष के श्रेष्ठ अर्थशास्त्री ऐसी व्यवस्था करने के लिये प्रयासरत हो गये कि मैक्सिको के मंदी का संकट अर्जेन्टीना, कनाडा, इटली, फ्रांस और स्पेन पहले से चरमराए मुद्रा बाजारों को अपनी चपेट में न लें।

एक दिसम्बर को जब राष्ट्रपति कार्लोस सालिनास ने सत्ता को अलविदा कहकर नए

राष्ट्रपति अर्नेस्टो जेडिलो के हाथ में देश की कमान सौंपी थी, तो उस समय मैक्सिको मुक्त बाजार के जरिये समृद्धि जुटाने की एक गुलाबी मिसाल था। अलास्का से अर्जेंटीना तक एक मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने के अमरीका मिशन "नाफ्टा" (उत्तर अमरीका मुक्त व्यापार समझौता) का वह गर्वीला सदस्य था और दिसंबर के पहले पखवाड़े में मियामी में होने वाले लेटिन अमरीका शिखर व्यापार सम्मेलन में उसने अग्रणी भूमिका निभाई थी। लातिन अमरीकी देशों की सबसे बड़ी दुश्मन मुद्रास्फीति भी 10 से 12 प्रतिशत पर काबू में थी। पूंजीबाजार विदेशी निवेश से लबालब भरा हुआ था और लगभग 3200 डॉलर के प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पादन के साथ मैक्सिको दुनिया को इस बात का कायल करने में सफल था कि अब वह एक विकसित देश बन गया है। ऐसे सुहाने परिदृश्य के बीच अपने भुगतान संतुलन की दशा सुधारने के मकसद से नए राष्ट्रपति ने 20 दिसंबर को राष्ट्रीय मुद्रा "पेसो" के डॉलर के मुकाबले लगभग 30 प्रतिशत अवमूल्यन की घोषणा कर दी। जैसा कि आमतौर पर होता है, इस अवमूल्यन का उद्देश्य भी यही था कि डॉलर महंगा होने की बदौलत आयात घट जाए और निर्यात बढ़ने लगे, ताकि निर्यात से अधिक आयात करने की वजह से पैदा हुआ व्यापार घाटा घट जाए। यह अपेक्षित प्रक्रिया शुरू भी हो गई, मगर पेसो में व्यक्त होने वाली निर्यात वस्तुओं के साथ साथ पेसो में व्यक्त होने वाली पूंजी प्रतिभूतियों के दाम भी तेजी से गिरने लगे। आरंभिक आंकड़ों के मुताबिक अवमूल्यन के बाद एक सप्ताह के भीतर अमरीका सामूहिक निधि योजनाओं (म्यूचुअल फंड) को मैक्सिको के पूंजी बाजार में 60 करोड़ डॉलर के बराबर नुकसान हुआ। दूसरे शब्दों में पेसो में व्यक्त होने वाली उनकी कीमत में 16 प्रतिशत की गिरावट आ गई। लेटिन अमरीका फंड योजनाओं और सरकारी बांड के बाजार में भी यही हालत पैदा हो गई। सिर्फ स्वर्ण और डॉलर से जुड़ी प्रतिभूतियों के दाम स्थिर रहे। यह आघात विदेशी निवेशकों में हड़कंप पैदा करने के लिए काफी था और उन्होंने अपना निवेश रातों रात अन्य देशों में स्थानांतरित करना शुरू कर दिया। चूंकि अधिकतर विदेशी निवेश शेयर बाजारों और सट्टेबाजी की संभावना वाली अन्य प्रतिभूतियों में था, इसलिए मैक्सिको का शेयर बाजार "बोल्सा" मुंह के बल गिरने लगा। विदेशी "हॉट मनी" भाप बनकर उड़ने लगी।

नये साल के दूसरे दिन राष्ट्रव्यापी निराशावाद का एक दूसरा विस्फोट हुआ। राष्ट्रपति जेडिलो ने बदहवास राष्ट्र को सांत्वना देने के लिये 2 जनवरी की दोपहर को राष्ट्रीय टेलीविजन पर एक विशेष संबोधन का वायदा किया और जब समूचे देश के व्यापारी वर्ग और आम लोग टेलीविजन स्क्रीन के सामने बैठे थे, तो राष्ट्रपति का देश के नाम संबोधन स्थगित कर दिया गया। अगले दिन राष्ट्रपति टेलीविजन पर प्रकट हुए और उन्होंने दो टूक शब्दों में कह डाला था कि "देश की जनता महान बलिदानों के लिए तैयार रहे, अवमूल्यन के कारण श्रमिकों के वेतन की वास्तविक कीमत कम हो जाएगी और उसमें धीरे धीरे ही सुधार करना संभव होगा। मैक्सिको के पहले नागरिक के मुंह से

ऐसा बयान मदी को महामदी में बदलने वाला साबित हुआ। विदेशी निवेश का पलायन और तेज हो गया और जिस शेयर बाजार को अवमूल्यन पर एक आने पर प्रतिक्रिया दिखानी चाहिये थी, वह बारह आने की प्रतिक्रिया के बाद भी थमा नहीं। 30 प्रतिशत अवमूल्यन की चोट खाए 'पेसों' का वास्तविक मूल्य और भी कम होने लगा और जनवरी के आखिरी हफ्ते तक 19 दिसबर के भाव की तुलना में पेसों का भाव 40 प्रतिशत कम रह गया। साथ में मैक्सिकोवासियों की सम्पत्तियों की कीमत का भी भाव उसी अनुपात में गिर गया। आज हालत यह है कि मैक्सिको की प्रति व्यक्ति आय वर्ष 1982 के स्तर से भी पाच प्रतिशत नीचे है। अन्तर्राष्ट्रीय पर्यवेक्षक कह रहे हैं कि अब जब मैक्सिको अगली सदी में कदम रखेगा तो वह उतना गरीब होगा, जितना वह तीन दशक पहले था। एक राष्ट्राध्यक्ष या सत्ताप्रमुख का वक्तव्य क्या महत्त्व रखता है तथा उसके परिणाम कितने गभीर हो सकते हैं, इसका यह अनुपम उदाहरण है।

चूंकि अमरीका मैक्सिको के व्यापार में 70 प्रतिशत का भागीदार है तथा मैक्सिको का चरमराना बिल क्लिटन द्वारा प्रायोजित "नाफ्ता" सधि का चरमराना है और चूकि मैक्सिको से लाखों शरणार्थियों के अमरीका में घुस आने का महाप्रश्न है, इसलिए अमरीकी ससद के एजेंडा पर आज मैक्सिको की बहाली पहले नबर पर है। सहयोगी देशों के साथ चदा एकत्र कर 18 अरब डॉलर की सहायता राशि मैक्सिको को पहले ही रवाना की जा चुकी है। अब 40 अरब डॉलर की दूसरी खेप वहा भेजने के प्रस्ताव पर विचार हो रहा था। मैक्सिको का सकट उजागिर होने के तुरत बाद राष्ट्रपति क्लिटन के टेलीफोन पर राष्ट्रपति जेडिलो को इन शब्दों के साथ ढाढस बधाया कि मैक्सिको में स्थिरता और समृद्धि बहाल करने में अमरीका की गहरी रुचि है। जिस शिद्दत के साथ अमरीका मैक्सिको के सकट में रुचि ले रहा है, उसे देखते हुए मैक्सिको के अग्रणी राजनीतिक टिप्पणीकार लारेंजो मेयर ने टिप्पणी की थी कि "ऐसा लगता है कि हमारे सच्चे राष्ट्रपति बिल क्लिटन है।"

एक सप्रभु राष्ट्र का इस कदर निरीह और परावलबी हो जाना दारूण है। मगर इस दारूणता के दो पक्ष हैं, पहला यह कि दुनिया भर के देशों के वित्त तत्र पर गिद्ध की नजर रखने वाला अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष मैक्सिको के मामले में मुह की खा गया। उसके आकलन बिल्कुल गलत साबित हुए। आमतौर पर विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष अवमूल्यन की अर्थनीति के पक्षधर माने जाते हैं। मैक्सिको के मामले में तो मुद्रा कोष ने बाकायदा एक वक्तव्य जारी कर अवमूल्यन को स्वागत योग्य कदम बताया। मुद्राकोष ने यह आशा भी जाहिर की कि दीर्घकाल में यह कदम अर्थव्यवस्था को मजबूत करेगा। मगर मुद्रा कोष के विशेषज्ञों की फौज अर्थशास्त्र के इस सबसे सरल सिद्धात को नजर अदाज कर गई कि अधिकतम मुनाफे की जुगाड में रहने वाला निजी निवेश, बैंक और म्यूचुअल फड अल्पकालिक लाभ पर ज्यादा ध्यान देते हैं और सकट की भेडचाल में तो यह सिद्धात और भी व्यावहारिक हो जाता है। दूसरा दिलचस्प पक्ष यह है

अमरीका की बगल में रहने वाले एक पिछड़े देश में मुक्त व्यापार के जरिये आर्थिक विकास बटोरने का बहुप्रचारित फार्मूला इस कदर फेल हो रहा है कि 18 अरब डॉलर की यह राशि ऊट के मुह में जीरा साबित हो रही है और विदेशी निवेशक मैक्सिको के साथ साथ ब्राजील और अर्जेंटीना के बाजारों से भी पैसा निकाल रहे हैं। ऊपर से एक विडम्बना यह कि मित्र राष्ट्र होने के बावजूद अमरीका मैक्सिको को बिना शर्त राहत राशि देने को राजी नहीं था। आरंभिक समाचारों के अनुसार एक शर्त यह हो सकती है कि मैक्सिको अपने "पेमेक्स" जैसे बेशकीमती सरकारी उपक्रम गिरवी रखे। इस बात पर मैक्सिको के अधिकारियों को एतराज है। अमरीकी समद की एक माग यह है कि मैक्सिको में प्रतिभूति गारटियों और राहत राशि पहुचाने को श्रमिक मानक, न्यूनतम वेतन जैसे मानवाधिकारों और पारगमन आदि की शर्तों से जोडा जाए। यहा यह उल्लेख जरूरी है कि मैक्सिको से बोरिया बिस्तर समेटने वाले विदेशी निवेशकों में से अनेक अमरीका से सबधित हैं।

अमरीका सहित अनेक औद्योगिक देशों को आज इस बात का अफसोस है कि उन्होंने मैक्सिको को एक प्रथम श्रेणी का विकसित राष्ट्र समझने की भूल की। मगर पोस्टमार्टम से जुटे पश्चिमी अर्थवेत्ता कह रहे हैं कि यह मोहभग अप्रत्याशित भले ही हो, पर था अनिवार्य। राजनीतिक आग्रहों के रहते पूर्व राष्ट्रपति सॉलिनास ने आर्थिक विकास का आत्मघाती मिथक खडा कर दिया था।

"नाफ्टा" सधि के बाद विदेश व्यापार के सारे दरवाजे एक झटके से खोल दिये गए और स्थानीय आबादी में आयात की होड लग गई। विदेशी पूजी भी निर्बाध होकर घुसी, मगर उसका बमुश्किल 15 प्रतिशत हिस्सा वास्तविक उत्पादक क्षेत्रों में गया, शेष नाजुक पूजी बाजार में केन्द्रित हो गया, ये सब खुलेपन के आग्रह थे।

वास्तव में नौ करोड की आबादी वाला मैक्सिको 90 करोड की आबादी वाले भारत से आर्थिक और राजनीतिक चरित्र में काफी मिलता-जुलता है। मैक्सिको में भी आम आदमी खेती करता है, भारत में भी। वहा भी भीषण आर्थिक असमानता है, भारत में भी। वहा पर भी इस्टीटयूशनल रिपब्लिकन नामक एक पार्टी लगभग 70 साल से लगातार सत्ता में है और यहा भी कमोबेश काग्रेस पार्टी का प्रभुत्व रहा है।

मैक्सिको की आर्थिक दुर्घटना से विश्वकृत अर्थव्यवस्था की अवधारणा को बडा धक्का लगा है। इस बात की आशकायें व्यक्त की जा रही हैं कि अन्य विकासशील देश भी इसकी चपेट में ना आ जाए। मैक्सिको की प्रशसा करने वाले अन्य मुद्रा कोष जैसे सगठनों ने अब चुप्पी साध ली है। उदारीकृत अर्थव्यवस्था के खतरों के बारे में उन्हें गभीरता से सोचना पड रहा है।

अब भारत के बारे में इस सदर्भ में सोचा जा रहा है कि सबसे बडी पाच अर्थव्यवस्थाओं में से एक भारतीय अर्थव्यवस्था उदारीकरण और आर्थिक सुधारों की

प्रक्रिया को अपना रही है। जिस प्रक्रिया से वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था गुजर रही है उसमें तमाम तरह की आशंकाओं की गुंजाइश है। खेल और खिलाड़ी दोनों ही नये हैं, और पक्के तौर पर कुछ कहना बड़ा ही कठिन है।

लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था के तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक परम्परावादी और कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था होने के कारण इसकी जड़ें काफी गहरी हैं। कृषि आधारित होने के कारण इसे आसानी से उखाड़ा जाना सम्भव नहीं होगा।

लेकिन भारत और मैक्सिको में जो मूलभूत फर्क है, वह यह कि भारत में चालू खाते का घाटा चिंतनीय स्तर पर तो है, किन्तु मैक्सिको के स्तर से काफी दूर है। मैक्सिको में घाटा 1990 के 7.5 अरब डॉलर से बढ़कर 1994 में 28 अरब डॉलर तक जा पहुंचा। भारत में 1994 में हमारा चालू खाते का घाटा 31.5 करोड़ डॉलर ही था, जो हमारी सकल आय का महज 0.1 प्रतिशत है। इसके अलावा जहां मैक्सिको में उदारीकरण के कारण विदेशी वस्तुओं तथा विलासिता के सामान की बाढ़ आ गयी, वहीं भारत में वैसा कुछ होता नहीं दिख रहा है। इसके अलावा मैक्सिको में जो भी निवेश हुआ, वह अल्पकालिक सट्टेबाजी वृत्तियों के तहत था, जबकि भारत में निवेश घरेलू तथा विदेशी दोनों ही दीर्घकालिक हैं।

हालांकि भारत दशकों से कर्जदार देश रहा है लेकिन हमारे कर्ज का बड़ा हिस्सा दीर्घकालिक कर्ज का है, जबकि बहुत थोड़ा हिस्सा यानी 3.6 अरब डॉलर ही अल्पकालिक है। जाहिर है, इस कर्ज को चुकाने के लिये हमारे पास काफी वक्त है और खतरे की घंटी बजने जैसी स्थिति वर्षों में आयेगी। उधार की अर्थव्यवस्था के खतरे बड़े हैं और मैक्सिको ने अर्थशास्त्र के इस साधारण से नियम की उपेक्षा कर अपने लिये मुसीबत बुलाई। ऐसा नहीं है कि भारत में कर्ज लेने से हमें कभी परहेज रहा, लेकिन एक लोकतांत्रिक देश होने के नाते इस पर एक अंकुश हमेशा रहा। अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष की कठिन शर्तों पर भी भारत ने ऋण लिया, लेकिन देर सवेर उसे चुकाया गया।

हमारा निर्यात लगातार बढ़ रहा है और इस बात की पूरी संभावना है कि भारत अपने निर्यात लक्ष्य को पा लेगा। लेकिन महत्त्वपूर्ण यह है कि हमारे निर्यात का स्वरूप धीरे धीरे बदल रहा है। हम परम्परागत वस्तुओं के अलावा इंजीनियरिंग के सामान आदि तक निर्यात करने लगे हैं। इसके अलावा आयात पर हमारी निर्भरता घटती जा रही है। हम इस स्थिति में पहुंचते जा रहे हैं कि आयात हमारे लिए मजबूरी नहीं रहेगी।

विश्व बैंक का मानना है कि भारत मैक्सिको के रास्ते पर नहीं जा सकता। ऋण का जाल भारत पर नहीं फैल सकता। परंतु यह भी सच है कि ब्राजील और मैक्सिको के बाद भारत विश्व का तीसरा बड़ा कर्जदार देश है। इसके बाद भी अर्थव्यवस्था का विकास स्वस्थ ढंग से हो रहा है और हमारे पास विदेशी मुद्रा का 20 अरब डॉलर का विशाल

भंडार भी है।

विदेशी वित्तीय सस्थाओं की भारतीय बाजार में भूमिका महत्त्वपूर्ण होने के बाद भी इतनी प्रभावशाली नहीं है कि अर्थव्यवस्था को झकझोर दे। भारतीय शेयर बाजारों में उनका कु.ल निवेश 0 04 प्रतिशत ही रहा है। और वे ऐसी स्थिति में नहीं हैं कि अर्थव्यवस्था को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करें। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रतिभूति एव विनिमय बोर्ड (सेबी) के नियम इतने जटिल हैं कि निवेश किया धन देश से बाहर तुरत ले जाना उनके लिए कठिन है।

मैक्सिको का उदाहरण जहा एक ओर हमें अन्धाधुन्ध विदेशी पूजी प्रवेश के बारे में आगाह करता है वहीं दूसरी ओर 1995-96 के बजट के पूर्व में प्रस्तुत आर्थिक सर्वेक्षण पिछले चार वर्षों में अपनाई गई नीति की खामियों को उजागर करता है। 1991-92, 92 93, 93-94 तथा 94-95 के बजट की तुलना में 1995-96 के बजट में ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार बढाने, विकास गति को प्रोत्साहित करने तथा राहत देने वाली कई योजनाओं की घोषणा की गई है। उदार नीति के जयघोष में गरीबों के कल्याण पर सरकार को ध्यान देने के लिये अवसर नहीं मिला परन्तु चुनावों के परिणामों ने सरकार का ध्यान अर्थव्यवस्था की वास्तविकता की ओर आकर्षित किया है। हाल ही में योजना आयोग की रिपोर्ट में गरीबी से निम्नस्तर पर जीवन यापन करने वाली लोगों की सख्या में वृद्धि से इस तथ्य का उजागर किया गया है।

विदेशी उद्यमी भारत के दो करोड लोगों के बाजार की ओर आकर्षित हो रहे हैं। परतु इस सम्पन्न वर्ग के साथ देश में गरीब भी रहते हैं जिनकी सख्या करोडों में है। क्या इन लोगों की आधारभूत समस्याओं का हल ढूढने का काम निजी क्षेत्र पर छोडा जा सकता हैं ? निजी क्षेत्र आचरण के सबध में दो बातें उल्लेखनीय हैं। पहली यह कि विदेशी पूजी उद्यमी तो लाभ कमाने के लिये ही भारत में पूजी लगाना चाहते हैं अत वे लाभ कमाने के उद्देश्य से ही अपने द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमते तय करेंगे। हमारे देश के निजी क्षेत्र के व्यवसायियों पर भरोसा करना कि वे जनता के हितों को ध्यान में रखकर कीमतें उचित स्तर पर बनाए रखेंगे, सभव नहीं है। देश में सामान्य उपभोक्ता को किस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता है, इस सबध में कुछ अधिक बताने की आवश्यकता नहीं है। मुद्रास्फीति तो कीमतों में वृद्धि की सभावना को और अधिक बढा देती है। वर्तमान अर्थव्यवस्था में जहा व्यापारिक गतिविधियों पर अनेक प्रकार के प्रतिबध हैं—निजी क्षेत्र के उद्योगपति तथा व्यवसायी लाभ कमाने का एक भी अवसर खोना नहीं चाहते। अल्पकाल के लिये ही क्यों न हो, वे कीमतें बढा देते हैं और जितना लाभ सभव हो, कमाने का प्रयास करते हैं। स्वस्थ प्रतिस्पर्धा अभी भारत के लिये एक सपना है। क्योंकि आज भी वस्तुओं की पूर्ति सुगम होने पर भी, हमारे देश के सामान्य उपभोक्ता की स्थिति तथा उनकी मजबूरिया हैं जिसका परिणाम विक्रेता बाजार है। अत आनेवाले कई दशकों तक सामान्य जनता के विकास की जिम्मेदारी सरकार को निभानी

होगी तथा उनके हितों की सुरक्षा की चिन्ता भी सरकार को ही करनी होगी।

इसी सदर्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था के कुछ तथ्यों की ओर भी ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ वह है—बढ़ता हुआ राजस्व घाटा और उसे कम करने की तीव्र आवश्यकता, जो राजस्व में वृद्धि से सभव है। भारत में बाह्य ऋणों के साथ आन्तरिक ऋणों का बढ़ता भार। ऋण के भार की गभीरता को यह तथ्य उजागर करता है कि वर्तमान में कुछ प्राप्तियों (राजस्व एव पूजीगत) का 27 प्रतिशत हिस्सा ब्याज के भुगतान के लिये प्रयोग में लाया जाता है। मुद्रास्फीति की बढ़ती दर एक गभीर समस्या है। विदेशी पूजी के खुले प्रवेश से अर्थव्यवस्था के उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में होने वाला स्वचालीकरण रोजगार के अवसरों को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है, और करेगा।

कृषि उत्पादन में स्थायित्व का अभाव जैसे कभी गन्ने के उत्पादन में कमी, तो कभी तिलहन उत्पादन में। अत सुझाव है कि—कृषि क्षेत्र को विकास के क्रम में प्राथमिकता दी जानी चाहिये। कृषि क्षेत्र के विकास में आधुनिक मशीनों का प्रयोग सीमित मात्रा में करते हुए कृषि के परम्परागत तरीकों के साथ उनका मेल बिठाया जाना चाहिये।

लघु उद्योगों और परम्परागत उद्योगों के क्षेत्रों को विदेशी पूजीपतियों के लिये नहीं खोला जाना चाहिए। भारतीय जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति में लघु उद्योगों के योगदान को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

सरकार को योजनाओं के माध्यम से सरचना के विकास की प्रक्रिया जारी रखनी चाहिये तथा आम जनता को अन्न, वस्त्र, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य की आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध कराने के लिये प्रयास करने चाहिये।

परिवार कल्याण कार्यक्रमों में जनता को शिक्षित करने के गभीर प्रयास करने चाहिये तभी जनसख्या नियत्रण सभव होगा।

जिन क्षेत्रों में विदेशी पूजी निवेश की अनुमति होगी, इस सबध में आम सहमति कायम करके स्पष्ट नीति बनाई जानी चाहिये।

देशी और विदेशी उद्योगों के बीच कोई भेदभाव नहीं होना चाहिये।

वर्तमान परिस्थितियों में यह सकेत प्राप्त हो रहे हैं कि हमारी भविष्य की अर्थव्यवस्था में सरकारी क्षेत्र और निजी क्षेत्र काम करते रहेंगे। निजी क्षेत्र के विकास की दिशा सरकारी नीति द्वारा तय की जानी चाहिये तथा उनके क्रियाकलापों पर नियत्रण हेतु लचीले नियम भी बनाये जाने चाहिये।

सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की असफलता का एक महत्वपूर्ण कारण राजनैतिक हस्तक्षेप रहा है। वित्तीय व्यवहार के सिद्धान्तों की अवहेलना करके यदि कल्याणकारी एव विकास से जुडे कार्यक्रमों को लागू किया जाता है तो उसका परिणाम क्या हो सकता है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे घाटे में चलने वाले उद्योग एव वित्तीय दृष्टि से कमजोर

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक हैं। अत पूर्व में हुई गलतियों से पाठ लेकर यदि वित्तीय सस्थाओं के सचालन में पूर्ण स्वायत्तता दी जाती है तो वे भी निजी क्षेत्र के साथ प्रतियोगिता कर सकेंगे। इस प्रकार एक ऐसी अर्थव्यवस्था विकसित हो सकेगी जहा निजी और सार्वजनिक क्षेत्र स्वस्थ प्रतिस्पर्धा करते हुए अधिक विकास में सहयोग दे सकेंगे। □